ऋग्वेद के पञ्चम-मण्डल का आलोचनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (संस्कृत) डिग्री हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक:
प्रोफेसर हरिशङ्करत्रिपाठी

शोधकर्त्री:-
शालिनी शुक्ला

संस्कृत विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

इलाहाबाद - २११ ००२

जून, १९९८

पञ्जीयन सख्या · [illegible]५२१२९८

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः।

स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना।।ऋ.५.५१.११।।

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।

बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः।।ऋ.५.५१.१२।।

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।

देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः।।ऋ.५.५१.१३।।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।

स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि।।ऋ.५.५१.१४।।

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि।।ऋ.५.५१.१५।।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव।।ऋ.५.८२.५।।

भूमिका

वेद भारतीय वाड्मय एव सस्कृति के आधारस्तम्भ है। वेदो मे ज्ञान का वह चरम निदर्शन है जो विद्वज्जनो के लिये आज भी एक रहस्य बना हुआ है। वेदो मे भारतीय सस्कृति, धर्म, दर्शन, सामाजिक राजनैतिक जीवन एव सस्कृत भाषा ज्ञान विज्ञान का प्राचीनतम रूप प्राप्त होता है। वेद स्वतः प्रमाण है, सत्य है, यथार्थ ज्ञान है। इसी कारण वर्तमान काल मे भी वेदो की उपादेयता है। तैत्तिरीय-सँहिता के भाष्य की भूमिका मे सायण ने लिखा है कि प्रत्यक्ष अथवा अनुमान प्रमाण द्वारा जिस उपाय को नही समझा जा सकता उसे वेद के माध्यम से जाना जा सकता है यही वेद का वेदत्व है -

" प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।

एन विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता।।" (तैत्तिरीय सहिता भाष्य भूमिका)

वेद शब्द तद्रचनाकालीन समग्र वाड्मय का निदर्शक है। वेद और अविस्त > अवेस्ता दोनो पद समानधातुज ($\sqrt{}$ विद् 'ज्ञाने') और समानार्थक है। आग्ल 'Wit, Wittty Wisdom' " ग्रीक आइद(Aida) लैटिन विदआ (Video) , गॉथिक वइत् (Wait)" आदि मे भी यही धातु निहित है। व्याकरण की दृष्टि से $\sqrt{}$ विद् + घञ् से वेद शब्द बना है। अतः ज्ञान, ज्ञान का विषय एव ज्ञेय पदार्थ तीनो ही वेद के वाच्य अर्थ हो सकते है। पाणिनि ने अपने धातुपाठ मे $\sqrt{}$ विद् का अर्थ सत्ता, लाभ, विचारना, लिखा है, वेदान्तियो के अनुसार आनन्द, ज्ञान, सत्ता ब्रह्म का ये लक्षण वेद शब्द मे समाहित है।

ऋग्वेद मे स्तुतिपरक मत्रो का सङ्कलन है अतः ऋच्यते स्तूयते अनयेति ऋक् यह ऋक् की व्युत्पत्ति मानी गयी है। वृच् का अर्थ चमकना है, वृच् का ही रूपान्तर ऋच् है जिसका मूल अर्थ अग्नि- प्रज्ज्वलित करना है। शतपथ ब्राह्मण मे अग्नि से ऋग्वेद की उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है। आर्य अग्नि पूजक थे। अतः प्रारम्भ मे ऋक् का अर्थ अग्निपूजा मन्त्र था। चूँकि ऋग्वेद मे अग्नि के अतिरिक्त अन्य देवताओ की स्तुति है अत ऋक् का अर्थ पूजा या स्तुतिपरक मन्त्र है। पूर्वमीमासा के अनुसार अर्थानुसार पादव्यवस्था ऋक् है। सहिता शब्द सघ, सम्मिश्रण, समूह, सङ्कलन सङ्ग्रह अर्थो मे प्रयुक्त होता है अत ऋग्वेद सहिता का अर्थ हुआ स्तुतिपरक ज्ञान का सङ्कलन। वेदो मे भी प्राणरूप ऋग्वेद का अध्ययन हमें भारतीय सस्कृति एव वाड्मय से पूर्णतः परिचित कराता है।

स्नातकोत्तर प्रथम वर्ष मे डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी की पुस्तक 'सूक्तवाक्' के माध्यम से ऋग्वेद से सङ्कलित कुछ मन्त्रो के अध्ययन का अवसर मिला। उत्तरोत्तर ऋग्वेद के प्रति मेरी रुचि एव जिज्ञासा बढती गयी।

परिणामस्वरूप मैने स्नातकोत्तर द्वितीय वर्ष मे ' वेद वर्ग' चुना तथा वेदविषयक पुस्तको का यथासम्भव अध्ययन किया। सम्पूर्ण ऋग्वेद शोध के लिये अत्यधिक वृहद् एव दुरूह विषय है। अत ऋग्वेद के एकाश पञ्चम-मण्डल को मैने शोध का विषय बनाया।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का विषय "ऋग्वेद के पञ्चम - मण्डल का आलोचनात्मक अध्ययन" है। विषय को तीन अध्यायो मे विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय मे विषयावतारणा है। विषयावतारणा के रूप मे वेद शब्द का अर्थ, वैदिक-साहित्य विभाग, वैदिक-साहित्य मे ऋग्वेद का स्थान, ऋग्वेद का काल, ऋग्वेद का सङ्कलन-अष्टक क्रम, मण्डल-क्रम, मण्डल-क्रम का महत्त्व, वेद के भारतीय एव पाश्चात्य विद्वान्, ऋग्वेद- पञ्चम-मण्डल के ऋषि, देवता, छन्द, ऋग्वेद पञ्चम-मण्डल मे प्राप्त ऋग्वैदिक सभ्यता एव सस्कृति, ऋग्वेद-पञ्चम-मण्डल के विशिष्ट मन्त्र एव विशेषता आदि विषय है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय मे ऋग्वेद-पञ्चम-मण्डल के मन्त्रो का अनुवाद किया गया है। अनुवाद मे विविध भारतीय, आग्ल एव जर्मन विद्वानो के अनुवादो और आलोचनात्मक ग्रन्थो से सहायता ली गयी है। भावानुवाद की अपेक्षा सटीक अनुवाद करने का प्रयास किया है। सुविधा के लिये मूल मन्त्र के साथ अन्वय भी दिया है।

तीसरे अध्याय मे ऋग्वेद-पञ्चम-मण्डल मे आये शब्दो का निर्वचन एवम् अर्थनिर्धारण लघु - कोश के रूप मे है। शब्दो के सटीक अर्थ तक पहुँचाने के लिये अनेक भारतीय एव पाश्चात्य विद्वानो के ग्रन्थो से सहायता ली गयी है। धातु के निर्धारण मे मूल एव विकसित धातु का विवेचन किया गया है। इसके साथ ही यथावसर अवेस्ता, अग्रेजी, प्राचीन एवम् आधुनिक फारसी, ग्रीक, जर्मन, लैटिन आदि भाषाओ के भी शब्दो की तुलना प्रस्तुत की गयी है।

गुरुवर, डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी, प्रोफेसर, सस्कृत-विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की मै हृदयेन आभारी हूँ जिनके कुशल निर्देशन एव मार्ग - दर्शन से यह शोध-कार्य सम्पन्न हो सका है। शोध-कार्य के प्रारम्भ से लेकर समाप्ति पर्यन्त गुरूजी ने मेरी शङ्काओ का समाधान करते हुये अपने बहुमूल्य सुझावो से मेरे ज्ञान मे जो वृद्धि की है उसका वर्णन मुझ अल्पमति के लिये सम्भव नही है। गुरूजी की अप्रतिम भाषावैज्ञानिक क्षमता को मै किञ्चित् मात्र भी ग्रहण कर सकी तो यह मेरा सौभाग्य ही है।

मै श्रद्धेया गुरुपत्नी की भी आभारी हूँ जिनका स्नेह शोध-कार्य मे मुझे सदा प्रेरित करता रहा।

मै सस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय के निवर्तमान विभागाध्यक्ष प्रोफेसर सुरेश चन्द्र पाण्डे एव वर्तमान विभागाध्यक्ष प्रोफसेर ज्ञानदेवी श्रीवास्तव की आभारी हूँ जिन्होने शोधकाल मे मुझे विभाग सम्बन्धी सुविधाये प्रदान की।

मैं आदरणीया सुश्री पूर्णिमा चतुर्वेदी (प्रवक्ता, क्रॉस्थवेट गर्ल्स इण्टर कॉलेज, इलाहाबाद) की जीवनपर्यन्त ऋणी रहूँगी जिनके कुशल अध्यापन के परिणामस्वरूप मै माध्यमिक कक्षाओ से ही सस्कृत भाषा के प्रति आकृष्ट रही।

मैं उन सभी विद्वज्जनो की ऋणी एवम् आभारी हूँ जिनकी पुस्तको का मैने शोध-काल मे अध्ययन किया।

म अपने परिवार-जनो के प्रति आभारी हूँ जिन्होने शोधकार्य - पर्यन्त मुझे अध्ययन का समुचित वातावरण देते हुये निरन्तर प्रोत्साहित किया। परिवार के प्रत्येक सदस्य की उत्कट अभिलाषा शोधकार्य मे मेरी प्रेरणा का स्रोत रही है।

मैं अपने मित्रो, शुभचिन्तको एवम् अन्य आत्मीयजनो की आभारी हूँ जिन्होने यथावसर मुझे प्रोत्साहित किया। विशेषकर श्रीमती निरुपमा त्रिपाठी का सच्चे मित्र के रूप मे प्राप्त सहयोग मेरे लिये स्मरणीय है।

विविध पुस्तकालयो मुख्यत इलाहाबाद विश्वविद्यालय स्थित पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग-स्थित पुस्तकालय, गङ्गानाथ झा केन्द्रीय सस्कृत शोध-सस्थान, इलाहाबाद स्थित पुस्तकालय के कर्मचारियो को मैं धन्यवाद देती हूँ जिन्होने वेदो की अनेक बहुमूल्य पुस्तको की प्राप्ति मे मेरी सहायता की है।

मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को धन्यवाद देती हूँ जिसकी कनिष्ठ एव वरिष्ठ शोध अध्येतावृत्ति के माध्यम से शोधकार्य मे मुझे आर्थिक सहायता प्राप्त हुई।

मैं टङ्कणकर्त्ता श्री अमर चन्द्र गुप्ता को धन्यवाद देती हूँ जिनके अथक परिश्रम के परिमाणस्वरूप कम्प्यूटर पर टङ्कणकार्य सम्भव हो सका।

(शालिनी शुक्ला)

संक्षिप्त - सङ्केत - सूची

अ०	-	अग्रेजी
अवे०	-	अवेस्ता
अव्य०	-	अव्यय
उप०	-	उपसर्ग
ऋ०	-	ऋग्वेद
ऐ० ब्रा०	-	ऐतरेय ब्राह्मण
क्रि० वि०	-	क्रिया विशेषण
कौ० ब्रा०	-	कौषीतकि ब्राह्मण
गा०	-	गाथिक
ग्री०	-	ग्रीक
जै० उ०	-	जैमिनीय उपनिषद्
ता० ब्रा०	-	ताण्ड्य ब्राह्मण
तुल०	-	तुलनात्मक
तै० ब्रा०	-	तैत्तिरीय ब्राह्मण
द्र०	-	द्रष्टव्य
नि०	-	निपात
पृ० स०	-	पृष्ठ सख्या
प्रा० स्ला०	-	प्राचीन स्लोवाक
बहु० स०	-	बहुव्रीहि समास
भू० क० कृ०	-	भूतकालिक कृदन्त
लिथु०	-	लिथुएनियन
लै०	-	लैटिन

वि०	-	विशेषण
वि० न०	-	विशेषण नपुसकलिङ्ग
वि० पु०	-	विशेषण पुल्लिङ्ग
वि० स्त्री०	-	विशेषण स्त्रीलिङ्ग
श० ब्रा०	-	शतपथ ब्राह्मण
स० पु०	-	सस्कृत पुल्लिङ्ग
स० वि०	-	सस्कृत विशेषण
स० स्त्री०	-	सस्कृत स्त्रीलिङ्ग
सर्व०	-	सर्वनाम
हि०	-	हिन्दी

विषयानुक्रमणिका

विषयावतारणा

१.१ वेद शब्द की व्युत्पत्ति-

वेद शब्द तद्‌रचनाकालीन समग्र वाड्मय का निदर्शक है। वेद और अविस्त > अवेस्ता दोनो पद समानधातुज (√ विद् 'ज्ञाने') और समानार्थक है। आंग्ल 'Wit, Wittty, Wisdom' " ग्रीक' आइद(Aida) लैटिन विदआ (Video) , गॉथिक वइत् (Wait)" आदि मे भी यही धातु निहित है। व्याकरण की दृष्टि से √ विद् + घञ् से वेद शब्द बना है। अतः ज्ञान, ज्ञान का विषय एव ज्ञेय पदार्थ तीनो ही वेद के वाच्य अर्थ हो सकते है।पाणिनि ने अपने धातुपाठ मे √ विद् का अर्थ सत्ता, लाभ, विचारना, लिखा है,वेदान्तियो के अनुसार आनन्द, ज्ञान. सत्ता ब्रह्म का ये लक्षण वेद शब्द मे समाहित है। सायण[२] ने इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट निवारण के अलौकिक उपाय बताने वाले ग्रन्थ को वेद कहा है। मॉनियर विलियम्स[३] के अनुसार वेद का अर्थ ज्ञान अथवा कर्मकाण्डीय ज्ञान है। ग्रिफिथ[४] के अनुसार भी वेद का अर्थ ज्ञान है, वेद वह पुरातन कृति है जिसमे भारतीयो के प्रारम्भिक विश्वास की आधारशिला निहित है।

सर्वप्रथम ऋग्वेद मे वेद[५] (क्रिया) ज्ञान अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है जबकि वेदस्[६] शब्द ऋग्वेद मे अधिकाशत धन के लिये आया है। शुक्ल यजुर्वेद[७] मे प्रयुक्त वेदेन का अर्थ उव्वट ने ज्ञानेन, त्रय्या विद्यया किया है। श्रुति[८] छन्दस्[९] निगम[१०] आम्नाय[११], सामाम्नाय आदि शब्द वेद के लिये प्रयुक्त हुये है।

---

[१] मस्कृत भाषा, पृ० स० - ८८, १२८।

[२] 'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपाय यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः" तैत्तिरीय सहिताभाष्यभूमिका', पृ० स० ३।

[३] " Veda means knowledge, true or sacred knowledge or lore knowledge of ritual" A Sanskrit English Dictionary पृ० स० १०१५।

[४] " Veda, meaning literary knowledge, is the name given to certain ancient works which formed the foundation of the early religious belief of the Hindus" The Hymns of the Rgveda' Preface to The First Edition'

[५] वेद नाव समुद्रियः। ऋ.१.२५.७।

१.२ वेदभाग और वेदव्यास-

कुछ विद्वान वेद को ईश्वरकृत मानते है। शतपथ ब्राह्मण[१२] एव मनुस्मृति मे अग्नि, वायु, सूर्य से ऋक्, यजुष्, सामन् की उत्पत्ति कही गयी है। जैमिनि, शबर, कुमारिल भट्ट ने वेदो को स्वत-सिद्ध माना हे। अधिकाश पाश्चात्य विद्वान वेदो को मानवीय कृति मानते है। जिन ऋषियो मे बौद्धिक सामर्थ्य रहा होगा दैवी-कृपा से उन्होने मत्रो का रूप उस यथार्थज्ञान को दिया जिसका वे प्रतिदिन अनुभव करते थे। वेदो का मौखिक परम्परा द्वारा ऋषियो ने सरक्षण किया। कालान्तर मे कृष्ण द्वैपायन व्यास[१३] ऋषि ने उनका सङ्कलन किया अत उनका नाम वेदव्यास पड़ा। प्राप्त विवरण के अनुसार वेद व्यास ने पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु को क्रमश ऋक्, यजु साम एव अथर्ववेद का उपदेश दिया।

वेद चार हैं - ऋक्, यजुष्, सामन् और अथर्वन्। वेदत्रयी और वेदचतुष्टय के विषय मे काफी समय से विवाद रहा है। इसका विस्तार न करते हुये इतना ही कहा जा सकता है कि त्रयी विभाजन शैली की भिन्नता के कारण है यथा - मन्त्रात्मक ऋग्वेद है, गद्य- प्रधान यजुर्वेद है, सामवेद गीतात्मक है।

१.३ संहिता पाठ - पदपाठ -

वेदो को मूल रूप मे सुरक्षित रखने के लिये मौखिक परम्परा के माध्यम से पद-पाठादि का प्रचलन हुआ। मूल मन्त्र के अविकल पाठ को **निर्भुज-संहितापाठ** या सहिता-पाठ कहते है। सन्धिविच्छेदादि द्वारा विकृतरूप से पढ

---

[६] उदा० "पितुर्न जिव्रेर्विवेदो भरन्त"। ऋ.१.७०.५, ८१.६; ६६.१, १००.३, ६, ५.२.१२।

[७] "वेदेन रूपे व्यपिवत् सुतासुतौ प्रजापति " शु०य०, १६. ७२।

[८] उदा० "सेय विद्या श्रुति मति बुद्धि" यास्क, निरूक्त'।

[९] पाणिनी की अष्टाध्यायी मे छन्दस् शब्द वेद के लिये मिलता है। उदा० " बहुल छन्दसि"- 'अष्टाध्यायी'।

[१०] निरूक्त तथा भागवत् मे 'निगम' शब्द मिलता है -

१ उदा० " तत्र खलु इत्येतस्य निगमा भविन्त" - 'निरूक्त'।

२ उदा० " निगमकल्पतरोर्गलित रस" - श्रीमद्भागवत्'।

[११] जैमिनिकृत मीमासादर्शन मे आम्नाय शब्द आया है - उदा० " आम्नायो वेद "।

[१२] " अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रय ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजु सामलक्षणम्" - 'मनु', १.२३।
" स इमानि त्रीणि ज्योति ४ष्यभितताप। तेभ्यसृ तेभ्य स्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेद सूर्यात्सामवेद "।
श० ब्रा०. ११/५/८/३॥

[१३] " वेदान् विव्यास यस्मात् स वेदव्यास इतीरत।
तपस ब्रह्मचर्येण व्यस्थ वेदान् महामति ॥ " महा० १/२/ और महा० आदिपर्व ६१/८८।

ना **प्रतृण-पाठ** या पद-पाठ कहलाता है। प्रतृणपाठ के नौ प्रकार है - पदपाठ, जटापाठ, मालापाठ, शिखापाठ, रेखापाठ, ध्वजपाठ, दण्डपाठ, रथपाठ तथा घन पाठ।

१.४ वैदिक साहित्य विभाग-

ब्राह्मण वेद के व्याख्यानग्रन्थ है जिनमे यज्ञो की कर्मकाण्डीय व्याख्या विस्तार से मिलती है। आरण्यक यज्ञ के गूढ रहस्य की व्याख्या करता है, आरण्यको का महत्त्व इसलिये भी है कि उसमे वर्णित आध्यात्मिक-ज्ञान का चरम निदर्शन उपनिषदो मे है। वेद का अन्तिम भाग होने के कारण उपनिषदो को वेदान्त भी कहते है। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् है। उपवेद, वेदाङ्ग वेदो के सहायक-ग्रन्थ है। वैदिक - साहित्य का विवरण इस प्रकार है -

वेद	ब्राह्मण[१४]	आरण्यक	उपनिषद्
ऋग्वेद	१. ऐतरेय २. कौषीतकि	१. ऐतरेय २ कौषीतकि	१ ऐतरेयोपरिषद् २ कौषीतकि उपनिषद् ३. वाष्कलोपनिषद्
कृष्ण यजुर्वेद	१. तैत्तिरीय	१. तैत्तिरीय	१. तैत्तिरीयोपनिषद् , २. महानारायणोपनिषद् ३. मैत्रायणी उपनिषद् , ४. कठोपनिषद्, ५. श्वेताश्वतरोपनिषद्
शुक्ल - यजुर्वेद	१. शतपथ	१. बृहदारण्यक	१. ईशावास्योपनिषद् २. बृहदारण्यकोपनिषद्
सामवेद	१. ताण्ड्य २. षड्विश ३. जैमिनीय		१. छान्दोग्योपनिषद् २. केनोपनिषद्
अथर्ववेद	१. गोपथ		१. प्रश्नोपनिषद् २. मुण्डकोपनिषद् ३. माण्डूक्योपनिषद्

[१४] इन ब्राह्मणो के अतिरिक्त अन्य ब्राह्मणो के नाम मिलते है -

ऋग्वेदीय ब्राह्मण- वाष्कल, माण्डूकेय, पैङ्ग्य, केभति, सुलभ, पराशर, शैलाली।

शुक्ल यजुर्वेदीय ब्राह्मण- जाबाल।

कृष्ण यजुर्वेदीय ब्राह्मण - चरक, श्वेताश्वर, करण्क, मैत्रायणी, हरिद्रावक, आह्वरक, खाण्डिकेय, तुम्बरू, आरूणेय, औखेय।

सामवेदीय ब्राह्मण - सामविधान, आर्षेय, दैवताध्याय, सहितोपनिषद्, भाल्लवि, रौरूकि, कालबवि, काषेय, करद्विप।

अर्थवेदीय ब्राह्मण- त्रिखर्व।

शिक्षा, कल्प निरुक्त, छन्द, ज्योतिष एव व्याकरण छ वेदाङ्ग है। इनके द्वारा वेद के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है। वेदो से सम्बद्ध अनुक्रमणियो मे ऋषियो, देवताओ, छन्दो एव अन्य विषयो का विस्तृत वर्णन है। शौनक के दस ग्रन्थ है। - " आर्षानुक्रमणी,[*] छन्दोऽनुक्रमणी, देवतानुक्रमणी, अनुकानुक्रमणी, सूक्तानुक्रमणी, ऋग्विधान, पादविधान, बृहद्देवता, प्रतिशाख्य तथा शौनक-स्मृति"। इसके अतिरिक्त कात्यानकृत सर्वानुक्रमणी शुक्लयजु सर्वानुक्रम-सूत्र प्रमुख है।

१.५ वैदिक साहित्य में ऋग्वेद का स्थान-

वैदिक साहित्य मे ऋग्वेद का स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। तैत्तिरीय-सहिता[१६] के अनुसार साम तथा यजुष् द्वारा किया गया विधान शिथिल हो जाता है परन्तु ऋक् द्वारा विहितानुष्ठान दृढ रहता है। मैक्समूलर[१७] ने ऋग्वेदाध्ययन की आवश्यकता पर प्रकाश डाला है। वन्टरनित्ज[१८] के अनुसार उपलब्ध ऋग्वेद विशाल साहित्य का मात्र एक अश है जिस मे धार्मिक मत्रो का सङ्कलन है।

१.६ ऋग्वेद संहिता का अर्थ-

ऋग्वेद मे स्तुतिपरक मत्रो का सङ्कलन है अत· ऋच्यते स्तूयते अनयेति ऋक यह ऋक् की व्युत्पत्ति मानी गयी है। वृच् का अर्थ चमकना है, वृच् का ही रूपान्तर ऋच् है जिसका मूल अर्थ अग्नि- प्रज्ज्वलित करना है। शतपथ ब्राह्मण[१९] मे अग्नि से ऋग्वेद की उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है। आर्य अग्नि पूजक थे। अत प्रारम्भ मे ऋक् का अर्थ अग्निपूजा मन्त्र था। चूँकि ऋग्वेद मे अग्नि के अतिरिक्त अन्य देवताओ की स्तुति है अत ऋक् का अर्थ पूजा या स्तुतिपरक मन्त्र है। पूर्वमीमासा[२०] के अनुसार अर्थानुसार पादव्यवस्था ऋक् है। सहिता शब्द सघ, सम्मिश्रण समूह,

---

[१५] वैदिक साहित्य और सस्कृति - आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ० स० ३७६।

[१६] " यद् वे यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिल तत् यत् ऋचा तदृढ हि" तै० स०।

[१७] " As long as man continues to take an interest in the history of his race, and as long as we collect in libraries and museums the relics of former ages, the first place in that long row of books which contains the records of the Aryan branch of mankind, will belong forever to the Rigveda"
'A History of Ancient Sanskrit Literature' पृ० स० ५७।

[१८] " That the songs, hymns and the poems of the Rigveda which have come down to us are only a fragmentary portion of a much more extensive poetic literature, both religious and secular" ' History of Indian Literature' पृ० स० ५६।

[१९] " अग्नेर्ऋग्वेद (अजायत)" शत० ब्रा० ११/५/८/३!!

[२०] " तेषामृक् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था" ' पूर्वमीमासा' २.१.३५।

सङ्कलन सङ्ग्रह अर्थो मे प्रयुक्त होता है अत· ऋग्वेद सहिता का अर्थ हुआ स्तुतिपरक ज्ञान का सङ्कलन। ऋग्वेद[२१] दशम-मण्डल मे सर्वप्रथम ऋक् का प्रयोग मिलता है, सम्भवतः उस समय तक ऋक् और साम-सहिता उपलब्ध रही होगी। ऋग्वेद के मन्त्र के लिये ऋचा[२२] का प्रयोग द्वितीय-मण्डल मे हुआ है।

१.७ ऋग्वेद की शाखायें-

स्थान, काल, व्यक्ति, अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से ऋग्वेद की विभिन्न शाखाये प्रचलित हुयी। महर्षि पतञ्जलि[२३] के अनुसार ऋग्वेद की २१ शाखाये थी। चरणव्यूह ने शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शाखायन तथा माण्डूकायन शाखाये को प्रमुख माना है। सम्प्रति ऋग्वेद की शाकल शाखा उपलब्ध है। श्री विद्यालकार शाकल्य ऋषि को शाकल नगरी (स्याल कोट) का निवासी मानते है। शाकल सहिता मे १०१७ मन्त्र है। वाष्कल शाखा अब अप्राप्य है। वाष्कल शाखा मे शाकल से आठ मन्त्र अधिक है।[२४] कवीन्द्राचार्य (१७वी शता०) ने आश्वलायन सहिता का उल्लेख किया है।

१.८ अष्टाक-क्रम, मण्डल-क्रम-

शाखा भेद के कारण ऋग्वेद के दो विभाग मिलते है, अष्टक-क्रम तथा मण्डल-क्रम। अष्टक-क्रम मे अष्टक, अध्याय, वर्ग, मन्त्र रूप मे ऋग्वेद का विभाजन है जबकि मण्डल-क्रम मे मण्डल, अनुवाक, सूक्त, मन्त्र के रूप मे विभाजन है।

---

[२१] " ऋक्सामाभ्याममिहितौ " ऋ १०.८५ ११।

[२२] " दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजुयक्षत समृचा वपुष्टरा" ऋ.२.३. ७।

[२३] " एकविशतिधा बाहवृच्यम् " पतञ्जलि।

[२४] " एतत् सहस्र दशसप्तचैवाष्टावतो वाष्कलेऽधिकानि" - अनुवाकानुक्रमणी' ऋ. २.३६।

अष्टक - क्रम

अष्टक	अध्याय	वर्ग[२५]	मन्त्र
१	८	२६५	१३७०
२	८	२२१	११४७
३	८	२२५	१२०६
४	८	२५०	१२८६
५	८	२३८	१३६३
६	८	३३१	१७३०
७	८	२४८	१२६३
८	८	२४६	१२८१
योग : ८	६४	२०२४	१०५५२

मण्डल - क्रम

मण्डल	अनुवाक्	सूक्त[२६]	मन्त्र
१	२४	१६१	२००६
२	४	४३	४२९
३	५	६२	६१७
४	५	५८	५८९
५	६	८७	७२७
६	६	७५	७६५
७	६	१०४	८४१
८	१०	१०३	१७१६
९	७	११४	११०८
१०	१२	१९१	१७५४
योग : १०	८५	१०२८	१०५५२

अष्टक -क्रम की अपेक्षा मण्डल-क्रम अधिक वैज्ञानिक तथा विचारपूर्वक किया गया प्रतीत होता है। इसी कारण ऋग्वेद को दशतायी या दाशतायी कहा गया है। शारीरकभाष्य[२७] तथा बृहतहारीत-स्मृति मे क्रमश दाशतय्यो तथा दशक्रमात्[२८] शब्द का प्रयोग हुआ है। मण्डल- क्रम के अनुसार प्रत्येक ऋषि के मन्त्र एक सूक्त मे रखे गये है।

---

[२५] इनमे बालखिल्य के १६ वर्ग सम्मिलित है। खिल का अर्थ है बचा हुआ।

[२६] इसमे बालखिल्यके ११ सूक्त सम्मिलित है।

[२७] " दाशतय्यो दृष्टा·" १/३/३० शाकर 'शरीरकभाष्य'।

[२८] " ऋग्वेद संहिताया तु मण्डलानि दश क्रमात्"। १०/६३ बृहतहारीतस्मृति।

अनुवाक् मे भी एक वश के ऋषियो के सूक्त रखे गये है। यदि ऋषि के सूक्त की सख्या कम है तो उन्हे अलग अनुवाक् मे रखा गया है जबकि अष्टको, अध्यायो एव वर्गों का प्रारम्भ एव समापन बिना किसी नियम के हो जाता है। शौनक के अनुसार ऋग्वेद मे १०५८० १/४ मन्त्र है जब कि चरणव्यूह के अनुसार १०६८१ मन्त्र है। सम्प्रति ऋग्वेद मे १०५५२ मन्त्र, १५३८२६ शब्द तथा ४३२००० अक्षर प्राप्त होते है।

१.६ ऋग्वेद का काल -निर्धारण-

ठोस साक्ष्य न मिलने के कारण ऋग्वेद का कालनिर्धारण अत्यन्त दुष्कर कार्य है। सक्षेप मे कुछ विद्वानो का निष्कर्ष विचारणीय है। वेद को अनादि[२९] एव सृष्टिपूर्व माना गया है। बालगगाधर तिलक ने ज्योतिष के आधार पर ऋग्वेद का काल ६०००-४००० ई० पू० माना है। अविनाश चन्द्र दास ने भूगोल का आधार मानकर ऋग्वेद का काल लाखो वर्ष पूर्व होना निश्चित किया है। मैक्समूलर ने १२०० ई०पू० ऋग्वेद का काल निर्धारित किया था। उसे निर्धारण के ३० वर्ष पश्चात् मैक्समूलर ने ऋग्वेद को ३००० ई० पू० से पहले का माना है। मैकडानल ने १३००-१००० ई० पू०, व्यूलर ने २००० ई० पू०, याकोबी ने ३००० ई० पू०, श्रेडर ने २००० ई० पू० का ऋग्वेद को माना है। काल निर्णय के विषय मे ऋग्वेद का ई० पू० होना एकमत से स्वीकारा गया है। ऋग्वेद के सभी मन्त्रो की रचना एक समय मे नही हुयी। २ से ७ मण्डल अधिक प्राचीन है जबकि प्रथम और दशम- मण्डल परवर्ती माना गया है। ऋग्वेद के काल निर्धारण के विषय मे बेबर का कथन उचित ही है :- " .once more frankly we donot know"।

वैदिक साहित्य के अन्तर्गत १६५१ ई० मे अब्राहम रोजन ने ब्राह्मण साहित्य पर पुस्तक[३०] लिखी। हेनरी थॉमस कॉलब्रुक[३१] ने वेदो पर सक्षिप्त निबन्ध लिखा। १८०८ ई० मे फ्रीड्रिक श्लीगल ने भारतीय भाषा विज्ञान पर पुस्तक[३२] लिखी। इस पुस्तक मे भाषा विज्ञान के अतिरिक्त रामायण, महाभारत, अभिज्ञानशाकुन्तलम् तथा मनुस्मृति के कुछ अशो का अनुवाद है। वेदाध्ययन की दृष्टि से १८३८-१८६३ महत्वपूर्ण रहा। १८३८ ई० मे फ्रीड्रिक रोजन ने

---

[२९] " अनादिनिधाना नित्या वागुसृष्टा स्वयभुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यत सर्वा प्रवृत्तय॥
नाम रूप च भूताना कर्मणा च प्रवर्तनम्।
वेद शब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वर ॥
सर्वेषा तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्सस्थाश्च निर्ममे॥" ब्रह्म-सूत्र १/३/२८।

[३०] " Open-Deure tot let veborgen Heydendon" ।

[३१] " On the Vedas" ।

[३२] " Ueberdie Sprache Und Weisheit der Indier-Ein Beitrang Zur Begrundung der Altertumskunde"।

ऋग्वेद के प्रथम पाठ मण्डलो को प्रकाशित करवाया। ईगेन बर्नफ ने यूरोप मे वेदाध्ययन का प्रचार किया। उनके शिष्य रूडाल्फ रॉथ थे जिनकी पुस्तक " Zur Littertur Und Geschichte des Weda" वैदिक साहित्य के इतिहास तथा भाषाविज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। सर्वप्रथम सम्पूर्ण ऋग्वेद का सम्पादन (१८६१-१८६३ ई०) थॉमस आफ्रिट ने किया। बर्नफ के शिष्यो मे मैक्समूलर का नाम उल्लेखनीय है। उन्होने सायण भाष्य के आधार पर सम्पूर्ण ऋग्वेद का सम्पादन किया।

ऋग्वेद का पञ्चम-मण्डल वश-मण्डल या Family Book[३३] के अन्तर्गत है। ऐसा पाश्चात्य विद्वानो का मत है। दो से सात मण्डल एक ही ऋषि वश के द्वारा दृष्ट मन्त्रो के सङ्कलन के कारण वश-मण्डल कहलाते है। पञ्चम मण्डल मे ८७ सूक्त, ६ अनुवाक् तथा ७२७ मन्त्र है। आठ सूक्तो को छोडकर शेष सभी सूक्त अत्रि वशियो के है।

१.१० वेदों के भारतीय एवं पाश्चात्य व्याख्याकार-

वेदो मे ज्ञान का वह अक्षय्य भण्डार है जिसने प्राचीन काल से ही अनेक विद्वानो को अपनी ओर आकृष्ट किया है। ब्राह्मणो को वेदो का व्याख्यानग्रन्थ कहा गया है। ब्राह्मणो मे वैदिक कर्मकाण्ड का सविस्तार वर्णन है। शब्दो और अनुवाद को ध्यान मे रखते हुये वेदो पर अनेक भाष्य लिखे गये है। दुर्भाग्य से अनेक भाष्य अप्राप्त है ऋग्वेद के जिन प्रमुख भाष्यकारो का वर्णन मिलता है उनका विवरण इस प्रकार है -

स्कन्दस्वामी को ऋग्वेद का प्राचीनतम भाष्यकार माना गया है। उनके ऋग्वेद भाष्य के प्रथमाष्टक मे प्राप्त विवरण के अनुसार ज्ञात होता है कि ये गुजरात प्रात के 'बलभी' के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम 'भतृध्रुव-[३४] था। शतपथ - ब्राह्मण[३५] के भाष्यकार हरिस्वामी ने स्कन्दस्वामी को अपना गुरू माना। स्कन्दस्वामी का समय (६२५ ई०)[३६] के आसपास अनुमानत· सिद्ध होता है।

नारायण - स्कन्दस्वामी, नारायण तथा उद्गीथ को सयुक्त रूप से ऋग्वेद का भाष्कार कहा गया है।

उद्गीथ - स्कन्दस्वामी के सहायक भाष्यकार के रूप मे उद्गीथ का विवरण प्राप्त होता है। उद्गीथ कर्नाटक के 'वनवासी' नामक जगह के निवासी थे।

---

[३३] " The majority of the oldest hymns are to be found in book II to VII which are usually called the 'Family Book' because each is ascribed by tradition to a particular family of singers " Winternitz-'History of Indian Literature '

[३४] " बलभीविनिवास्येतामृगर्थागम सहृतिम्।
भर्तृध्रुवसुतश्चक्रे स्कन्दस्वामी यथास्मृति।।" (ऋग्वेदभाष्य चतुर्थोष्टकः अष्टमोऽध्याय पृ० स० २२१८।

[३५] " श्रीस्कन्दस्वाम्यस्ति मे गुरु " शतपथभाष्य ५/६/७।

[३६] 'वैदिक साहित्य और सस्कृति' - आचार्य बलदेव उपाध्याय - पृ० स० ४६।

वेङ्कटमाधव- ने सम्पूर्ण ऋग्वेद पर अपना भाष्य लिखा। चतुर्थ अष्टक के उनके भाष्य के आधार पर ज्ञात होता है कि इनके पिता श्री वेङ्कटार्य[३७] थे।

सायण - का वेदो के भाष्कारो मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। सायण विजयनगर के सस्थापक बुक्क तथा हरिहर के अमात्य थे। सायण के पिता का नाम मायण माता श्रीमती अथवा श्रीमायी, ज्येष्ठ भ्राता माधवाचार्य, कनिष्ठ भ्राता भोगनाथ, पुत्र कपड, मायण तथा शिङ्गण थे। इन सबका विवरण सायण के ग्रन्थो मे मिलता है। सायण ने वैदिक साहित्य पर भाष्य[३८] लिखे है।

सायण के अन्य ग्रन्थ है - सुभाषित - सुधानिधि, प्रायश्चत्- सुधानिधि, आयुर्वेद-सुधानिधि, अलङ्कार-सुधानिधि, पुरुषार्थ-सुधानिधि, यज्ञतन्त्र- सुधानिधि, माधवीया धातुवृत्ति आदि। सायण की ऋग्वेद की व्याख्या अत्यन्त स्पष्ट है। भाषा सरल है। यथावसर शब्दो की व्युत्पत्ति, कथानक का विस्तार, यज्ञ-पद्धति का विश्लेषण किया गया है। वेदो को जानने के लिये सायण भाष्यो का अध्ययन अत्यावश्यक है।

मुद्गल - सायण के अनुयायी थे। ऋग्वेद के प्रथमाष्टक एव चतुर्थाष्टक के पॉच अध्यायो पर मुद्गल का भाष्य प्राप्त है।

---

[३७] " ऋगर्थदीपिका सेय चतुर्थश्चायमष्टक।
कर्ता श्रीवेङ्कटार्यस्य तनयो माधवाह्वय·॥१॥ ' ऋग्वेदभाष्य चतुर्थो अष्टको अष्टमोऽध्याय·' पृ० स० २२१८।

[३८] (१) तैत्तिरीय सहिता (कृष्ण यजुर्वेद की)
(२) ऋग्वेद संहित (३) सामवेद संहिता (४) काण्व सहिता (शुक्ल यजुर्वेदीय) (५) अथर्ववेद सहिता।
सायण के द्वारा व्याख्यात ब्राह्मण तथा आरण्यक-
(क) कृष्ण यजुर्वेदीय ब्राह्मण -
(१) तैत्तिरीय ब्राह्मण (२) तैत्तिरीय आरण्यक।
(ख) ऋग्वेद के ब्राह्मण -
(१) ऐतरेय ब्राह्मण (२) ऐतरेय आरण्यक।
(ग) सामवेद के ब्राह्मण -
(५) ताण्ड्य (पञ्चविश) महाब्राह्मण
(६) षड्विश ब्राह्मण
(७) सामविधान ब्राह्मण
(८) देवताध्याय ब्राह्मण
(९) आर्षेय ब्राह्मण
(१०) उपनिषद ब्राह्मण
(११) सहितोपनिषद् ब्राहमण
(१२) वश ब्राह्मण।
(घ) शुक्ल यजुर्वेदीय ब्राह्मण -
(१३) शतपथ ब्राह्मण। ' वेदभाष्य भूमिका सग्रह " पृ० स० ३१, ३२।

शाकल्य- ने ऋग्वेद का पदपाठ किया है। वर्तमान समय अर्थात् आधुनिक काल मे **शङ्कर पाण्डुरङ्ग दीक्षित** ने ऋग्वेद की व्याख्या का कार्य 'वेदार्थ यत्न' नामक पुस्तक मे प्रारम्भ किया था। यह मराठी एव अग्रेजी भाषा मे है। उनकी अकाल मृत्यु से यह कार्य ऋग्वेद तृतीय मण्डल तक ही हो सका। **लोकमान्य बालगंगाधर तिलक** ने वैदिक आलोचना का ओरियन' और ' आर्कटिक होम इन द वेदेज ' ग्रन्थ लिखा। **स्वामी दयानन्द सरस्वती** ने आध्यात्मिक पद्धति पर आधारित 'ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका ' नामक पुस्तक लिखी। श्री अरविन्द की पुस्तक ' Hymns to the mystic fire' वेदो के आध्यात्मिक तथ्यो का स्पष्ट निरूपण करती है। **श्री अविनाश चन्द्र दास** ने अग्रेजी मे ' Rigvedic India' नामक पुस्तक लिखी। **श्रीपाद दामोदर सातवलेकर** ने ' ऋग्वेद मे सुबोध भाष्य' नामक ग्रन्थ हिन्दी मे लिखा। इसकी भाषा सरल है एव ऋग्वेद के हिन्दी अनुवाद मे इसका महत्वपूर्ण स्थान है। **श्री रामगोविन्द त्रिवेदी** ने ऋग्वेद का हिन्दी, **श्री रमेश चन्द्र दत्त** ने बगला तथा **सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव** ने मराठी मे अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त स्वामी **स्वामी विश्वेश्वरानन्द** ने चारो वेदो की पदसूची प्रकाशित की। आचार्य बलदेव उपाध्याय की ' वैदिक साहित्य एव सस्कृति' तथा श्री गजानन्द शास्त्री मुसलगॉवकर एव प० गजेश्वर केशव शास्त्री का ' वैदिक साहित्य का इतिहास ' पठनीय है। डॉ० सूर्यकान्त का ' वैदिक कोश ' विश्वबन्धु का वैदिक पदानुक्रमकोश' भगवद्दत का 'वैदिक वाड्मय का इतिहास' हसराज, भगवद्दत का 'वैदिक कोश' श्री राम कुमार राय द्वारा अनुदित ग्रन्थ वेदाध्ययन मे अत्यन्त सहायक है। विस्तारभय से अनेक भारतीय एव पाश्चात्य विद्वानो एव उनके ग्रन्थो का विवरण नही दिया जा सका है।

१.११ ऋग्वेद-पञ्चम-मण्डल के देवता-

पञ्चम मण्डल मे अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेवा, मरुत के क्रमश. १८४, १०२, १२०, ११८ मन्त्र है। इसके अतिरिक्त मित्रावरुणौ, अश्विनौ, उषस्, पर्जन्य, वरुण, इन्द्राग्नी, पृथिवी, इन्द्रवायू, सूर्य, रुद्र तथा वायु आदि देवताओ के भी सूक्त है।

देव शब्द दिव् 'कान्तौ' से 'अच् प्रत्यय प्रकाशक, द्युतिमान, दिव्य अर्थो का बोधक है। बाद मे यह 'ईश्वर' अर्थ मे रूढ हो गया। अवेस्ता मे 'दएव' का अर्थ 'दानव' अर्थात् देव का विलोम है। इनमे प्रमुख है -

१.११.१ अग्नि-

पार्थिव देवताओ मे अग्नि का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अग्नि के महत्त्व की द्योतक है ऋग्वेद के

लगभग २०० सूक्तो मे उनकी स्तुति एवम् अनेक सूक्तो मे अन्य देवताओ के साथ उनका सम्मिलित आह्वान। ऐतरेय[३९]-ब्राह्मण मे अग्नि को देवताओ मे सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। ऋग्वेद- पञ्चम-मण्डल मे अग्नि के सर्वाधिक १८४ मन्त्र हैं।

'यद्यपि अग्नि[४०] एक भारोपीय शब्द है (लैटिन ' इग्निस' स्लेवोनिक 'अग्नि') तथापि इस नाम के साथ इनकी उपासना सर्वथा भारतीय है।'

अग्नि की शारीरिक विशेषताये है - वह 'हिरण्य[४१] सदृश ज्वालाओ वाला, प्रदीप्त वर्ण, बहुज्वाला विशिष्ट[४२] सात ज्वालाओ[४३] को धारण करने वाला' है।

अग्नि का न जलना वर्तमान समय मे एक स्वाभाविक घटना हो सकती है किन्तु तत्कालीन लोग अग्नि से कल्याण की कामना करते थे क्योकि सम्भवतः इच्छानुसार अग्नि जलाना तब सम्भव नही था। इन्ही भावनाओ को मैक्समूलर[४४] ने भी व्यक्त किया है। इसी के विषय मे कहा गया है कि प्राणियो[४५] के स्वामी, लोगो के आवासभूत अग्नि को शत्रुगण ने मर्त्यलोक मे छिपा कर रखा है। अत्रि के स्तोत्र उस अग्नि को मुक्त करे तथा निन्दक निन्दित हो।

अग्नि का सम्बन्ध अनेक आख्यानो से रहा है। अग्नि ने शुन शेप[४६] के आह्वान पर बँधे हुये उसको मुक्त किया।

अग्नि[४७] प्रजाओ का पालनक, मेधावी, कान्तिवान, पवित्र, घृतपृष्ठ, होमनिष्पादक है। वह देवताओ के धन को मनुष्यो को प्रदान करता है।

---

[३९] "अग्निर्वै देवाना वसिष्ठः"। ऐ० ब्रा० १/१॥

[४०] वे० मा० - पृ०स० १८७

[४१] ऋ० ५ ३.२.।

[४२] ऋ ५ २ १२.

[४३] ऋ ५. १ ५.

[४४] " They feel their dependence on fire, they have experienced what it is to be without it They were not yet acquainted with lucifer matches, and hence, when describing the simple phenomena of fire, they do it naturally with a kind of religious reverence " ' A History of Ancient sanskrit Literature पृ० स० ५०१।

[४५] वसा राजान वसति जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु।
ब्रह्माण्यत्रेरव सृजन्तु निदितारो निन्द्यासो भवन्तु॥ ऋ. ५.२.६.।

[४६] "शुनश्चिच्छेप निदित सहस्राद्यूपादमुचो अशमिष्ट हि ष।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशाहोतश्चिकित्व इह तू निषद्य॥ ऋ ५. २.७.॥

[४७] "विशा कवि विश्पति मानुषीणा शुचि पावक घृतपृष्ठमग्नि।
नि होतार विश्वविदे दधिध्वे स देवेषु वनते वार्याणि॥ ऋ.५.४. ३।

अग्नि[४८] सत्यधारक, अहिंसित गमन वाला, बल प्रदाता, यज्ञ मे प्रसूत होने वाला, बलवान, जरारहित शिशु युवा एव समस्त ओषधियो के मध्य स्थित होता है तथा हवि का सेवन करता है।

अग्नि[४९] के उपकारक स्वरूप के साथ ही उसके विनाशक रूप का भी वर्णन है। अग्नि निर्जल प्रदेश को जला देता है।

अन्य देवताअे की अपेक्षा अग्नि मनुष्यो का निकटस्थ है। ब्राह्मण ग्रन्थो[५०] मे कहा भी गया है कि अग्नि निकटस्थ है। इसी कारण 'पुरातन'[५१] दीप्त ज्वालाओ वाले, अनेक रूपो वाले अग्नि को यजमान गृहपति के रूप मे स्थापित करते है। 'प्रजाओ[५२] का रक्षक अग्नि लोगो के नूतन कल्याण के लिये उत्पन्न होता है। घृत द्वारा प्रज्ज्वलित अग्नि ऋत्विको के लिये प्रकाशित होता है।

अग्नि तीनो स्थान[५३] अर्थात् द्यावापृथिवी एवम् अन्तरिक्ष मे समान रूप से रहता है। देवो का आह्वाता अग्नि कुश पर यजन के लिये बैठता है। अन्तरिक्षव्यापी धूम[५४] अग्नि का प्रज्ञापक है।

अग्नि को देवताओ का दूत[५५] कहा गया है। अग्नि अपनी जिह्वा[५६] द्वारा देवताओ को यज्ञ मे लाता है। एक मन्त्र मे अग्नि[५७] से प्रार्थना की गयी है कि भलीभाँति प्रदीप्त होकर वह देवताओ का यजन करे क्योकि वह

---

[४८] "अत्यं हवि सचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरि।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः॥" ऋ. ५.४३.३।

[४९] "स हि ष्माधन्वाक्षित दाता न दात्या पशुः। हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषि ॥" ऋ.५.७.७।

[५०] "अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः।" ऐ० ब्रा० १/१॥
"अग्निर्वै देवानामवरार्ध्यो विष्णुः परार्ध्यः" कौ० ब्रा० १७/१॥

[५१] त्वामग्ने अतिथि पूर्व्य विशः शोचिष्केश गृहपति नि षेदिरे।
बृहत्केतु पुरुरूप धनस्पृत सुशर्माण स्ववस जरद्विष॥" ऋ.५.८. २।

[५२] जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्ष सुविताय नव्यसे।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भरतेभ्यः शुचिः॥" ऋ ५. ११.१.।

[५३] " यज्ञस्य केतु प्रथम पुरोहितमग्नि नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे।
इन्द्रेण देवै सरथ स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः॥" ऋ५.११. २.।

[५४] ऋ ५.११.३.।

[५५] ऋ ५. ११. ४

[५६] " अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया। अ देवान्वक्षि यक्षि च॥" ऋ ५.२१.१.।

[५७] " समिद्धो अग्न आहुत देवान्वक्षि स्वध्वर। त्व हव्यवाळसि॥" ऋ ५.२८ ५ ।

हव्यवाहन करने वाला है। ब्राह्मण ग्रन्थो[५८] मे अग्नि को यज्ञ का मुख, देवताओ का मुख एवम् देवताओ तक अन्न पहुँचाने वाला कहा गया है।

अग्नि की अन्य विशेषताये है- ' वह स्वर्णभूषणयुक्त ग्रीवा[५९] वाला महान स्तोता, अन्नाभिलाषी है। अग्नि घृत द्वारा प्रसन्न होने वाला, धन का स्वामी, गृहदाता एव यशस्वी है।

अरणि[६०]को अग्नि की माता कहा गया है। एक मन्त्र मे अङ्गिरा[६१] को अग्नि का पिता कहा गया है। ऋग्वैदिक समाज मे यज्ञ का प्रमुख स्थान था और अग्नि जलाये बिना यज्ञ सम्भव नही था। अत· अग्नि का महत्व बढता रहा। दैनिक जीवन मे अग्नि की आवश्यकता ने भी उसको प्रभावशाली बनाया। मैकडानल[६२] ने सक्षेप मे उसके महत्व एव उपयोगिता को लिखा है।

१.११.२ बृहस्पति

बृहस्पति का देवताओ मे अत्यन्त सम्मानजनक स्थान है। ऐतरेय ब्राह्मण[६३] मे बृहस्पति को देवताओ का पुरोहित कहा गया है।

बृहस्पति धन एव मन्त्रो के स्वामी है। 'बृहस्पति[६४] स्तवन करने वाले स्तोता को सुखप्रदान करने वाले, हवन करने वाले को प्रभूत धन देने वाले एव धन के सरक्षक है।'

---

[५८] " अग्निर्वै यज्ञमुखम्। तै० ब्रा०।१/६!१/८॥
" अग्निमुखा वै देवताः "। ता० ब्रा०।२५/१४/४
" तस्माद्देवा अग्निमुखा अन्नमदन्ति। श० ब्रा० ६/१/२/४॥
" अग्नौ हि सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहृवति।" श० ब्रा०।६/२/८॥

[५९] " आ श्वैत्रेयस्य जतवो द्युमद्वर्धत कृष्टय.।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयु ॥ ऋ ५.१९. ३.।

[६०] ऋ ५.२.१., ५.२.२.।

[६१] ऋ.५.८ ४.।

[६२] " भारतीय ईरानी काल मे सम्भवतः अथर्वन नामक एक पुरोहित वर्ग के द्वारा प्रयुक्त विकसित सस्कार के केन्द्र के रूप मे यज्ञाग्नि का महत्व वर्तमान था, जिसका एक शक्तिशाली, विशुद्ध, बुद्धिमान देव, और भाजन, सन्तान, बौद्धिक शक्ति, यश आदि प्रदान करने वाले के रूप मे मूर्तीकरण और स्तवन किया गया है, जो गृह के प्रति मित्र किन्तु शत्रुओ को विनष्ट करने वाला है। " वै० मा० पृ० स० १८७।

[६३] " बृहस्पतिव देवाना पुराहितः "॥ ऐ० ब्रा०।८।२६॥

[६४] " उप स्तुहि प्रथम रत्नधेय बृहस्पति सनितार धनाना।
य शसते स्तुवते शभविष्ठः पुरुवसुरागमज्जोहुवान॥ " ऋ ५.६२.७.।

बृहस्पति[६५] मनुष्यो की रक्षा करने वाले है। बृहस्पति नियम निर्धारक है एव नियम का पालन करवाने वाले है। बृहस्पति[६६] से प्रार्थना की गयी है कि स्तोताओ को धन न प्रदान करने वाले मन्त्रद्वेषियो को सूर्य से दूर करो।

बृहस्पति की शारीरिक विशेषताओ मे उन्हे स्निग्धाङ्ग, स्वर्ण वर्ण माला एव तेजस्वी कहा गया है। ऋत्विजो से एक मन्त्र मे प्रार्थना की गयी है कि इस प्रकार की विशेषताओ वाले बृहस्पति[६७] की यज्ञगृह मे स्थापना करे एव सेवा करे।

बृहस्पति सत्य के मार्ग से विरत लोगो को उनका कर्त्तव्य याद दिलाते है। बृहस्पति का सन्तुलित व्यक्तित्व उनके व्रत-पालक एव कल्याणकारी रूप की पुष्टि करता है।

१.११.३ पृथिवी

वैदिक काल मे पृथिवी को अत्यन्त उच्च स्थान दिया गया। अधिकाश मन्त्रो मे उसे माता कहा गया है। पृथिवी अत्यन्त व्यापक है। (√ पृथ् 'विस्तारे' ङीप्) यह व्युत्पत्ति उसके विस्तृत होने का द्योतक है।

पृथिवी[६८] वृष्टि का जल अपने मे धारण करके वनस्पतियो का पोषण करती है। ब्राह्मण ग्रन्थो[६९] मे भी कहा गया है कि पृथिवी मे जल स्थित है।

पृथिवी[७०] को विचरणशील एव शुभ्रवर्णा कहा गया है। माता पृथिवी[७१] से प्रार्थना की गयी है कि वह स्तोताओ को दुर्मति मे न स्थापित करे।

पृथिवी से अभिप्राय इसी भौतिक जगत् से है। पृथिवी के सारे गुण जो ऋग्वेद मे वर्णित इसी की पुष्टि करते है।

---

[६५] ऋ ५ ४२.८.।

[६६] " विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषं ये भुजते अपृणतो न उक्थैः।"
अपव्रतान्प्रसवे वावृधानान्ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व॥ " ऋ ५.४२.९.।

[६७] " आ वेधस नीलपृष्ठ बृहत बृहस्पति सदने सादयध्व।
सादद्योनि दम आ दीदिवास हिरण्यवर्णमरुष सपेम॥ " ऋ ५.४३.१२.।

[६८] " दृळ्हा चिद्या वनस्पतीन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा।
यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षति वृष्टयः॥ " ऋ ५.८४.३.।

[६९] " पृथिव्यप्सु (प्रतिष्ठता)" ऐ० ब्रा० ३/६॥
" पृथिव्यस्यप्सु श्रिता। अग्नेः प्रतिष्ठा॥ तै० ब्रा०।३।११।६॥

[७०] ऋ ५.८४.२.।

[७१] ऋ ५.४२. १६.।

१.११.४ इन्द्र

शक्तिशाली राष्ट्रीय देवता के रूप मे इन्द्र का स्थान ऋग्वेद मे अग्रगण्य है। किसी अन्य देवता की अपेक्षा इन्द्र को अर्पित २५० सूक्तो की सख्या सर्वाधिक है। " इन्द्र[७२] नाम जो भारतीय ईरानी काल का ही है तथा जिसका अर्थ अनिश्चित है किसी प्राकृतिक घटना का वाचक न होने के कारण, इन्द्र का व्यक्तित्व अत्यधिक मूर्तीकृत हो गया है और वास्तव मे वेदो के किसी भी अन्य देवता की अपेक्षा यह पुराकथा शास्त्रीय कल्पनाओ से कही अधिक परिपूर्ण है। "

इन्द्र शब्द √ इन्ध 'दीप्तौ' से 'र' प्रत्यय लगकर व्युत्पन्न हुआ है। शतपथ ब्राह्मण[७३] में इन्द्र को दीप्त करने वाला कहा गया है।

इन्द्र[७४] बलवान, बहुतो द्वारा आहूत, धन के साथ सोमाभिषव करने वाले यजमान के घर जाने वाला है। सोम इन्द्र का प्रिय पेय[७५] है। सोमपायी इन्द्र का माध्यन्दिन-सवन[७६] मे आह्वान किया जाता है।

इन्द्र की वीरता जन्मजात है। एक मन्त्र मे कहा गया है- ' अजाशत्रु[७७] इन्द्र ने जन्मजात पराक्रम से इन समस्त वीरता का कार्य किया है। इन्द्र ने जो किया है उसके बल का निवारयिता कोई नही है '।

इन्द्र का प्रमुख कार्य रहा है युद्ध। इन्द्र युद्ध[७८] मे शत्रुओ को क्षीण करने वाला है। अनेक स्थलो पर इन्द्र द्वारा वृत्र का वधकर जलधाराओ को मुक्त करने का उल्लेख है। मरुतो ने सोमपान से तृप्त इन्द्र की अर्चना की तब वज्र ग्रहण कर इन्द्र[७९] ने वृत्र को मारा। इन्द्र ने शम्बर[८०] के निन्यानवे नगरो को एक साथ वज्र से नष्ट किया था। इन्द्र

---

[७२] वै० मा० पृ० स० १०२

[७३] " इन्धो वै नामैष योऽय दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्त वाऽएतमिन्ध ०० सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोऽक्षेणेव " श० ब्रा० १४/६/११/२।

[७४] ऋ ५.३० १.।

[७५] ऋ. ५ ३६ १, २ ।

[७६] ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः।। " ऋ.५.४३.४.।

[७७] ' एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण।
या चिन्नु वज्रिन्कृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः।। " ऋ ५.३४.६.।

[७८] " वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणाः सुन्वतो वृधः।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथवश नयति दासमार्यः।। "।

[७९] " अनु यदी मरुतो मदसानमार्चनिन्द्रं पपिवासं सुतस्य।
आदत्त वज्रमभि यदहि हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ।। " ऋ ५.२९.२.।

ने पिप्रु[८१] का वध किया। इन्द्र ने ही शुष्म को मारा। इन्द्र ने दास नमुचि[८२] जिसने स्त्रियो को युद्धसाधन बनाया था, के मस्तक को चूर्ण किया।

इन्द्र अपने विरोधियो का शत्रु था परन्तु मित्रता का भाव रखने वालो का अच्छा मित्र एव सहायक था। इन्द्र ने कुत्स[८३] के लिये शुष्म का वध किया। इन्द्र ने ऋजीष्वा[८४] के लिये पिप्रु को हिंसित किया। ऋजीश्वा द्वारा पकाये गये पुरोडाश एव सोम का इन्द्र ने पान किया। बभ्रु[८५] ने इन्द्र से कहा कि जन्म से तुमने शत्रुओ का सहार किया। मेरे लिये दास नमुचि का मस्तक चूर्ण करो। इन्द्र ने नमुचि का मस्तक चूर्ण करने के पश्चात् बभ्रु से मैत्री[८६] की।

इन्द्र का कार्य सर्वदा युद्ध करना ही नही था। कही-कही उसका शान्त कल्याणकारी रूप भी प्रदर्शित होता है। एक मन्त्र मे कहा गया है- इन्द्र[८७] यजमानो को धन प्रदान करता है, पर्वतो के मध्य गायो को मुक्त करता है, तेज द्वारा अन्धकार को दूर करता है। इन्द्र[८८] पिता के कर्मों का दण्ड पुत्रो को नही देता। वह इस विषय मे निरपेक्ष रहकर उनसे भी हव्यकामना करता है।

उत ब्राह्मणो मरुतो मे अस्येद्र· सोमस्य सुषुतस्य पेयाः।
ताहि हव्य मनुषे गा अविंदुहन्नहिं पपिवाँ इद्रों अस्य।। ऋ ५.२६.३.।
" आद्रोदसी वितर वि ष्कंभायत्संविव्यानश्चिंदिभ्यसे मृग कः।
जिगर्तिमिद्रों अपजर्गुराणः प्रति श्वसतमव दानव हंन्।। " ऋ ५.४. ४.।

[८०] " नव यदस्य नवति च भोगान्त्साक वज्रेण मघवा विवृश्चत्।
अर्चतीन्द्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा बाधत द्या।। ऋ ५.२६. ६.।

[८१] ऋ ५.२६.११.।

[८२] " स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे कि मा करन्नबला अस्य सेनाः।
अतर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिद्रः।।" ऋ ५.३त्र.६.।

[८३] " उशना यत्सहस्यैरयात गृहमिंद्र जूजुवानेभिरश्वैः।
वन्वानो अत्र सरथ ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्ण।। " ऋ ५.२६.६.।

[८४] ऋ ५.२६.११.।

[८५] " वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्त्सचकान·।
अत्रा दासस्य नमुचे शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छान्।। " ऋ ५.३०. ७.।

[८६] " युज हि मामकृथा आदिदिंद्र दासस्य नमुचेर्मथायन्।
अश्मान चित्स्वर्य १ वर्तमान प्र चक्रियेव रोदसी मरूद्भ्यः।। " ऋ ५.२६.८.।

[८७] " उद्यत्सह सहस आजनिष्ट देदिष्ट इद्रं इंद्रियाणि विश्वा।
प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अतर्वि ज्योतिषा सववृत्वत्तमोऽव·।।" ऋ ५.३१.३.।

[८८] " यस्यावधीत्पितर यस्य मातर यस्य शक्रो भ्रातर नात ईषते।
वेतीद्वस्य प्रयता यतकरो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः।। " ऋ ५.३४.४.।

इन्द्र को समर्पित मन्त्रो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वह वीर एव युद्धप्रिय देवता थे। सम्भवत युद्ध उनके लिये मात्र इच्छापूर्ति नही अपितु आवश्यक था। इन्द्र एक अच्छे मित्र थे एवम् उन्होने अनेक जन कल्याणकारी कार्य किये। मैक्समूलर[८६] ने इन्द्र को युद्धनायक कहा है। इन्द्र के कल्याणकारी रूप की अपेक्षा एक वीर योद्धा का उनका रूप अधिक उभरकर सामने आता है।

१.११.५ मरुत्

मरुत् या मरुद्गण बलवान, समर्थ एव जलवर्षा कराने वाले है। ऋग्वेद पञ्चम मण्डल मे मरुतो की ११८ मन्त्रो मे स्तुति है।

मरुत[६०] मनुष्यो को हिसको से बचाने वाले है। 'मरुत् पूज्य[६१] शोभनदाता, अनल्पबलयुक्त, तेजस्वी और नेता है। 'मरुतो का बल[६२] स्तवनीय है।' ' मरुत्[६३] प्रभूत जलवाले, आभरणयुक्त एव सुकुलोत्पन्न है। मरुत किसी भी समय कही भी जाने मे समर्थ है। ' मरुत्[६४] दिनरात का अतिक्रमणकर गमन करते है। इन्द्र के अतिरिक्त मरुत[६५] भी जलवर्षा करवाते है। शतपथ ब्राह्मण[६६] मेभी मारुतो द्वारा वर्षा करवाने का उल्लेख है। मरुत् पर्वत[६७]को विदीर्ण करने वाले है।। एक अन्य मन्त्र मे उन्हे पर्वतच्यावी[६८] एव प्रभूत बलदायक कहा गया है।

---

[८६] " Indra is there represented like a hero fighting against enemies He is liable to defeat, his heart fails him in the combat, and though at last he invariably conquers, he does so rather by an effort than by the mere assertion of his power " ' A History of Ancient Sanskrit Literature' पृ० सं० ५०१।

[६०] " मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया। विश्वेये मानुषा युगा पाति मर्त्य रिप.।। " ऋ.५.५२.४.।

[६१] अर्हतो ये सुदानवो नरो असामिशवसः। प्र यज्ञ यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः।। ' ऋ ५.५२.५.।

[६२] शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसं। उत स्म ते शुभेनरः प्र स्यद्रा युजत त्मना।। ' ऋ ५.५२.८.।

[६३] " पुरुद्रप्सा अञ्जिमतः सुदानवस्त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृत नाम भेजिरे।। " ऋ ५. ७. ५.।

[६४] ते स्यद्रासो नोक्षणोऽतिष्कदंति शर्वरीः। मरुतामधा महो दिविक्षमा च मन्महे।। " ऋ ५.५२. ३.।

[६५] आ य नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः।
वि पर्जन्यं सृजंति रोदसी अनु धन्वना यंति वृष्टयः।। " ऋ ५.५३.६.।

[६६] मरुतौ वै वर्षस्येते"। श० ब्रा०/६/१/२। ५।।

[६७] प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमा वाचमनजा पर्वतच्युते।
धर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत।। " ऋ ५.५४.१.।

[६८] " विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः।। ऋ ५.५४.३।

मरुतो को अपने स्थान से चलने के लिये कोई भी प्रेरित नही कर सकता। मरुत्[९९] स्वय दीप्त एव नदियो के सञ्चालक है। इन विशेषताओ से युक्त होने पर भी स्तुति कामना मरुतो मे है। उन्होने श्यावाश्वात्रेय से अपनी स्तुति[१००] करने को स्वय ही कहा।

मरुतो की अन्य विशेषताओ के साथ उनकी भयकरता भी प्रसिद्ध है। मरुतो को भीमसदृश[१०१] कहा गया है। 'मरुतो[१०२] के गर्जन से अत्यन्त विशाल पर्वत भी भयभीत हो जाते है। विशाल प्रदेश भी कॉपता है।

मरुत्[१०३] द्युलोक पृथिवी एवम् अन्तरिक्ष तीनो स्थानो मे रहते है।

मरूद्गण एक साथ उत्पन्न हुये। इनमे न कोई ज्येष्ठ[१०४] है न कनिष्ठ। सौभाग्य के लिये ये एक साथ बढते है। ब्राह्मण ग्रन्थो[१०५] मे मरुद्गणो की सख्या सात कही गयी है। ' मरुतो के गण[१०६] सुखप्रदाता, अपनी महिमा से अपरिच्छिन्न, दीप्त, बलयुक्त कगन युक्त हाथ वाले, कॅपाने वाले, प्रज्ञायुक्त एव धनदाता है।

रुद्र[१०७] को मरुतो का पिता कहा गया है। पृश्नि को मरुतो की माता कहा गया है। मरुतो के विशेषण मे 'रुद्रा·[१०८] 'रुद्रासः' एव 'पृश्निमातरः[१०९] शब्द प्रयुक्त होते हैं।

मरुतो के विषय मे अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनका व्यक्तित्व अत्यन्त सन्तुलित है। आवश्यकता पड़ने पर वो अत्यन्त उग्र एव भयकर हो जाते है तो कभी शान्त, वृष्टि कराने वाले एव कल्याणकारी हो जाते है।

---

[९९] " प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत्।
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युत· प्र स्यन्द्रासो धुनीना॥ " ऋ ५. ८७.३.।

[१००] ते मै आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे। नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि॥ " ऋ ५.५३.३.।

[१०१] ऋ ५.५४.४; ६२. २.।

[१०२] " पर्वतश्चिमहि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः।
यत्क्रीळथ मरुत ऋष्टिमत आप इव सध्र्यचो धवध्वे॥ " ऋ ५.६त्र.३.।

[१०३] " यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्व१स्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम। ऋ ५.६०. ५.।

[१०४] " अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते स भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
साक जाता· सुभ्वः साकमुक्षिता श्रिये चिदा प्रतर वावृधुर्नरः॥ " ऋ ५.६त्र. ५.।

[१०५] " सप्त हि मरुतो गणः। " श० ब्रा० २/५/१/१३
" सप्तगण वै मरुतः।" तै० ब्रा० ६/२/३/१२/७/२/२॥

[१०६] त्वेष गण तवस खादिहस्त धुनिव्रत मायिन दातिवार।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वदस्व विप्र तुविराधसो नॄन्॥ " ऋ ५. ५८. २.।

[१०७] युवा पिता स्वपा रुद्र एषा सुदुधा पृश्निः· सुदिना मरुद्भ्य·॥ " ऋ ५.६१.५.।

[१०८] ऋ ५.८७.७.।

१.११.६ रुद्र

ऋग्वेद मे रुद्र एक शक्तिशाली देवता के रूप मे प्रसिद्ध है किन्तु ऋग्वेद पञ्चम मण्डल मे उनका अधिक वर्णन नही है। मरुतो के पिता के रूप मे उनका नाम अनेक मन्त्रो मे आया है।

रुद्र[११०] कान्तिवान, प्राणदाता एव यजनीय है। रुद्र वीर योद्धा है। रुद्र[१११] शोभन वाण, धनुष वाले, ओषधियो के स्वामी, प्राणदायक एव दिव्य है। कौषीतकि ब्राह्मण[११२] मे रुद्र को 'घोरः कहा गया है। रुद्र के लिये मीळहुष[११३] शब्द आया है जो उनके कल्याणकारी रूप का द्योतक है।

रुद्र जितने उग्र है। उतने ही शान्त भी। वह वीर एव प्राणियो के हितकारी है।

१.११.७ वायु

वात, वायु, हवा नाम भिन्न - भिन्न होने पर भी दैनिक जीवन की आवश्यकता मे वायु के महत्व को नकारा नही जा सकता है। ऋग्वेद मे वायु का वर्णन स्वतन्त्र रूप से कम पर अनेक देवताओ से सम्बद्ध अधिक हुआ है।

वायु शब्द √ वा 'बहना' से निष्पन्न है। वायु के महत्व के कारण ही ब्राह्मण ग्रन्थो मे वायु[११४] को प्राण कहा गया है।

वायु[११५] कान्तिवान स्तवनीय एव मेधावी है। वायु[११६] की अन्य विशेषताये है - वह अन्तरिक्ष मे निवास करने वाला, पञ्चवायु का साधक, अप्रतिहत गतिवाला, प्राणदायक एव सुखदायक है। ब्राह्मण ग्रन्थो[११७] मे वायु को अन्तरिक्ष स्थित बताया गया है। उसे अन्तरिक्ष का अध्यक्ष कहा गया है।

---

[१०९] ऋ ५.५७.२,३.।

[११०] " उत वो दिवो असुराय मन्म प्राधांसीव यज्यवे भरध्व॥" ऋ ५. ४१. ३.।

[१११] " तमु ष्टुहि यः स्विषु. सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य।
यक्ष्वा महे सौमनसाये रुद्र नमोर्भिर्देवमसुर दुवस्य॥ " ऋ ५.४२. ११.॥

[११२] " घोरो वै रुद्रा · " कौ० ब्रा०।१६/७॥

[११३] ऋ ५ ८१ २ ।

[११४] " वायुर्वै प्राण· "। कौ० ब्रा० ८/४। जै० उ० ४/२२/११॥

[११५] " वायुर्हि प्राणः "। ऐ० ब्रा० /२/२६/३/२॥
' प्राणो हि वायु· "। ता० ब्रा० ४/६/८॥।
"प्र वो वायु रथयुज कृणुध्व प्र देव विप्र पनितारमर्कै ·॥ "

[११६] " पृषद्योनिः पचहोता शृणोत्वतूर्तपथा असुरो मयोभु ॥ " ऋ ५.८२.१.।

ऋग्वेद पञ्चम मण्डल मे स्वतन्त्र रूप से वायु का अत्यल्प वर्णन है। वायु का कल्याणकारी रूप ही वर्णित है।

१.११.८ पर्जन्य

तकनीकी के अधिक विकास न होने के कारण ऋग्वैदिक कृषि व्यवस्था वृष्टि पर ही आश्रित थी। वृष्टि कराने वाले देवता के रूप मे पर्जन्य का महत्व है। यद्यपि ऋग्वैदिक मन्त्रो मे पर्जन्य का स्थान गौण ही है।

वृष्टि करना ही पर्जन्य का प्रमुख कार्य है। 'पर्जन्य[११८] गर्जन करने वाले, कामना-सेचक, दानशील बलशाली है। वह ओषधियो के गर्भ मे जल धारण करवाते है। '

शब्द करना गर्जन करना पर्जन्य का स्वभाव है। शतपथ ब्राह्मण[११९] मे कहा गया है कि पर्जन्य क्रन्दन करता है। 'काश। द्वारा अश्वो को उत्तेजित करने वाले रथी की भाँति पर्जन्य[१२०] वर्षक दूत मेघो को प्रकट करता है। पजन्य वर्षक जल को जब अन्तरिक्ष मे स्थपित करता है तब सिह की भाँति गरजने वाले मेघ का शब्द दूर से ही फैल जाता है।

पर्जन्य ओषधियो , वनस्पतियो तथा पृथिवी की उर्वरा-शक्ति मे वृद्धि करता है। एक मन्त्र मे कहा गया है कि पर्जन्य[१२१] द्वारा पृथिवी अवनत अर्थात् आर्द्र होती है, गाय आदि पुष्ट होती है, ओषधियाँ विविधवर्णी होती है। अस्पष्ट रूप से पृथिवी को पर्जन्य[१२२] की पत्नी कहा गया है।

अधिकाश मन्त्रो मे पर्जन्य का कल्याणकारी, वृष्टि प्रदान करने वाला रूप ही वर्णित है पर कही-कही उसकी भयकरता का भी वर्णन है। एक मन्त्र मे कहा गया है कि पर्जन्य[१२३] वृक्षो को नष्ट करता है। राक्षसो को भी मारता है।

---

[११७] " वायुरस्यन्तरिक्षे श्रित·।"
दिव प्रतिष्ठा "। तै० ब्रा० ३/११/१/६
" वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षा : "। तै० ब्रा० ३/२/१/३॥

[११८] अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्य नमसा विवास।
कनिक्रदवृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भं॥" ऋ ५.८३. १.।

[११९] " क्रन्दतीव हि पर्जन्य "। श० ब्रा० ६/३/२॥

[१२०] " रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ३ अह।
दूरात्सिहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः वर्ष्य १ नभ॥ " ऋ ५.८३.३.।

[१२१] यस्य व्रते पृथिवी नन॑मीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपा स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ॥ ,ऋ ५.८३.५.।

[१२२] ऋ ५.८३.५.।

[१२३] वि वृक्षान् हन्त्युत हंति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवन महावधात्।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हति दुष्कृत ·॥ " ऋ ५. ७३.२.।

महावध से समस्त लोक को भयभीत करता है। गर्जन करता हुआ पर्जन्य दुष्टो को भी मारता है। वर्षक पर्जन्य की निष्पाप भी स्तुति करते है।

पर्जन्य की इन्ही विशेषताओ के अध्ययन से निष्कर्ष रूप मे यह कह सकते है कि मेघ का प्रेरक अथवा मेघ का ही एक रूप पर्जन्य है। मैकडानल[१२४] ने भी यही लिखा है -" पर्जन्य नाम की व्युत्पत्ति अनिश्चित है किन्तु चारित्रिक समानता के कारण इसे आज भी बहुधा लिथुआनियन गर्जन देवता पर्कुनस के साथ समीकृत किया जाता है। —— ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि ऋग्वेद मे यह शब्द गर्जन करने वाले वर्षा मेघ की, तथा साथ ही साथ उसके मूर्तीकरण के रूप मे उस देवता के व्यक्ति वाचक नाम की, जो वास्तव मे वर्षा कराता है, अभिधा है। "

१.११.६ अहिर्बुध्न्य

अहिर्बुध्न्य देवता कौन है ? इसका स्पष्ट वर्णन ऋग्वेद मे नही मिलता। मैकडानल[१२५] ने उसे अतल का सर्प कहा है। ऐतरेय ब्राह्मण[१२६] मे कहा गया है जो गार्हपत्य अग्नि है वही अहिर्बुध्न्य है। कौषीतकि ब्राह्मण[१२७] मे अग्नि को अहिर्बुध्न्य कहा गया है।

ऋग्वेद पञ्चम मण्डल मे अहिर्बुध्न्य[१२८] देवता से द्वेष न रखने एवम् शत्रुओ को नष्ट करने की कामना की गयी है।

सम्भवत. सूर्याकृति वाले अथवा अग्नि से सम्बद्ध किसी देवता का नाम अहिर्बुध्न्य है जिसका ऋग्वेद मे नामोल्लेख मात्र है।

१.११.१० अश्विनौ

ऋग्वेद पञ्चम-मण्डल मे अश्विनौ का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योकि अश्विनौ को अत्रियो का सहायक माना गया है।

---

[१२४] वै० मा० पृ० स० १६०

[१२५] वै० मा० पृ० स० १३७।

[१२६] " एष ह व अहिर्बुध्न्यो यदग्निगार्हपत्य·।" ऐ० ब्रा० ३/३६

[१२७] " अग्निर्वा अहिर्बुध्न्य: " कौ० ब्रा० /१६/७।

[१२८] " मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादरुपाक भूदुपमातिवनिं·।। " ऋ. ५.४१.१६.।

अश्विनौ[129] शत्रुरोदक, यज्ञ मे आनन्दित होने वाले, अश्वयुक्त धन वाले एवम् रत्नधारक है। अश्विनौ[130] शत्रुपीडक, सुवर्ण रथवाले, नदियो के प्रवाहक है। अश्विनौ[131] बहुतो को धारण करने वाले, बहुत कर्मों को धारण करने वाले एव वरणीय है।

अत्रियो के साथ अश्विनौ[132] के मधुर सम्बन्ध रहे है। आदरयुक्त मन्त्र से जब अत्रि ने अश्विनौ को जाना तब अश्विनौ के स्तोत्र से दीप्त निष्पाप अग्नि को प्राप्त किया।

अश्विनौ के साथ सूर्या का सम्बन्ध है। अश्विनौ[133] के सर्वदा तीव्रगामी रथ पर जब सूर्या आकर बैठती है तब शत्रुओ को परितप्त करने वाले, तेजस्वी, अरुणवर्ण वाले अश्व अश्विनौ को घेर लेते है।

अश्विनौ को युवा एव सोमप्रेमी कहा गया है। मधुर सोम के मिश्रयिता अश्विनौ[134] जब व्यापक अन्तरिक्ष का अतिक्रमण करते है तब पके हुये अन्न उनका पोषण करते है।

अश्विनौ का जिसने आह्वान किया उसकी उन्होने अवश्य सहायता की। अश्विनौ ने च्यवन को पुनर्युवा बनाया। अश्विनौ ने जीर्ण हेय रूप को जब च्यवन[135] से कवच की भाँति अलगकर पुनर्युवा किया तब उसने सुरूपा स्त्री की भाँति कमनीय रूप प्राप्त किया। ब्राह्मण ग्रन्थो[136] मे अश्विनौ को देवताओ का वैद्य कहा गया है। वृक्ष मे बँधे सप्तवध्रि के आह्वान पर अश्विनौ[137] ने उन्हे मुक्त किया।

अश्विनौ एक साथ उत्पन्न हुये या नही यह स्पष्ट नही है किन्तु एक मन्त्र मे उनके लिये 'नाना जातौ'[138] शब्द आया है जो उनके पृथक् उत्पन्न होने का सूचक है।

---

[129] " आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युव।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुत हव॥ " ऋ ५. ७५.३.।

[130] " अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अह सना।
दस्ना हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिधुवाहसा माध्वी मम श्रुत हव॥ " ऋ ५. ७५. २.।

[131] ऋ ५.७३. २.।

[132] " युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा। धर्म यद्वामरेपस नासत्यास्ना भुरण्यति॥ " ऋ ५.७३. ६.।

[133] " आ यद्वा सूर्या रथ तिष्ठद्रघुष्यद सदा। परि वामरुषा वयो घृणा वरंत आतप ·॥ " ऋ ५ ऋ७३. ५.।

[134] " मध्व ऊ षु मधुयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी।
यत्समुद्राति पर्षथ पक्वा· पृक्षो भरत वा॥ " ऋ ५.७३. ८.।

[135] " प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्क न मुचथ। युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्व। " ऋ ५.७४. ५.।

[136] " अश्विनौ वै देवाना भिषजौ॥" ए०ब्रा० १/१८/कौ० ब्रा० १८।१॥

[137] ऋ ५. ७८.५,६ ।

[138] ऋ ५.७३.४ ।

अश्विनौ शान्त प्रकृति के देवता है। वे आवश्यकतानुसार शत्रुओ को दण्डित भी करते है। वस्तुत वे कार्य-कुशल एव सहायक देवता है।

१.११.११ सवितृ

सवितृ प्रकाश के एव प्रेरणा प्रदान करने वाले देवता है जैसा कि इनके नाम की व्युत्पत्ति (√ स प्रेरणे' 'तृच्) से ही स्पष्ट हैं।

सवितृ क्रान्तदर्शियो मे सर्वाधिक क्रान्तदर्शी है। ऋत्विजो से प्रार्थना की गयी है कि वे ' सवितृ[१३९] को उद्दीप्त करे एव मधुर धृत से अभिसिञ्चित करें जिससे देव सवितृ उन्हे प्रवर्द्धक, हितकर एवम् आह्ल्लादक धन प्रदान करे।

सवितृ देवताओ के मार्गदर्शक है। 'सवितृ[१४०] के महिमायुक्त मार्ग का अन्य देवता अनुगमन करते है। तेजस्वी सवितृ अपनी महिमा से पृथिवीलोक को कम्पित करते है।

सवितृ सर्वव्यापी है। 'सवितृ[१४१] दीप्तिवान तीनो लोको मे गमन करते है। सूर्य की किरण से मिलते है।

सवितृ कामना करने वाले को मनोवाञ्छित फल प्रदान करने वाले है। सम्भवतः इसीलिये ऋग्वेद पञ्चाम मण्डल मे सवितृ की विशेषताये वर्णित करने की अपेक्षा उनसे रत्न, सौभाग्य धनादि की कामना की गयी है। ऐसे ही कुछ मन्त्र[१४२] हैं।

सवितृ की अन्य विशेषताये है- ' वह सबके[१४३] देव, सज्जनो के पालक एव सत्यरक्षक है।' सवितृ का प्रेरक रूप भी एक मन्त्र मे वर्णित है। 'सवितृ[१४४] समस्त प्राणियो को यश द्वारा स्तुति सुनाते है और प्रेरित करते है।

---

[१३९] " उदीरय कवितम कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चद्राणि देव· सविता सुवाति॥ " ऋ ५.४२.३.।

[१४०] " यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देव देवस्य महिमानमोजसा।
य पार्थिवानि विममे स एतशो रजासि देव सविता महित्वना॥ " ऋ ५.८१.३.।

[१४१] " उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभि· समुच्यसि।
उत रात्रीमुभयत· परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभि·॥ " ऋ ५.८१.४.।

[१४२] " तत्सवितुर्वणीमहे वय देवस्य भोजन। श्रेष्ठ सर्वधातम तुर भगस्य धीमहि।" ऋ.५.८२.१।
" स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भग।त भाग चित्रमीमहे "॥ ऋ ५.८२. ३.।
" विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्र तन्न आ सुव "॥

[१४३] " य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन। प्र च सुवाति सविता॥ " ऋ.५.८२ ६।

[१४४] आ विश्वदेव सत्पति सूक्तिरद्या वृणीमहे। सत्यसव सवितार॥" ऋ ५.८२. ७.।

सवितृ सम्भवत· सूर्य के क्रियाशील रूप के द्योतक है। मैकडानल[१४५] ने भी लिखा है "सवितृ मूलत· भारत मे है। व्युत्पन्न एक उपाधि है जो कि, विश्व की अन्य सभी गतियो मे प्रमुख और महत्वपूर्ण गति का प्रतिनिधित्व करने वाले और जीवन तथा गतियो के महान प्रेरक के रूप मे सूर्य के लिए प्रयुक्त हुयी है, किन्तु सूर्य से भिन्न होने के रूप मे यह एक अपेक्षाकृत अधिक अमूर्त देव है।"

१.११.१२ उषस्

उषस् अन्धकार को दूर करने वाली प्रकाश की देवी है। उनकी कमनीयता ने ऋग्वैदिक ऋषियो के मन्त्रो मे सहज मानवीय भावनाये एव कोमलता प्रदान की।

' उषस्[१४६] दीप्त रथवाली, विशाल, अरुणरूपा, दीपप्तिमती, सूर्य की पुरोवर्तिनी है। ' ऐतरेय ब्राह्मण[१४७] मे उषस् को अरुणदीप्ति वाली कहा गया है। अनेक मन्त्रो मे उषस् को लोगो को जागृत करने वाली कहा गया है। 'महती उषा[१४८] स्तुत होती हुयी, पुत्री पृथिवी को जागृत करती हुयी, द्युलोक से आती है।" एक अन्य मन्त्र मे उषा[१४९] को लोगो को जागृत कराने वाली कहा गया है। उषा द्वेषी अन्धकार[१५०] को दूर करती है। उषा[१५१] लोगो के सुगमन के लिये मार्ग प्रशस्त करती हुयी प्रकाशित होती है। उषा को 'विभावरि'[१५२] भी कहा गया है।

उषस् को सूर्यपुत्री[१५३] कहा गया है। अनेक मन्त्रो मे उषा के विशेषण के रूप मे प्रयुक्त 'दिव· का अर्थ सूर्य हो या द्युलोक ' इसमे विवाद है।

उषस्[१५४] ने शुचिद्रथ के पुत्र सुनीथ के लिये अन्धकार निवारण किया था।

---

[१४५] वै० मा० पृ० स० ६३।

[१४६] " द्युतद्यामान बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सु विभातीम्।
देवीमुषस स्वरावहती प्रति विप्रासो मतिभिर्जरते॥ " ऋ ५.८०. १.।

[१४७] "गोभिररुणैषा आजिमधावत्।" ऐ० ब्रा० ४/६॥

[१४८] " प्रयुजती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयती।"
आविवासती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना॥ " ऋ ५ ऋ४७. १ ।

[१४९] " एषा जने दर्शता बोधयती सुगान्पथ· कृण्वती यात्यग्रे।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्ना॥ " ऋ ५.८.२.।

[१५०] ऋ ५.८०.५.।

[१५१] " एषा गोभिरुणेभिर्जानास्रेधती रयिमप्रायु चक्रे।
पथो रदती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति॥ " ऋ ५.८.३.।

[१५२] ऋ ५ ७६.१० ।

[१५३] ऋ ५ ७६.३.।

उषस् को समर्पित मन्त्र भावात्मक भी है और वर्णनात्मक भी। उषस् शान्त स्वभाव की देवी है। किसी भी मन्त्र मे उषस् को क्रोधित अथवा उत्तेजित होती हुयी नही कहा गया है।

मैक्समूलर[१५५] ने उषस् के मन्त्रो को सहज भावाभिव्यक्ति का सुन्दर नमूना कहा है।

१.११.१३ वरुण

ऋग्वैदिक सस्कृति धर्मप्रधान रही है जिसमे नैतिक मूल्यो, आस्थाओ का अक्षुण्ण स्थान रहा है। वरुण मुख्यत नियामक अर्थात् सत्य के सस्थापक देव है। ऋग्वेद मे प्रारम्भ के मन्त्रो यह अवधारणा स्पष्ट नही है किन्तु परवर्ती मन्त्रो एव ग्रन्थो मे वरुण को जल कास्वामी, सत्यरक्षक एव नियमनिर्धारक देवता माना गया है।

वरुण वृष्टि मे सहायता प्रदान करते है। इस प्रकार मेघ अथवा जल पर उनका स्वामित्व प्रदर्शित होता है। ' वरुण[१५६] द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष के हित के लिये मेघ को निम्नाभिमुखी करते है। तथा वरुण उस मेघ से भूमि को आर्द्र करते है'। वरुण[१५७] जब मेघ की कामना करते है तब मेघ पृथिवी को आर्द्र करता है।

ईरानी अहुरमज्दा से वरुण का व्यक्तित्व मिलता जुलता है। नैतिक नियम स्थापित करना वरुण का प्रमुख कार्य है। एक मन्त्र[१५८] मे कहा गया है कि हम किसी के प्रति अपराध करे तो वरुण उस अपराध का विनाश करे। तैत्तिरीय ब्राह्मण[१५९] मे वरुण को धर्म का स्वामी कहा गया है।

---

[१५४] " या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छों दुहितर्दिव ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते॥ " ऋ ५.७९. २.।

[१५५] " This hymn addressed to the Dawn is a fair specimen of the original simple poetry of the veda -------- It is a simple poem expressing, without any effort, without any display of far-fetched thought or brilliant imagery, the feeling of a man who has watched the approach of the dawn with mingled delight and awe, and who has moved to give utterance to what he felt, in measured language "
' A History of Ancient Sanskrit Literature ' पृ० स० ५०६।

[१५६] " नीचीनबार वरुणः कवध प्र ससर्ज रोदसी अतरिक्ष।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यव न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम॥ " ऋ ५.८५. ३.।

[१५७] " उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्या यदा दुग्ध वरुणो वष्टयादित।
समभ्रेर्ण वसत पर्वतासस्तविषीयत· श्रथयत वीरा ॥ " ऋ ५ ८५. ४ ।

[१५८] ऋ ५.८५.७.।

[१५९] " वरुण । धर्म्मणा पते "। तै० ब्रा०। ३।११।४।१॥

वरुण को समर्पित मन्त्रो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन आर्यो का चारित्रिक स्तर कितना उँचा था। मैक्समूलर[१६०] ने भी यही लिखा है कि जो प्राचीन काल मे नैतिकता नही थी, इसमे विश्वास करते है उनको समझाने के लिये वरुण का एक मन्त्र पर्याप्त है।

१.११.१४ इन्द्राग्नी

युगल देवताओ मे इन्द्राग्नी का परस्पर अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अनेक अवसरो पर इन दोनो देवताओ ने एक दूसरे की सहायता की है।

इन्द्राग्नी[१६१] सङ्ग्राम मे अनभिभवनीय, युद्ध मे स्तुत्य, पञ्चश्रेणी के मनुष्यो की रक्षा करते है।

इन्द्राग्नी[१६२] गमनशील धन के स्वामी, विद्वान्, सर्वाधिक वन्दनीय है। ब्राह्मण ग्रन्थो[१६३] मे इन्द्राग्नी को सर्वाधिक बलवान एवम् ओजस्वी कहा गया है।

इन्द्राग्नी एक दूसरे के सहयोगी रहे है। इन्द्राग्नी[१६४] का बल पराभूत करने वाला है। गायो को प्राप्त करने, वृत्र का वध करने दोनो रथ से गमन करते है।

१.११.१५ मित्रावरुणौ

युगल देवताओ मे मित्रावरुणौ का महत्वपूर्ण स्थान है। ईरानी मिथ्र और अहुर को मित्रावरुणौ के साथ समीकृत किया जा सकता है। मित्रावरुणौ अत्यन्त उदार छवि के देवता है।

' मित्रावरुणौ[१६५] सुशोभित, उग्र, बलवान, द्यावापृथिवी के स्वामी एव सर्वद्रष्टा है। वे मेघ के साथ गर्जना करते हुये रहते है। ' शतपथ ब्राह्मण[१६६] मे मित्रावरुणौ से वृष्टि लाने की प्रार्थना की गयी है।

---

[१६०] " The one hymn to the varuna would be sufficient to show the mistake of those who deny the presence of moral truths in the ancient religions of the world and more particularly, in the so called nature worship of the Aryans On the contrary, whatever we find of moral sentiments in those ancient hymns is generally as true today as it was thousands of years ago "
'A Histroy of Ancient Sanskrit Literature ' पृ० स० ४६२

[१६१] " या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या। या पञ्च चर्षणीरभीन्द्राग्नी ता हवामहे।। " ऋ ५.८६ २ ।

[१६२] " ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे। पती तुरस्य राधसो विद्वासा गिर्वणस्तमा।। " ऋ ५ ८६ ४.।

[१६३] " इन्द्राग्नी वै देवानामोजिष्ठौ बलिष्ठौ "। तै० ब्रा० ३।८।७।१।।

" इन्द्राग्नी वै देवानामोजिस्वितमौ "। श० ब्रा० १३।१।२।६।।

[१६४] " [१६४] " तयोरिदमवच्छवस्तिग्मा दिद्युन्मघोनो। प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गवा वृत्रघ्न एषते। " ऋ ५ ८६ ३ ।

मित्रावरुणौ[१६७] उषा के आगमन एव सूर्य के उदित होने पर स्वर्णमयी कीलो से युक्त रथ पर आरोहण करते है और इससे दिति और अदिति को देखते है। मित्रावरुणौ[१६८] के रथ का चक्र क्रम से परिभ्रमण करता है।

मित्रावरुणौ[१६९] को सत्यरक्षक कहा गया है जो वरुण की प्रमुख विशेषता है। मित्रावरुणौ प्रशस्त तेजस्वी, ईश्वर, दूर से सुनने वाले, सत्पती एव यज्ञवर्धक है।

मित्रवरुणौ[१७०] ने अपने तेज से पृथिवी और द्युलोक को धारण किया। ओषधि को बढाया। गाय को पुष्ट किया। मित्रावरुणौ दुष्टो के साथ बुरा व्यवहार नही करते अपितु उन्हे सुधरने का अवसर देते है। हिसक परिचारक के लिये भी मित्रावरुणौ[१७१] की शोभन बुद्धि है। मित्रावरुणौ[१७२] सत्यरूप, जलवर्षी, लोगो मे यज्ञ कराने वाले, शोभनगामी, शोभनमार्गी, पापी स्तोता को भी प्रभूत धन प्रदान करने वाले है।

अदित को मित्रावरुणौ की माता कहा गया है। इसीलिये मित्रवरुणौ के लिये 'आदित्य'[१७३] शब्द आया है। 'अदितिपुत्र मित्रावरुणौ[१७४] दीप्तिवान अन्तरिक्ष और दिव्य पृथिवी को धारण करते है। उनके स्थिर नियम को अमर देवता नष्ट नही करते।' ताण्ड्य ब्राह्मण[१७५] मे द्यावापृथिवी को मित्रावरुणौ का प्रिय धाम कहा गया है।

मित्रावरुणौ का व्यक्तित्व अत्यन्त सन्तुलित है। वे पापी को भी धन प्रदान करते है। उनके नियम स्थिर है।

---

[१६५] " सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रवरुणा विचर्षणी।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रव द्या वर्षयथो असुरस्य मायया॥ " ऋ ५.६३. ३.।

[१६६] " मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। " श० ब्रा० १३।५।४।२८

[१६७] " हिरण्यरूपमुपसो व्युष्टावयं स्थूणमुदिता सूर्यस्य।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतं श्चवक्षाथे अदितिं दितिं च॥ " ऋ ५.६२. ८.।

[१६८] ऋ ५ ६२.३ ।

[१६९] " ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा।
ता सत्पती ऋतावृधं ऋतावाना जनेजने॥ " ऋ ५.६५.२.।

[१७०] " अधारयत पृथिवीमुत द्या मित्रराजाना वरुणा महोभि·।
वर्धयतमोषधी· पिन्वत गा अवं वृष्टि सृजत जीरदानू॥ " ऋ ५.६२.३.।

[१७१] " मित्रो अहोश्चिदादुरु क्षयाय गातु वनते।
मित्रस्य हि प्रतूर्वत. सुमतिरस्ति विधत ॥ " ऋ ५.६५.४.।

[१७२] " ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने।
सुनीथास सुदानवोऽहोश्चिदुरुचक्रय·॥ " ऋ ५.६७. ४.।

[१७३] ऋ ५ ६६.४.।

[१७४] " या धर्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य।
न वा देवा अमृता आ मिनति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि॥ " ऋ ५.६९ ४.।

[१७५] " द्यावापृथिवी वै मित्रावरुणयो: प्रिय धाम "। ता० ब्रा० १४।२।४॥

१.११.१६ अन्य देवी देवता

ऋग्वेद पञ्चम मण्डल मे कुछ देवी देवताओ का सक्षिप्त वर्णन है। किसी किसी का तो नामोल्लेख मात्र है। ये देवी देवता है -

सूर्य- सूर्य[१७६] को सेवक, तेजस्वी, मेधावियो द्वारा स्तुत, सर्वरक्षक कहा गया है। " कामना- सेचक, देवो का आहल्लादक, दीप्तिवान, गमनशील, सूर्य[१७७] पालक अन्तरिक्ष के पूर्व स्थान मे प्रविष्ट होता है। विविधवर्णी, सूर्वव्यापक सूर्य द्युलोक के मध्य मे स्थित होकर घूमता है और अन्तरिक्ष के दोनो पूर्वापर भागो की रक्षा करता है।' सूर्य[१७८] के सम्पर्क मे वधु किरणे द्युलोक मे प्रसृत होती है। ' स्वर्भानु[१७९] द्वारा सूर्य को आच्छन्न करने एवम् अत्रियो द्वारा सूर्य को प्रकाशित करने का भी वर्णन है।

विद्युत - विद्युत[१८०] अपिरिमित अन्तरिक्ष को आच्छादित करती है।

पूषावायू - पूषावायू[१८१] को धान प्रदाता, बलवान एव वेगवान कहा गया है।

द्यावापृथिवी- द्यावापृथिवी[१८२] को अहिंसित, पालक निर्मात्री कहा गया है। पृथक्-पृथक् इन्हे पिता एव माता भी माना गया है।

त्वष्टा- त्वष्टा[१८३] नेता, पोषक, सभी के स्वामी है।

तरन्तमहिषी शशीयसी - श्यावाश्वात्रेय[१८४] ने तरन्तमहिषाी शशीयसी के लिये कहा है कि वह वीर तरन्ता के लिये भुजाये फैलाती है। ' देवताओ[१८५] की आराधना न करने वाले, दान न देने वाले पुरुष की अपेक्षा शशीयसी श्रेष्ठ है। शशीयसी[१८६] व्यथित को जानती, तृषित को जानती है, धनकामी को जानती है।

---

[१७६] " प्र सुक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः॥ " ऋ ५.४१.४.।

[१७७] " उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यतौ॥ " ऋ ५.४७.३.।

[१७८] ५. ४७.६.।

[१७९] ऋ ५.४०५, ६, ७, ८।

[१८०] ऋ. ५.४८. १.।

[१८१] " प्र तव्यसो नमउक्ति तुरस्याह पूष्ण उत वायोरदिक्षि।
या राधसा चोदितारो मतीना या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन्॥ " ऋ ५.४३ ६.।

[१८२] " आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टा॥ " ऋ ५.४३. २.।

[१८३] ऋ ५ ४१.८.।

निऋति - निऋति[१८७] शरीर से बुढ़ापा दूर करते है।

विष्णु- विष्णु[१८८] का नामोल्लेख मात्र है।

सोम- सोम देवताओ का सर्वाधिक प्रिय पेय था। सोम[१८९] इन्द्र वायु को प्रिय है। सोम के मद मे इन्द्र ने अनेक वीरतापूर्ण कार्य किये। सोम[१९०] बलकारक है। सोम[१९१] को मधुर एव मादक कहा गया है।

देवियाँ - उर्वशी इडा[१९२] से रक्षा की प्रार्थना की गयी है। राका[१९३] का नामोल्लेख मात्र है।

१.१२ ऋषि

ऋग्वेद पञ्चम मण्डल मे सर्वाधिक सूक्त अत्रि एव उनके वंशजो के है। ऋग्वेद पञ्चम मण्डल के कुछ मन्त्रो मे उस मन्त्रद्रष्टा ऋषि का नामोल्लेख उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है। जिन मन्त्रद्रष्टा ऋषियो का नाम मन्त्र मे नही आया उनका यहा विवरण नही दिया गया है।

अत्रि - ऋग्वेद पञ्चम मण्डल मे सर्वाधिक सम्मान एव महत्त्व अत्रि एव उनके वशजो का है। अत्रि एक ऐतिहासिक ऋषि थे। कालान्तर मे उनका महत्त्व बढाने के लिए उन पर अतिमानवीयता का आरोपण किया गया। बृहद्देवता के अनुसार अत्रि के जन्म की कथा इस प्रकार है - ' ऐसा कहा गया है कि प्रजा-काम की इच्छा से प्रजापति ने साध्यो और विश्वदेवो के साथ तीन वर्ष का यज्ञ-सत्र किया। दीक्षा के अवसर पर वाच् सशरीर वहा आयी। उसे वहाँ देखकर एक साथ ही प्रजापति एव वरुण का शुक्र स्खलित हो गया। उनकी इच्छा से वायु ने शुक्र को अग्नि मे छोड दिया। तब ज्वालाओ से भृगु उत्पन्न हुए, अङ्गिरो से ऋषि आङ्गिरस। दो पुत्रों[१९४] को देखकर और स्वय भी दृष्ट होकर वाच् ने

---

[१८४] " सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयं। श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपर्बबृहत्॥ " ऋ ५.६१.५.।

[१८५] ऋ ५.६१ ६.।

[१८६] " वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनं। देवत्रा कृणुते मनः॥ " ऋ ५.६१.७.॥

[१८७] ऋ ५ ४१ १७.।

[१८८] ऋ. ५.८७.१, २,।

[१८९] ऋ ५ ५१.४.।

[१९०] ऋ ५.८६ ६.।

[१९१] ऋ ५.३३ ७.।

[१९२] ऋ.५ ४१.१९.।

[१९३] ऋ ५.४२.१२.।

[१९४] " प्रजापति सुतौ दृष्द्वा दृष्टा वाग्यभाषत।

प्रजापति से कहा ' इन दोनो के अतिरिक्त मुझे ऋषि के रूप मे एक तृतीय पुत्र भी उत्पन्न हो '। प्रजापति ने भारती से कहा ऐसा ही होगा'। तब सूर्य और अग्नि के समान द्युति वाले अत्रिऋषि उत्पन्न हुये।

अत्रि का वश इस प्रकार है - अत्रि, अङ्ग औरव, अत्रि साख्य, अपाला आत्रेयी, अर्चनानसात्रेय, अवस्यु-आत्रेय, इष-आत्रेय, उरूचक्रि-आत्रेय, एवयामरुत्-आत्रेय, कुमार-आत्रेय, गय आत्रेय, गविष्ठर-आत्रेय, गात-आत्रेय, गोपायन-आत्रेय, द्युम्नविचर्षणि-आत्रेय, पुरुरवस् ऐल पुरु आत्रेय, पौर-आत्रेय, प्रतिक्षत-आत्रेय, बभ्रु-आत्रेय, बहुवृक्त-आत्रेय, मृक्त वाहद्वित-आत्रेय, यजत-आत्रेय, रातहव्य-आत्रेय, अन्धीगु-श्यावश्वि, श्रुतविदात्रेय, सत्यश्रवस्-आत्रेय, सदापृण-आत्रेय, सप्त-वध्रि-आत्रेय, सस-आत्रेय, सुतभर-आत्रेय, सुवेदस् शैरीषि, सोम, बुध-सौम्य, स्वस्त्यात्रेय - श्यावाश्वात्रेय।

पञ्चम मण्डल मे अत्रियो के ७६ सूक्त, ६५५ मन्त्र है। सर्वाधिक सूक्त भौमोऽत्रि (१३ सूक्त) के है। सूक्त[१६५] १५, २८, २६, ३३, ३४, ३५, ३६, ४४ क्रमश धरूण, आङ्गिरस, गौपायन या लौपायन, गौरवीति शाक्त, सवरण प्रजापात्य, सवरण प्रजापात्य, प्रभुवसु- आङ्गिरस, प्रभुवस - आङ्गिरस, अवत्सार कश्यप ऋषियो के है जो अत्रि-वशीय नही है।

इस मण्डल मे दो सूक्त (ऋ. ५.८५, ८६)अत्रि के है जो उत्कृष्ट मन्त्रो के कारण पाठव्य है। कुछ मन्त्रो मे अत्रय[१६६] शब्द आया है। स्वर्भानु द्वारा आच्छन्न सूर्य को अत्रि[१६७] ने चार ऋचाओ द्वारा प्राप्त किया। अत्रि[१६८] द्वारा स्वर्भानु की माया दूर करने और सूर्य को प्राप्त करने का वर्णन दो मन्त्रो मे है। भौमोऽत्रि ने वरुण के साथ मित्र, सत्यधनाश्व, पालक अत्रि[१६९] से असुरो से अपनी रक्षा की प्रार्थना की है। वरुण के साथ अत्रि का आह्वान उनके

आभ्यामृषिस्तृतीयोऽपि भवेदत्रैव म सुतः।। (बृह० १००)
प्रजापतिस्तथेत्युक्तः प्रत्यभाषात भरतीम्।
ऋषिरत्रिस्ततो जज्ञे सूर्यानल समद्युतिः।।" (बृह० १०१)

[१६५] कुल मन्त्र ७२।

[१६६] ऋ ५.४०.६.।

[१६७] ऋ ५.४०.६.।

[१६८] "ग्राव्णो ब्रह्मा युजुजान सपर्यन् कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन्।
अत्रि सूर्यस्य दिवि वक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत्।। " ऋ ५.४०. ८.।
"य वै सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः। अत्रयस्तमन्वविदन्नह्यान्ये अशक्वन्।। " ऋ ५.४०.९ ।

[१६९] " मा मामिम तव सतंसत्र इरस्या दुग्धो भियसा नि गारीत्।
त्व मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावत वरुणश्च राजा।। " ऋ ५.४०.७.।

महत्व को सूचित करता है। अश्विनौ से अत्रि[200] का स्तोत्र सुनने का निवेदन भौमोऽत्रि ने किया। एक मन्त्र मे कहा गया है कि 'अत्रि' [201] की भाँति स्तुतियो द्वारा हम मित्रावरुणौ का आह्वान करते है।

अन्य ऋषि जिनका नाम मन्त्र मे आया है वे है -

द्वित[202] , वव्रि[203], सस[204], विश्वसामन्[205], द्युम्न [206], गौरवीति[207], अवस्यु[208], मायि[209], श्यावाश्व[210], अर्चनानस्[211], रातहव्य[212], पौर[213], सप्तवध्रि[214], सत्यश्रवसि[215], एवयामरुत्[216], क्षत्र, मनस्, एवावद, यजत, सधि, अवत्सार[217], 'सदापृण, बाहुवृक्त, श्रुतविद्, तर्य[218]। इस मण्डल मे एक सूक्त (५.२८.) विश्वारात्रेयी[219] का है।

१.१३ छन्द

√ श्चद् धातु का अर्थ प्रसन्न करना प्रसन्न होना है। इससे हरिश्चन्द्र, पुरुश्चन्द्र, सुश्चन्द्र पद बने है। श् का लोप होने से अधिकतर पद चद् हो गया जिससे चन्दन, चन्द्र पद बने है। इसीलिये कथन की एक विशिष्ट शैली

---

[200] " कूष्ठौदेवावश्विनाद्या दिवो मनावसू। तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति॥ " ऋ ५.७४.१.।

[201] ऋ ५.७२. १.।

[202] ऋ ५ १८ ३।

[203] ऋ ५ १९.१ ।

[204] ऋ ५ २१. ४.।

[205] ऋ ५ २२ १ ।

[206] ऋ ५ २३ १.।

[207] ऋ ५.२९.११ ।

[208] ऋ ५. ३१.१०; ५.७५.८।

[209] ऋ ५.४४.११.।

[210] ऋ ५ ५२ १ , ८१.५।

[211] ऋ ५ ६४ ७ ।

[212] ऋ ५ ६६ ३ ।

[213] ऋ ५. ७४ ४ ।

[214] ऋ ५ ७५ . ५, ६।

[215] ऋ ५ ७९ १.।

[216] ऋ ५ ८७ १, २, ३, ४, ५, ७, ८, ९।

[217] ऋ ५ ४४.१०.।

[218] ऋ ५ ४४. १२ ।

[219] ऋ ५. २८ १.।

छन्दस् है। छन्दस् का अर्थ कहने का आह्लादकारी ढग है। ये छन्द अनेकविध है। पञ्चम-मण्डल मे त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, जगती, गायत्री, पङ्क्ति, उष्णिक्, अतिजगती, शतबृहती, बृहती, ककुभ, द्विपदा-विराट्, एकपदा-विराट्, विराटपूर्वा, शक्वरी, पुरुष्णिक् छन्द के क्रमशः २७७, १६१, १०५, ७८, ४८, १५, ११, ६, ७, ५, ४, २, १, १, १ मन्त्र है।

१.१४ प्रसिद्ध आर्य

ऋग्वेद पञ्चम मण्डल मे अनेक प्रसिद्ध राजाओ, आर्यो का उल्लेख है। उनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

उशना- कुत्स और इन्द्र के साथ उशना[२२०] शुष्ण के विरूद्ध युद्ध मे थे।

ऊर्जव्य- ऊर्जव्य[२२१] सम्भवतः राजा था जिसके पोषण की भौमोऽत्रि ने देवताओ से कामना की। "लुड्विग[२२२] ने ऊर्जव्य को एक यजमान माना है जबकि रॉथ ने इस एक विशेष 'शक्ति सम्पन्न' माना है।"

ऋजीश्वन - विदथपुत्र ऋजीश्वन्[२२३] ने पिप्रु के वध मे इन्द्र की सहायता की थी।

एतश- इन्द्र ने एतश[२२४] की ओर आते हुये सूर्य के अश्वो को मन्दगति कर दिया था। "रॉथ[२२५] के अनुसार 'एतश का उल्लेख एक शरणार्थी के रूप मे है जिसे इन्द्र ने सूर्य के विरुद्ध सहायता प्रदान की थी।" इन सभी स्थलो पर एतश सूर्य के अश्व प्रतीत होते है।

कुत्स- एक योद्धा के रूप मे कुत्स[२२६] का वर्णन है जिसके शत्रु शुष्ण का वध इन्द्र ने किया और सूर्य का एक चक्र कुत्स[२२७] को दिया। इन्द्र के साथ कुत्स[२२८] का नाम आता है।

तरन्त- विददश्व के पुत्र तरन्त शशीयसी के पति थे। तरन्त ने भी पुरुमीळ्ह की भाँति श्यावाश्व को धन दिया। वीर तरन्त[२२९] दान मे प्राप्त धन का समान रूप से वितरण करते है।

---

[२२०] ऋ ५ २९.९.।

[२२१] ऋ.५ ४१ १०.।

[२२२] वैदिक कोश-सूर्यकान्त पृ० स० ६६।

[२२३] ऋ.५.२९. ११.।

[२२४] " अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयं।
यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीं पुरः सतीरुपरा एतशे कः॥ " ऋ ५.२९.५.।

[२२५] 'वैदिक कोश' सूर्यकान्त पृ०स० ७४।

[२२६] ऋ ५ २९ ९.।

[२२७] ऋ ५.२९ १०.।

[२२८] ऋ. ५.२९.११.।

दशग्व - नवग्वो के साथ दशग्वो[२३०] का वर्णन है। इन्होने भी गोसमूह को मुक्त करवाया था।

त्रिसदस्यु- गुरुक्षित गोत्रोत्पन्न त्रिपुरुकुत्स के पुत्र त्रिसदस्यु[२३१] ने सम्वरण प्रजापत्य को दस श्वेत अश्व दिये।

त्र्यरुण- त्रिवृष्णु के पुत्र त्र्यरुण[२३२] के दान का उल्लेख मिलता है। शौनकीय बृहद्देवता[२३३] मे त्र्यरुण की कथा विस्तार से दी गयी है कि किस प्रकार इक्ष्वाकुवशीय त्र्यरुण के राज्य मे अग्नि का प्रज्ज्वलित होना समाप्त हुआ। पुरोहित वृश के प्रयास से अग्निदेव पुन प्रकट होकर प्रज्ज्वलित हुये।

नवग्व - नवग्वो[२३४] ने इन्द्र की अर्चना करते हुये असुरो द्वारा गृहीत गोसमूह को मुक्त किया।

पुरुमीळ्ह- विददश्व के पुत्र पुरुमीळ्ह श्यावाश्वात्रेय के आश्रयदाता थे। शशीयसी के लोहित अश्व श्यावाश्व को पुरुमीळ्ह[२३५] के समक्ष ले जाते है। श्यावाश्व को पुरुमीळ्ह[२३६] ने सौ गाये दी।

मनु- मनु एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति है। उन्हे आदिपुरुष कहा गया है। अत्रियो ने मनु[२३७] की भॉति अग्नि को प्रदीप्त किया।

शत्रि - अग्निवेशपुत्र राजर्षि शत्रि[२३८] ने सवरण प्रजापत्य को अपरिमित धन दिया।

श्रुतरथ - श्रुतरथ[२३९] सम्भवत· राजा थे जिन्होने प्रभुवसु को दो अश्व और तीन सौ गाये दी।

सप्तवध्रि - सप्तवध्रि सम्भवतः ऋषि थे। एक मन्त्र मे कहा गया है कि वृक्ष मे बॅधे सप्तवध्रि[२४०] ने वनस्पति (वृक्ष) से विवृत होने की तथा अश्विनौ से अपने को मुक्त कराने की प्रार्थना की। अश्विनौ ने सप्तवध्रि[२४१] को मुक्त करने के लिये वृक्ष की पेटिका को सम्भक्त एव विभक्त किया। शौनकीय बृहद्देवता[२४२] मे सप्तवध्रि की कथा विस्तार से मिलती है।

---

[२२९] " उत घा नेमो अस्तुत· पुमॉ इति ब्रुवे पणिः। स वैरदेय इत्सम·॥ " ऋ.५.६१. ८.।

[२३०] ऋ ५.२९.१२.।

[२३१] ऋ ५.३३.८ ।

[२३२] ऋ.५ २७.१.।

[२३३] 'शौनकीय बृहद्देवता' पृ० स० १५१-१५३

[२३४] ऋ ५. २९. १२.।

[२३५] " वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे॥ " ऋ. ५.६१.९.।

[२३६] " यो मे धेनूना शत वैददश्विर्यथा ददत्। तरत इव महना॥ " ऋ ५.६१.१०.।

[२३७] ऋ.५.२१ १.।

[२३८] " सहस्रसामाग्निवेशि गृणीषे शत्रिमग्न उपमा केतुमर्य ।
तस्मा आप· सयतः पीपयत तस्मिन्क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु॥ " ऋ ५.३४.९.।

[२३९] ऋ ५ ३६. ६.।

[२४०] " वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव।

१.१५ अनार्य

ऋग्वेद मे अनार्य शत्रुओ के लिये राक्षस असुर आदि शब्द प्रयुक्त हुआ है। उनकी शक्ति को अदेवी माया[२४३] कहा गया है। इन अनार्य शत्रुओ मे अधिकाश को इन्द्र ने पराभूत किया। कुछ प्रमुख अनार्य है -

नमुचि- बभ्रुरात्रेय ने इन्द्र से दास नमुचि[२४४] के सिर को चूर्ण करने की प्रार्थना की। दास नमुचि ने स्त्रियो को युद्धसाधन बनाया। इन्द्र ने दास नमुचि के मस्तक को चूर्ण किया।

पिप्रु - ऋजीश्वन का पिप्रु शत्रु था ऋजीश्वन के आह्वान पर इन्द्र ने पिप्रु[२४५] का वध किया।

वृत्र- दानु पुत्र[२४६] वृत्र[२४७] इन्द्र का शत्रु कहा गया है जिसको मारकर इन्द्र ने जलधाराओ को मुक्त किया। निरुक्त मे मेघ[२४८] को वृत्र कहा गया है।

शम्बर - इन्द्र ने शम्बर[२४९] के निन्यानवे नगरो को वज्र से एकसाथ नष्ट किया।

शुष्ण - शुष्ण[२५०] असुर कुत्स का शत्रु था। इन्द्र ने शुष्ण[२५१] का वध करके कुत्स से मैत्री की।

स्वर्भानु - स्वर्भानु असुर ने अपनी माया से सूर्य को आच्छन्न कर लिया था तब अपने स्थान को न जानने वाले की भाँति सम्पूर्ण लोक[२५२] दिख रहा था। अत्रि[२५३] ने चार ऋचाओ द्वारा सूर्य को प्रकाशित किया।

श्रुत मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुचत॥ " ऋ ५.७८.५.।

[२४१] " भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये।
मायाभिरश्विना युव वृक्ष स च वि चाचथः॥ " ऋ ५.७८.६.।

[२४२] " शौनकीय बृहद्देवता ' पृ० स० १६३ - ६४

[२४३] ऋ ५. ३.६.।

[२४४] ऋ ५ ३०.७, ८, ६।

[२४५] ऋ ५. २६ ११ ।

[२४६] ऋ ५ २६ ४ ।

[२४७] ऋ ५ २६ २, ३, ५, ३२ ६.७, ८।

[२४८] निरुक्त २।१६ पृ०स० २२०।

[२४९] ऋ ५ २६ ६ ।

[२५०] ऋ ५ २६. ७.।

[२५१] ऋ ५ ३२. ४.।

[२५२] " यत्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुर । अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयु ॥ " ऋ ५.४०. ५.।

[२५३] " स्वर्भानोरध यदिंद्र माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहन्।
गूळ्ह सूर्य तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविदत्रिः॥ " ऋ ५.४०. ६.।

१.१६ समुद्र एवं नदियाँ -

ऋग्वेद पञ्चम मण्डल मे अनेक महत्त्वपूर्ण नदियो का नाम आया है। उनकी भौगोलिक स्थिति कहाँ कैसी थी इसका स्पष्ट विवेचन नही हो पाया है। समुद्र एव कुछ प्रमुख नदियाँ है।-

समुद्र - ऋग्वेद के अधिकाशत मन्त्रो मे समुद्र के लिये सिन्धु[२५४] शब्द प्रयुक्त हुआ है। कही कही सिन्धु का अर्थ नदी भी है। एक मन्त्र[२५५] मे कहा गया है कि भलीभाँति सेचन करने वाली नदियाँ जिस एक समुद्र को नही भर पाती। कही कही समुद्र के लिये समुद्र[२५६] शब्द भी आया है।

नदियाँ - नदियो [२५७] को द्रुतगामिनी, मधुर जलयुक्त, अहिंसित कहा गया है। स्तोताओ से यह अपेक्षित है कि वे कल्याणकारिणी सात नदियो का आह्वान करे। सायण[२५८] ने ' सप्तसिन्धव· ' का अर्थ १०.७५. ५ मे वर्णित नौ मे से सात प्रमुख निदयाँ किया है। ऋग्वेद दशम मण्डल के (ऋ १०.७५) सूक्त मे नदियो की ही स्तुति हुयी है।

ऋग्वेद मे वर्णित प्रत्येक नदी को वर्तमान नदी के साथ समीकृत नही किया जा सकता। इतने समय के अन्तराल मे भौगोलिक स्थिति मे बहुत परिवर्तन आया है अतः उनके नाम और स्थान मे अन्तर हो सकता है। ऋग्वेद पञ्चम मण्डल की कुछ प्रमुख नदियाँ है -

अनितभा - अनितभा[२५९] 'सिन्धु' की कोई सहायक नदी थी।

कुभा - कुभा[२६०] सिन्धु की महत्त्वपूर्ण सहायक नदी थी।

क्रमु - क्रमु[२६१] का वर्तमान नाम ' कुर्रम'[२६२] है जो सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदी थी।

---

[२५४] ऋ ५.४.६, ३७.२; ४६.४; ५१.७; ५३.६, ६, ६१.४; ६६.२ ;।

[२५५] "एक यदुद्रा न पृणात्येनीरासिचतीरवनयः समुद्र॥" ऋ.५.८५.६.।

[२५६] ऋ ५.४४ ६ , ४७.३, ७८ ८, ८५.६ ,।

[२५७] "आ धेनव· पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धतीरुप नो यतु मध्वा।
महो राये बृहती. सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति॥" ऋ ५. ४३. १।

[२५८] "सप्त सर्पणस्वभावाः सप्तसख्याका इम मे गगे। ऋग्वे १०. ७४.४.१ इति मन्त्रोक्ता गगाद्या वा। तत्र हि प्राधन्येन सप्तैवोक्ता·।" ऋ पृ०सं० ५८७।

[२५९] ऋ ५ ५३ ६.।

[२६०] ऋ ५. ५३ ६ ।

[२६१] ऋ ५. ५३. ६.।

[२६२] ' वैदिक साहित्य और सस्कृति'- 'आचार्य बलदेव उपाध्याय' पृ० स० ३६१।

गोमती - रथवीति[२६३] गोमती के तट पर निवास करते थे। ' सिन्धु[२६४] की सहायक नदी के रूप मे उल्लिखित इस गोमती की पहिचान वर्तमान 'गोमाल' से की जाती है। यह अफगानिस्तान की नदी है जो सिन्धु मे डेरा स्माइल खॉ तथा पहाडपुर के बीच गिरती है।

यमुना- ऋग्वेद एव ब्राह्मण ग्रन्थो मे यमुना[२६५] नदी वर्णित है।

सरयू - कुभा क्रमु आदि नदियो के साथ सरयू[२६६] का नाम आता है। "कुभा[२६७], क्रमु सिन्धु आदि पश्चिमी नदियो के साथ सरयू के उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह भी पश्चिमी नदी है। अत इसे अयोध्या के पास बहने वाली सरयू मानना नितान्त भ्रान्त है। अवेस्ता मे यही 'हरोयू' के नाम से विख्यात है। आजकल इसे हरिरुद कहते है।

सरस्वती- ऋग्वैदिक नदियो मे सरस्वती[२६८] विख्यात नदी है।

१.१७ पशु एवं पक्षी -

ऋग्वैदिक सस्कृति एव तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था मे पशुओ का महत्त्वपूर्ण स्थान था। यज्ञ की प्रधानता के कारण पशुओ का यज्ञ मे उपयोग होता था। वस्तु विनियम का साधन भी पशु थे। ऋग्वेद मे पशु, पक्षी, नदियो, वनस्पतियो सभी को सम्मानजनक स्थान प्राप्त है।"

एक मन्त्र मे यूपार्ह पशु[२६९] की विशेषता वर्णित है। गाय एवम् अश्व का सर्वाधिक वर्णन मिलता है।

अश्व गमन का मुख्य साधन थे। मरुतो के अश्व[२७०] को वेगवान, कान्तिवान, ध्वनियुक्त एव दर्शनीय कहा गया है। अश्विनौ के अश्वों[२७१] को 'मन के समान वेगवान, विचित्र रूपवाले, एव शीघ्रगामी' कहा गया है।

---

[२६३] ऋ ५ ६१ १९.।

[२६४] ' वैदिक साहित्य और सस्कृति- ' आचार्य बलदेव उपाध्याय पृ०स० ३९०।

[२६५] ऋ ५. २१ १७.।

[२६६] ऋ ५. ५३. ३९.।

[२६७] वैदिक साहित्य और सस्कृति ' आचार्य बलदेव उपाध्याय' पृ० स० ३९१।

[२६८] ऋ ५. ४२. १२।

[२६९] " यत्र वह्निंरभिहिंतो दुद्रवद्दोण्यं· पशु :। नृमणा वीरपस्त्योऽणी धीरेंव सनिंता।। " ऋ ५. ५.४.।

[२७०] " उत स्य वाज्यंरुषस्तुंविष्वणिंरिह स्मं धायि दर्शत। ऋ ५. ५६. ७.।

[२७१] ऋ ५. ७५. ६.।

गाय[२७२] का उल्लेख ऋग्वेद पञ्चम मण्डल मे अनेक बार हुआ है। इसके अतिरिक्त गाय देने वाले के लिये 'गोदा'[२७३] शब्द आया है। गाय एवम् अश्व के अतिरिक्त अन्य पशुओ जन्तुओ का वर्णन है यथा- सर्प[२७४], सिह[२७५], मृग[२७६], गौरमृग[२७७], आदि। पक्षियो मे मुख्यतः श्येन[२७८] एव हस[२७९] का नाम प्राप्त होता है।

१.१८ ऋग्वेद पञ्चम मण्डल में वर्णित ऋग्वैदिक संस्कृति

ऋग्वैदिक सस्कृति मूलतः ग्रामप्रधान सस्कृति थी। राष्ट्र अथवा सघ के लिये **'मर्यङ्क'**[२८०] शब्द ऋग्वेद मे आया है जिससे तत्कालीन सभ्यता की विशालता का बोध होता है। इसके अतिरिक्त अपने राज्य के लिये **'स्वराज्य'**[२८१] शब्द प्रयुक्त हुआ है। नगर के लिये **'पुर'**[२८२] **' भोग'**[२८३] आदि शब्द प्राप्त होता है। नगर के लिये पुर· न शुभ्रा[२८४] विशेषण प्रयुक्त हुआ है जिसमे ज्ञात होता है कि ततकलीन नगर स्वच्छ रहते थे। इन्द्र ने शम्बर के ९९ नगरो को एक साथ नष्ट किया था। मरुतो को ग्रामजितः[२८५] कहा गया है। इस प्रकार इस मण्डल मे ग्राम और नगर का अधिक वर्णन हुआ है।

१.१८.१ समाज -

ऋग्वैदिक समाज पितृप्रधान था। ऋग्वेद के अधिकाश मन्त्रो मे पुत्रो[२८६] की कामना की गयी है पुत्रियो की

---

[२७२] ऋ ५. ३ ३, ६.७ , २७.२ ; ४१.१८ ; ४५ ६.।

[२७३] ऋ ५. ८२ ८.।

[२७४] ऋ ५. ९. ४.।

[२७५] ऋ ५. १५. ३ ।

[२७६] ऋ ५ २९.४, ३८ २.।

[२७७] ऋ ५. ७८. २.।

[२७८] ऋ ५ ४५ ९, ७४ ९ ।

[२७९] ऋ ५ ७८ १, २.।

[२८०] ऋ ५. ४ २ ५.

[२८१] ऋ ५ ६६ ६ ।

[२८२] ऋ ५ ४१. १२ ।

[२८३] ऋ ५ २९. ६.।

[२८४] ऋ ५. ४१ १२ ।

[२८५] ऋ ५ ५४.८.।

[२८६] ऋ ५.२०.४. २५.५, ६।

नही जो नारी की अपेक्षा पुरुष की अच्छी स्थिति का सूचक है। तथापि समाज मे नारी का गरिमामयी स्थान था। विदुषी[२८७] शब्द से स्त्री-शिक्षा की ओर सङ्केत मिलता है। अनेक ऋषिपुत्रियाँ भी मन्त्रद्रष्टा हुयी। ऋग्वेद पञ्चम-मण्डल मे विश्ववारात्रेयी[२८८] का एक सूक्त है। तरन्तमहिषी शशीयसी[२८९] को देवाराधना न करने वाले, दान न देने वाले पुरुष की अपेक्षा श्रेष्ठ कहा गया है। माता के रूप मे नारी की उच्च स्थान था। उसका कर्तव्य लोगो का पोषण,[२९०] दर्शन एव धारण करना है। एक अन्य मन्त्र मे कहा गया है कि माता[२९१] पुत्र के लिये वस्त्र बुनती है। समाज मे नारी का सम्मानजनक एवम् उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान था।

ऋग्वेद पञ्चम्- मण्डल मे ही नही अपितु सम्पूर्ण ऋग्वेद मे वर्णव्यवस्था का स्पष्ट अथवा विस्तृत उल्लेख नही मिलता है। एक मन्त्र मे 'सुजातासः'[२९२] शब्द आया है जिसका अर्थ सुजन्मा अथवा सुकुलोत्पन्न हो सकता है किन्तु यह शब्द जाति-व्यवस्था की ओर स्पष्ट इङ्गित नही करता। एक अन्य मन्त्र मे चतस्रः[२९३] शब्द आया है। सायण ने अपनी व्याख्या मे इसका अर्थ 'चतुर्षु वर्णेषु'[२९४] किया है। केवल सायण की व्याख्या को आधार मानकर चार वर्ण यह अर्थ समीचीन प्रतीत नही होता। चतस्रः शब्द चार वर्ण के लिये ही आया है यह स्पष्ट नही है। एक अन्य मन्त्र मे क्षत्रियस्य[२९५] शब्द आया है। सायण ने अपनी व्याख्या मे लिखा है- " क्षत्र[२९६] बल। तद्वत इन्द्रस्य। यद्वा। क्षत्रियजातीयस्य यजमानस्यामति " इस व्याख्या से भी अस्पष्ट ही है कि क्षत्रिय शब्द किस अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। वर्ण-व्यवस्थ का आधार सम्भवत कर्म था और वह इतनी सङ्कुचित भी नही थी जितनी वह आज है। इसलिये उस काल मे वर्ण व्यवस्था थी यह मानना उचित नही है।

---

[२८७] ऋ ५ ४१ ७ ।

[२८८] ऋ ५ २८ १।

[२८९] उत त्वा स्त्री शशीयसी पुसो भवति वस्यसी। अदेवत्रादराधसः।।६।। ऋ ५.६१. ६.।

[२९०] " मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनजन धायसे चक्षसे च "। ऋ ५.१५.४.।

[२९१] " वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयति।" ऋ ५.४७.६.।

[२९२] ऋ ५ ६ २.।

[२९३] ऋ ५ ३५ २ ।

[२९४] ऋ पृत्र सत्र ५६८।

[२९५] ऋ ५ ६६. १ ।

[२९६] ऋ पृ० स० ६५३।

१.१८.२ भोजन एवं पेय -

ऋग्वैदिक आर्यो का भोजन पुष्टकर, बलवर्धक एव सादा था। अनाज मे **'यव'** (जौ) [२९७] एव धान्य'[२९८] (धान) का उल्लेख मिलता है किन्तु गेहूँ का कही वर्णन नही है। यज्ञ मे **पुरोडाश**[२९९] का उपयोग होता है। इन्द्र[३००] के लिये तीन सौ वृषभो को शीघ्र अग्नि मे पकाया गया इससे ज्ञात होता है कि उस समय मासाहार का भी प्रचलन था।

ऋग्वैदिक आर्यो का सर्वाधिक प्रिय पेय सोम था। सोमरस बलकारक होता था। एक मन्त्र मे सोम[३०१] की मधुरता, मादकता तथा सोमपान के पश्चात् बल प्राप्ति का वर्णन है।

इन्द्र को सोम अतिप्रिय था। इन्द्र और वायु के लिये दधियुक्त[३०२] सोम के अभिषव का वर्णन है। अग्नि[३०३] का अन्य देवताओ के साथ सोमपान के लिये आह्वान है। सोम के अतिरिक्त आर्यो को दुग्ध भी प्रिय था। एक मन्त्र मे दुग्ध[३०४] को प्रिय एव कमनीय कहा गया है। घृत[३०५] का वर्णन अनेक मन्त्रो मे आया है। अग्नि को घृत अतिप्रिय था। अग्नि के विशेषणस्वरूप 'घृतपृष्ठ'[३०६] ' घृतप्रतीक'[३०७] 'घृतप्रसत्त·'[३०८] 'घृतयोनी'[३०९] ' घृतस्नु·'[३१०] 'घृताची'[३११] आदि शब्द आये है एक मन्त्र मे त्र्यशिर [३१२] शब्द आया है जिसका अर्थ सायण मे दही सत्तू एव दुग्धमिश्रित खाद्य पदार्थ किया है।

---

[२९७] ऋ ५.८५.३.।

[२९८] ऋ ५ ५३.१३.।

[२९९] ऋ ५ २६.११.।

[३००] ऋ ५ २६ ७.।

[३०१] ऋ ५ ३३ ७।

[३०२] " सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिर·। निम्न न यंति सिधवोऽभि प्रयः॥७॥" ऋ ५.५१.७।

[३०३] " विप्रेभिर्विप्र संत्य प्रातर्यावभिरा गहि। देवेभि· सोमपीतये॥३॥ ऋ ५.५१.३.।

[३०४] " प्रिय दुग्ध न काम्यमजामिजाम्योः सचा। धर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभं ॥४॥ ऋ ५.१९.४.।

[३०५] ऋ ५ १.६, ५.१; ८.७ ; ११.३ ; १२.१ ; १४.६ ; ४२.३ ; ८३.४ ; ८६.६ ;।

[३०६] ऋ ५.३७.१.।

[३०७] ऋ ५. ११.१।

[३०८] ऋ ५ १५.१.।

[३०९] ऋ ५.८ ६.।

[३१०] ऋ ५ २६ २।

[३११] ऋ ५ २८ १, ४३.११.।

[३१२] ऋ ५ २७ ५.।

१.१८.३ पात्र -

यज्ञ मे प्रयुक्त होने वाले पात्रो का ऋग्वेद मे वर्णन मिलता है। ये पात्र घरेलू उपयोग मे भी आते थे। कुछ प्रमुख पात्र है- चमस्[३१३] (चम्मच), अस्मयः[३१४] (स्वर्णमयपात्र), जुहू[३१५], दृति[३१६] आदि।

१.१८.४ परिधान -

ऋग्वेद पञ्चम मण्डल मे वस्त्र का स्पष्ट उल्लेख नही है। अन्य मण्डलो के अध्ययन से ज्ञात होत है कि लोग ऊपर (वास) एव नीचे (अधिवास) पहनते थे। दो मन्त्रो मे वस्त्र[३१७] शब्द आया है। लोग ऊनी वस्त्र से भी परिचित थे। एक मन्त्र मे ' ऊर्णम्रदा.[३१८] शब्द ऊनी कम्बल के लिये आया है।

१.१८.५ आभूषण-

मन्त्रो के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि ऋग्वेदकालीन लोगो को आभूषण अत्यन्त प्रिय था। पञ्चम मण्डल मे आभूषण के लिये आनूक'[३१९] तथा 'अञ्जि'[३२०] शब्द आया है। मरुतो के लिये 'अञ्जिमन्त '[३२१] शब्द प्रयुक्त होता है। एक मन्त्र मे 'निष्कग्रीव·'[३२२] शब्द आया है। इसके अतिरिक्त निर्मित आभूषणो मे स्रक्ष[३२३] खादि[३२४] अर्थात् माला और कगन का भी उल्लेख है।

१.१८.६ नैतिक स्तर -

समाज का नैतिक स्तर ऊँचा था क्योंकि सामाजिक व्यवस्था धर्म पर आधारित थी। अतिथि को पर्याप्त

---

[३१३] ऋ ५ ३४.२.।

[३१४] ऋ ५ ३०.१५.।

[३१५] ऋ ५.१ ३.।

[३१६] ऋ ५ ८३ ७ ।

[३१७] ऋ ५ २६ १५, ४७ ६।

[३१८] ऋ ५.४.५.।

[३१९] ऋ ५ ३३.६.।

[३२०] ऋ ५ ५३.४.।

[३२१] ऋ ५ ५७.५ ।

[३२२] ऋ ५ १६.३.।

[३२३] ऋ ५ ५३.४.।

[३२४] ऋ ५ ५४.११ ।

सम्मान मिलता था। एक मन्त्र मे अग्नि को अतिथि[३२५] के समान पूज्य कहा गया है। कही-कही चोर का भी वर्णन है। सम्भवत उनके लिये तायु[३२६] शब्द आया है। सामान्यत: सभी को अपने कर्त्तव्यो एव दायित्वो का ज्ञान था फिर भी जो कभी कभी अपने कर्त्तव्य से च्युत् हो जाता था वह सुसङ्गति मे रहने पर पुन सम्यक् आचरण करने लगता था। एक मन्त्र मे कहा गया है कि सर्वत्र व्याप्त अग्नि[३२७] के बन्धुगण पहले अभद्र हो गये थे अब अग्नि की परिचर्या करते हुये कल्याणकारी हो गये है।

१ १८.७ आर्थिक जीवन-

ऋग्वैदिक काल मे अर्थव्यवस्थाका मूलाधार कृषि एव पशुपालन था। भूमि के लिये रसा[३२८] शब्द प्रयुक्त हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि भूमि उपजाऊ थी। सिचाई का कोई व्यवस्थित साधन था इसका स्पष्ट वर्णन नही मिलता है, वृष्टि देवताओ की कृपा पर निर्भर थी। इन्द्र, पर्जन्य, मरुत् आदि देवताओ से वृष्टि की कामना की गयी है। वृक्षो को काटने के लिये कुल्हाणी का प्रयोग होता है उसके लिये स्वधिति[३२९] शब्द आया है।

पशुपालन आय का प्रमुख साधन था। पशुओ मे गाय और अश्व का प्रमुख स्थान था। गाय[३३०] की कल्पना सम्पत्ति के रूप मे की गयी है।

इसके अतिरिक्त अन्य व्यवसाय करने वालो का भी नाम मिलता है। चर्मकार के लिये चर्म-शमिता[३३१] शब्द आया है। लोहार के लिये ध्माता[३३२] तथा बनिये के लिये 'वणिक्'[३३३] शब्द आया है। सायण[३३४] ने अपनी व्याख्या मे वणिक् के लिये 'वणिगिवाल्पेन कर्मणा बहुफलाकाक्षी' लिखा है। शिल्पी के लिये 'रथान्'[३३५] शब्द आया है।

---

[३२५] " जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इम नो यज्ञमुप याहि विद्वान्।" ऋ ५.४ ५.।

[३२६] ऋ ५ १५.४ , ५२.१२.।

[३२७] " सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवास सतो अशिवा अभूवन् " ऋ ५.१२ ५ ।

[३२८] ऋ ५ ४१ ६ , ५३ १५.।

[३२९] ऋ ५ ७. ८

[३३०] ऋ ५.: ११

[३३१] ऋ ५ ८५ १।

[३३२] ऋ ५ ६ ५।

[३३३] ऋ ६ ४५ ६।

[३३४] ऋ पृ० स० ५६८।

[३३५] ऋ ५ ७३ १०।

१.१८.८ आवागमन के साधन-

ऋग्वैदिक सभ्यता बहुत फैली हुयी थी अत आवागमन के साधनो की अत्यन्त आवश्यकता थी। आवागमन के लिये 'रथ'[३३६] एवम् उसकी नेमि[३३७] का अनेक बार वर्णन है। अश्विनौ[३३८] के रथ को हिरण्यरूप त्वचा वाला, मधुरवर्णी, जलवर्षी, अन्नवाहक, मन की भाँति वेगवाला एव वायु सदृश वेगवाला कहा गया है। नौका एव नाविक के लिये ' नाव'[३३९] एव नावा[३४०] शब्द का अनेक बार उल्लेख है। इससे यह ज्ञात होता है कि नाव भी आवागमन का साधान थी। इसके अतिरिक्त अश्व द्वारा भी आवागमन होता था।

१.१८.९ राजनैतिक स्थिति-

ऋग्वैदिक सस्कृति मे शक्ति का प्रमुख केन्द्र ग्राम थे। इसके अतिरिक्त राज्य एव नगर का वर्णन भी मिलता है जिसका ऋग्वैदिक सस्कृति के प्रारम्भिक भाग मे वर्णन किया गया है।

ऋग्वेद मे आर्यो एवम् अनार्यो के मध्य अनेक सघर्ष का वर्णन है अनार्यो को राक्षस एवम् उनकी शक्ति को अदेवी माया[३४१] कहा गया है। दास नमुचि[३४२] ने स्त्रियो की सेना बनायी थी सम्भवत· स्त्रियाँ भी युद्ध मे भाग लेती थी किन्तु कुशल नही थी। एक मन्त्र मे मनुष्यो की सेना[३४३] पर विजय प्राप्ति की कामना की गयी है।

१.१८.१० दण्ड-व्यवस्था -

ऋग्वेद के अनेक मन्त्रो मे पापी को दण्डित करने की देवताओ से प्रार्थना की गयी है। एक मन्त्र मे अग्नि[३४४] से प्रार्थना की गयी है कि वह पाप करने वाले को नष्ट करे एक मन्त्र[३४५] मे कहा गया है कि जो मृद्ध होते

---

[३३६] ऋ ५.३३.६ , ९ ,३३.५ , ३६.३ ; ५२ ६, ५३.५ , ५८.६ ; ७५.४ , ८३.६ , ८६ ४ ,।

[३३७] ऋ ५ १८.६ ।

[३३८] " हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नु पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वा।
मनोजवा अश्विना वातरहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा।।३।। ऋ ५.७७.३.।

[३३९] ऋ ५ ४५ १० , २५.९ , ५४ ४ ।

[३४०] ऋ ५ ४ ९ ।

[३४१] " प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवा शिशीते शृगे रक्षसे विनिक्षे।।९।। ऋ ५.२ ९.।

[३४२] ऋ ५ ३० ९ ।

[३४३] " त्वया वाजे वाजयतो जयेमाभिष्याम पृत्सुती मर्त्यानाम्।" ऋ ५.४.१।

[३४४] " यो न आगो अभ्येनो भरात्याधीदघमघशसे दधात।" ऋ ५.३.७.।

[३४५] ऋ ५ २० २ ।

हुये भी अग्नि को हवि न दे वे बलरहित हो। एक अन्य मन्त्र मे चोर-शत्रु[३४६] का वर्णन है। सायण[३४७] ने अपनी व्याख्या मे लिखा है " रिपु स्तेन यथा सतापयति राजा" इससे राजा द्वारा चोर को दण्डित करने का सङ्केत मिलता है।

१.१६ ऋग्वेद - पञ्चम - मण्डल के विशिष्ट मन्त्र एवं विशिष्टता-

सम्पूर्ण ऋग्वेद मे अधिकाशत· स्तुतिपरक मन्त्रो का सङ्कलन है। ऋग्वेद पञ्चम मण्डल मे भी ऐसे ही मन्त्रो का सङ्कलन है किन्तु कुछ मन्त्र स्तुतिपरक मन्त्रो से भिन्न स्वतन्त्र प्रकृति के है।। ऐसे ही कुछ विषयेतर मन्त्रो को विशिष्ट मन्त्रो के अन्तर्गत रखा गया है।

देवताओ से अधिकाशत· मन्त्रो मे धन की कामना की गयी है। इसके अतिरिक्त कही कही सुखी दाम्पत्य[३४८] की प्रार्थना की गयी है। एक मन्त्र[३४९] मे पत्नीहीनो को पत्नी से सयुक्त करने की कामना की गयी है।

देवताओ के आह्वान के अतिरिक्त कही कही यज्ञो का भी वर्णन है। एक मन्त्र मे अश्वमेध यज्ञ[३५०] का उल्लेख ह। वेदि का अत्यन्त महत्व था। उसे यज्ञ[३५१] का उत्तम स्थान कहा गया है। एक मन्त्र मे माध्यन्दिन सवन[३५२] का उल्लेख ह। एक मन्त्र मे ऋत्विज[३५३] की विशेषता वर्णित है। अश्विनौ[३५४] को प्रात.काल हवि देने को कहा गया है क्योकि सायकालीन हवि असेवनीय हो जाती है। एक मन्त्र मे चत्वार शब्द आया है सायण[३५५] ने अपनी व्याख्या मे इसका अर्थ ' चत्वार ऋत्विज ' किया है। एक मन्त्र मे 'यजुष्'[३५६] शब्द आया है। स्पष्ट नहीं है कि उस समय यजुर्वेद के मन्त्र सामने आये थे अथवा नही।

---

[३४६] ऋ ५.७६.६.।

[३४७] ऋ पृ० स० ६७०।

[३४८] "स जास्पत्य सुयमगा कृणुष्व शत्रूयताभमि तिष्ठा महांसि।।३।। ऋ ५.३८.३.।

[३४९] ऋ ५ ३१.२।

[३५०] ऋ ५ ५५ २ । ऋ.५.२७.५।

[३५१] ऋ ५ ८०.८.।

[३५२] ऋ ५ १८.८.।

[३५३] ऋ ५.७७. २.।

[३५४] ऋ ५.८७ ८.।

[३५५] ऋ पृ० स० ६०३।

[३५६] ऋ ५ ६२.५.।

किसी कार्य को करने एव फलप्राप्ति का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन एक मन्त्र मे है - पहले मन[३५७] मे विचार तत्पश्चात् कर्म और अन्त मे फलप्राप्ति।

देवताओ, पशुपक्षियो एवम् ऋषियो के अतिरिक्त गर्भस्थ जीव[३५८] का भी दो मन्त्रो मे वर्णन है।

अत्रि के मन्त्रो मे मानवीय भावना को अत्यन्त सहजता से प्रस्तुत किया गया है। उन्ही के एक मन्त्र मे वरुण[३५९] से प्रार्थना की गयी है कि हम यदि किसी के प्रति अपराध करे तो उस अपराध को नष्ट करो। इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र मे अत्रि ने अपनी बुराइयो को जानकर वरुण[३६०] से उन्हे दूर करने की कामना की है। मरुतो से सम्बन्धित अनेक मन्त्रो मे अत्यन्त स्वाभाविकता है। इन मन्त्रो मे प्रश्न है, शङ्कायें है जो ' नासदीय सूक्त' मे भी मिलती है. अश्विनो से सम्बन्धित एक मन्त्र[३६१] मे कुछ ऐसे ही स्वाभाविक प्रश्न किये गये है।

सासारिक भोगो[३६२] की तुच्छता के साथ दार्शनिकता का समन्वय एक मन्त्र मे मिलता है।

एक मन्त्र मे वर्णित आदित्य[३६३] का किरणो द्वारा पृथिवी का जल ग्रहण करना तत्कालीन ऋषियो की वैज्ञानिक सोच को द्योतित करता है।

---

[३५७] " ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुनऋषिस्वर चरति यासु नाम ते।
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वय वहते सो अरं करत्।।८।।" ऋ ५ ४४.८ ।

[३५८] " यथा वात पुष्करिणीं समिगयति सर्वत·।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्य ।।७।। " ऋ ५ ७७.७.।
"यथा वातो यथा वन यथा समुद्र एजति।
एवा त्व दशमास्य सहावेहि जरायुणा।।८।।" ऋ ५.७८.८.।

[३५९] " अर्यम्य वरुण मित्र्य वा सखाय वा सदमिद्भ्रातर वा।
वेश वा नित्य वरुणारण वायत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत्।।७।।" ऋ ५.८५.७.।

[३६०] " कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विघ्न।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियास·।।८।। ऋ ५.८५.८ ।

[३६१] " को वेद जानमेषा को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुता। यद्युयुज्रे किलास्य ।।१।।" ऋ ५ ५३.१।
"ऐतान्रथेषु तस्थुष क शुश्राव कथा ययु ।
कस्मै सस्रु· सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टय सह"।।२।। ऋ ५ ५३.२.।
क यथ क ह गच्छथ कमच्छा युजाथे रथं।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वय वामुश्मसीष्टये।।३।। ऋ ५.७४.३ ।

[३६२] " ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्त मरुतो नि यात।
यो व शर्मी शशमानस्य निदात्तुच्छयान्कामान्करते सिष्विदान ।।१०।। ऋ ५.८२.१०.।

[३६३] " मज्जभुराणस्तरुभि सुतेगृभ वयाकिन चित्तगर्भासु सुस्वरु ।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे।।५।। ऋ ५ ४४. ५ ।

कुछ दुरूह शब्दो को छोड़कर ऋग्वेद पञ्चम-मण्डल की भाषा सहज एव सरल है। लगभग सभी मन्त्रो मे प्रसाद एव माधुर्य गुण व्याप्त है। इन्द्र के मन्त्रो मे ओजोगुण की प्रधानता है। अलङ्कारो मे उपमा की बहुलता है।

ऋग्वेद-पञ्चम-मण्डल के सम्पूर्ण मन्त्रों का अन्वय एवम् अनुवाद

२.१ ऋग्वेद-पञ्चम-मण्डल के सम्पूर्ण मन्त्रों का अन्वय एवम् अनुवाद-

सूक्त (१)

देवता- अग्नि, **ऋषि**- बुधगविष्ठरात्रेयौ, **छन्द**- त्रिष्टुप्।

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्।

यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ॥१॥

अन्वय - (दुग्धपानहेतवे) धेनुमिव आयतीम् उषस प्रति (उपस्थिते) अग्नि जनाना समिधा अबोधि। वया प्रोज्जिहाना यहा वृक्षस्य इव (अग्ने) भानव· नाकम् अच्छ सिस्निते।

अनुवाद - (दुग्धपान के लिये) धेनु की भाँति आगमनकारिणी उषा (के उपस्थित होने पर) अग्नि लोगो की समिधा द्वारा जागृत किया जाता है। शाखा को ऊपर उठाते हुये विशाल वृक्ष की भाँति (अग्नि की) ज्वालाये अन्तरिक्ष की ओर प्रसृत होती है।

अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात्।

समिद्धस्य रुशदर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि॥२॥

अन्वय - होता अग्नि देवान् यजथाय अबोधि। सुमना (अग्निः) प्रातः ऊर्ध्वः (सन्) अस्थात्। समिद्धस्य (अस्य) रुशत् पाज अदर्शि, (अय) महान देवः तमस· निरमोचि।

अनुवाद - देवाहानकृत अग्नि देवताओ के यजन के लिये जागृत होता है। शोभन मनवाला (अग्नि) प्रातः ऊर्ध्वाभिमुख (होकर) उत्थित होता है। प्रदीप्त (इसकी) प्रकाशयुक्त ज्वालाये दिखायी पड़ती है। (यह) महान देवता अन्धकार से पूर्णत· मुक्त होता है

यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः।

आद्दक्षिणा युज्यते वाजयत्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः॥३॥

अन्वय - यत् ईम् अग्नि· गणस्य (जगत.) रशना (तम) अजीग· (तदा स·) शुचि (सन्) शुचिभि· गोभि (जगत) अक्ते। आत् दक्षिणा वाजयन्नी (आज्यधारा सह) युज्यते। ऊर्ध्वः (स) उत्ताना (ता) जुहुभि अधयत्।

अनुवाद - जब यह अग्नि सघात्मक (जगत्) के रज्जुरूप (अन्धकार) का निगरण करता है (तब वह) प्रदीप्त (होकर) दीप्त किरणो से (जगत् को) प्रकाशित करता है। अनन्तर प्रवृद्ध, अन्नाभिलाषी (घृतधारा) से युक्त होता है। उन्नत (वह) ऊपर विस्तृत (उनको) जुहू द्वारा पीता है।

अग्निमच्छा देवयता मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरति।

यदी सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम्॥४॥

अन्वय - देवयता (यजमानाना) मनांसि सूर्ये (सचरतः) (जनाना) चक्षुषि इव अग्निम् अच्छ सचरन्ति। यत् विरूपे (द्यावा पृथिव्यौ) उषसा (सह) ईम् अग्नि सुवाते। (तदा) श्वेत· वाजी (अग्निः) अह्नाम् अग्रे जायते।

अनुवाद - देवकामी (यजमानो का) मन सूर्य की ओर (सञ्चरण करने वाले) (मनुष्यो के) नेत्राो की भाँति अग्नि की ओर सञ्चरण करता है। जब नानारूपवाले (द्युलोक और पृथिवीलोक) उषा (के साथ) इस अग्नि को उत्पन्न करते है (तब) श्वेतवर्ण (और) अन्नवान (अग्नि) प्रातःकाल उत्पन्न होता है।

जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु।

दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान्॥५॥

अन्वय - हितेषु वनेषु हित· जेन्य. (अग्निः) अरुषः (सन्) अह्नाम् अग्रे (प्रातःकाले) जनिष्ट। होता यजीयान् अग्नि रत्ना सप्त (ज्वाला) दधान दमे दमे नि ससाद।

अनुवाद - सुस्थापित इन्धनो मे स्थित उत्पादक (अग्नि) प्रदीप्त (होता हुआ) दिन के अग्रभाग मे (प्रातःकाल) उत्पन्न हुआ। होता, यागयोग्य अग्नि रमणीय सात (ज्वालाओ) को धारण करता हुआ प्रत्येक घर मे अवस्थित होता है।

अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके।

युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः॥६॥

अन्वय - होता यजीयान् (च) अग्नि मातुः उपस्थे सुरभौ लोके नि असीदत्। युवा कवि· पुरुनिष्ठ· ऋतावा (सर्वेषा) धर्ता कृष्टीना मध्ये इद्ध· (अस्ति)।

अनुवाद - होमनिष्पादक (और) अधिक पूजनीय अग्नि पृथिवी की गोद मे (स्थिति) (आज्यादि की) सुगन्धि से व्याप्त वेदी पर बैठता है। तरुण मेधावी, सर्वत्र विद्यमान, यज्ञकर्ता, (सबको) धारण करने वाला (अग्नि) ऋत्विको के मध्य प्रज्ज्वलित होता हुआ (स्थित होता है)।

प्र णु त्य विप्रमध्वरेषु साधुमग्नि होतारमीळते नमोभिः।

आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजंति वाजिनं घृतेन॥७॥

अन्वय - य रोदसी ऋतेन आततान त्य विप्रम् अध्वरेषु साधु वाजिनम् होतारम् अग्नि नु नमोभि· ईडते घृतेन नित्य मृजन्ति

अनुवाद - जिसने द्युलोक और पृथिवीलोक को जल से परिपूरित किया है उस मेधावी यज्ञ मे फलप्रदाता, अन्नवान होता अग्नि की (यजमान) शीघ्र नमस्कार द्वारा स्तुति करते है (और) घृत से नित्य परिमार्जन करते है।

मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः।

सहस्रशृंगो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान्॥८॥

अन्वय मार्जाल्य, दमूनाः, कवि· प्रशस्तः न· अतिथिः (वत् पूज्यः) शिवः सहस्रशृङ्गः वृषभः तदोजा· (अग्निः) स्वे (स्थाने) मृज्यते। अग्ने ! (त्व) सहसा (त्व) अन्यान् विश्वान् प्रासि।

अनुवाद- समार्जनीय, दानशील, विद्वानो द्वारा प्रशसनीय, हमारे अतिथि (के समान पूज्य), कल्याणकारी, अपरिमित ज्वालाओ वाला, कामनासेचक, प्रसिद्धबलवाला (अग्नि) अपने स्थान मे पूजित होता है। हे अग्ने ! (अपने) बल से (तुम) (अपने) अतिरिक्त सबको पराजित करते हो।

प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ।

ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम्॥९॥

अन्वय - अग्ने ! यस्मै (यज्ञाय) (त्व) चारूतम· आविर्बभूव (तत्) प्र सद्य· अन्यान् अति एषि। (त्व) ईळेन्यः, वपुष्य·, विभावा, विशा प्रिय, मानुषीणाम् अतिथि (इव पूज्य· चासि)।

अनुवाद हे अग्ने ! जिस (यज्ञ) के लिये (तुम) अत्यन्त सुन्दर होते हुये प्रकट होते हो (उसके) निकट से शीघ्र दूसरो का अतिक्रमण कर गमन करते हो। (तुम) स्तवनीय, सुदर्शन, अत्यन्ततेजस्वी, लोकप्रिय और मनुष्यो मे अतिथि (के समान पूज्य हो)

तुभ्य भरति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अंतित ओत दूरात्।

आ भंदिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत्ते अग्ने महि शर्म भद्रम्॥१०॥

अन्वय - हे यविष्ठ अग्ने ! क्षितय अन्तित. उत दूरात् तुभ्य बलिम् आ भरन्ति। (त्व) भन्दिष्ठस्य (स्तोतु) स्तुतिम् आ चिकिद्धि। हे अग्ने! ते (दातव्य) शम बृहत् महि भद्र (चासि)।

अनुवाद - हे युवतम अग्ने ! मनुष्य समीप से और दूर से तुम्हे हवि प्रदान करते है। (तुम) अत्यधिक (स्तुति करने वाले की) स्तुति को जानते हो। हे अग्ने ! तुम्हारे द्वारा (प्रदत्त) सुख विशाल महान एव स्तुतियोग्य (है)।

आद्य रथं भनुमो भानुमतमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम्।

विद्वान्पथीनामुर्व १ तरिक्षमेह देवान्हविरद्याय वक्षि॥११॥

अन्वय भानुम अग्ने ! अद्य (यागदिने) भानुमन्त रथ यजतेभि· (देवैः सह) आ तिष्ठ। उरु अन्तरिक्ष पथीना विद्वान् (त्व) हविराद्याय देवान् इह आ वक्षि।

अनुवाद - हे कान्तिवान् अग्ने ! आज (यज्ञ के दिन) सर्वाङ्ग सुन्दर दीप्तिवान रथ पर यजनयोग्य (देवताओ के साथ) आरोहण करो। विशाल अन्तरिक्ष मे मार्ग को जानने वाले (तुम) हविभक्षण के लिये देवताओ को यहाँ (यज्ञ मे) लाओ।

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वदारु वृषभाय वृष्णे।

गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यचमश्रेत्॥१२॥

अन्वय कवये मेध्याय वृषभाय वृष्णे (अग्नये) (वयमात्रेया) वन्दारू वच· अवोचम। गविष्ठर उरु दिवि व्यञ्चम् (आदित्यम्) इव रूक्मम् अग्नौ नमसा स्तोत्रम् अश्रेत्।

अनुवाद - कान्तप्रज्ञ, मेधावी, कामना - सेचक, बलशाली (अग्नि के लिये) (हम अत्रिवशी) वन्दनयोग्य स्तोत्र का उच्चारण करते है। गविष्ठर ऋषि विशाल द्युलोक मे गमन करने वाले (सूर्य) की भाँति तेजस्वी अग्नि के लिये नमस्कार युक्त स्तोत्र का उच्चारण करते है।

सूक्त (२)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- कमारात्रेय, वृशोवाजान उभौ वा, **छन्द** - शक्वरी और त्रिष्टुप्

कुमार माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे।

अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यति निहितमरतौ॥१॥

अन्वय - युवति माता कुमारम् (अग्नि) गुहा समुब्ध बिभर्ति पित्रे न ददाति। (येन) जनास अस्य (अग्ने) मिनत् अनीक न (पश्यन्ति) (अपितु) पुरः निहितम् अरतो पश्यन्ति।

अनुवाद - युवति माता पुत्र (अग्नि) को गुहा (अथवा गर्भ) मे भली भाँति छुपाकर रखती है पिता को नही देती। (जिससे) लोग इस अग्नि के हिंसक रूप को नही (देखते) (अपितु) सामने स्थित अरणियो के मध्य मे देखते है।

कुमेत त्व युवते कुपार पेषी बिभर्षि महिषी जजान।

पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्य जातं यदसूत माता॥२॥

अन्वय युवते ! पेषी त्व क कुमार बिभर्षि ? महिषी अरणि एत (अग्नि) जजान। पूर्वी हि शरदः (अरण्या) गर्भः ववध, माता (अरणि) यत् (पुत्र) असूत नः जात (तं) अपश्यम्।

अनुवाद - हे तरुणि ! पीसने वाली तुम किस कुमार को धारण करती हो ? पूज्यनीय (अरणि ने) (अग्नि) को उत्पन्न किया: अनेक वर्षो तक (अरणि का) गर्भ बढ़ा। माता (अरणि) ने जब पुत्र उत्पन्न किया (तब) हमने उत्पन्न उस (अग्नि) को देखा।

हिरण्यदतं शुचिवर्णमारात्क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम्।

ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत्कि मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः॥३॥

अन्वय (अह) हिरण्यदन्त शुचिवर्णम् आयुधा मिमानम् (अग्निम्) आरात् क्षेत्रात् अपश्यम्। (अह) अस्मै (अग्नये) अमृत विपृक्वन्किम् (स्तोत्र) ददान : (अस्मि) अनिन्द्राः अनुक्थाः मा कि कृणवन्।

अनुवाद (मैने) हिरण्यसदृश ज्वालाओ वाले, प्रदीप्त वर्ण, आयुधो (के लिये) ज्वाला को तीव्र करने वाले (अग्नि को) समीपवर्ती क्षेत्र से देखा। (मै) इस (अग्नि) को अविनाशी, सर्वतोव्यापी (स्तोत्र) देने वाला (हूँ) इन्द्र विरोधी स्तुति न करने वाले मेरा क्या कर लेगे।

क्षेत्रादपश्य सनुतश्चरंत सुमद्यूथं न पुरु शोभमानम्।

न ता अगृभ्रन्नजनिष्ट हि षः पलिक्नीरिद्युवतयो भवंति॥४॥

अन्वय (अह) सनुतः क्षेत्रात् चरन्त (गवा) यूथ न सुमत् पुरु शोभमानम् (अग्निम्) अपश्यम्। (यदा) सः (अग्निः) अजनिष्ट (तदा तस्य) ता (ज्वाला) (जना.) न अगृभन् हि पलिक्नीरत् (तस्य अग्नेः ज्वालाः) (पुन.) युवतयः भवन्ति।

अनुवाद (मैने) निगूढ़ स्थान मे विचरण करते हुये (गायो के) समूह की भाँति स्वय अत्यधिक शोभायमान (अग्नि को) देखा (जब) वह (अग्नि) उत्पन्न हुआ (तो उसकी) उन (ज्वालाओ को) (लोग) ग्रहण नही कर सके क्योकि क्षीण होती हुयी (उस अग्नि की ज्वालाये) (पुनः) युवती होती है।

के मे मर्यकं वि यंवत गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास।

य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान्॥५॥

अन्वय - के मे मर्यक गोभि वि यवन्त। येषा गोपाः अरण (अग्नि·) चित् न आस। ये ईम् (राष्ट्र) जगृभुः ते असवृजन्तु (न अभिलाषा) चिकित्वान् न पशव. उप अजाति।

अनुवाद - कौन मेरे समूह (राष्ट्र) को गायो से वियुक्त करते है जिनका रक्षक गमनशील (अग्नि) भी नही है। जो इस (जनसघ) पर आक्रमण करते है वे विनष्ट हो। (हमारी अभिलाषा को) जानने वाला (अग्नि) हमारे पशुओ के निकट गमन करता है।

वसा राजान वसुति जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु।

ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजतु निदितारो निंद्यासो भवतु॥६॥

अन्वय - वसा राजान जनाना वसतिम् (अग्निम्) अरातयः मर्त्येषु नि दधु. अत्रे ब्रह्माणि तम् (अग्निम्) अवसृजन्तु निन्दितार निन्द्यास भवन्तु।

अनुवाद - प्राणियो के स्वामी, लोगो के आवासभूत (अग्नि) को शत्रुगण ने मर्त्यलोक मे छिपा कर रखा है अत्रि के स्तोत्र उस (अग्नि) को मुक्त करे। निन्दक निन्दित हो।

शुनश्चिच्छेपं निदित सहस्राद्यूपादमुचो अशमिष्ट हि षः।

एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्होतश्चिकित्व इह तू निषद्य॥७॥

अन्वय (हे अग्ने!) (त्व) निदित शुनः शेप सहस्रात् यूपात् अमुञ्च· हि स (त्वाम्) अशमिष्ट। होता ! चिकित्व। अग्ने ! इह तु निसद्य एवम् अस्मत् पाशान् वि मुमुग्धि।

अनुवाद (हे अग्ने !) (तुमने) अच्छी तरह से बँधे हुये शुन· शेप को हजारो यूपो से मुक्त किया क्योकि उसने (तुम्हारा) स्तवन किया था। हे होता ! विद्वान्! अग्ने ! (तुम) यहाँ (वेदी पर) बैठो (और) इस प्रकार हमे बन्धनो से मुक्त करो।

हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवाना व्रतपा उवाच।

इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम्॥८॥

अन्वय - मे देवाना व्रतपा· इन्द्रः प्र उवाच (यत्) (अग्ने!) हृणीयमान· (त्व) हि मत् अप ऐय (स) विद्वान् (अस्ति) त्वा अनु चचक्ष। अग्ने। तेन (इन्द्रेण) अनुशिष्ट अहम् आ अगाम्।

अनुवाद - मुझसे देवताओ के व्रतपालक इन्द्र ने कहा था कि (अग्ने !) क्रुद्ध होने पर (तुम) निश्चय ही मुझसे दूर चले जाते हो (वह) विद्वान् (है) और (उसने) तुम्हे देखा है। हे अग्ने ! उस (इन्द्र) के द्वारा अनुशासित मैं (तुम्हारे) निकट आगमन करता हूँ।

वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुत महित्वा।

प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृगे रक्षसे विनिक्षे॥६॥

अन्वय - अग्नि बृहता ज्योतिषा विभाति विश्वानि च (पदार्थानि) (स्व) महित्व। आविः कृणुते। (अग्निः) दुरेवा अदेवी माया. प्र सहते राक्षसे च विनिक्षे शृङ्गे शिशीते।

अनुवाद - अग्नि महान तेज के द्वारा विशिष्ट रूप से प्रदीप्त होता है और समस्त (पदार्थो) को (अपनी) महिमा से प्रकट करता है। (अग्नि) दुःखजनक आसुरी माया को पराभूत करता है। (और) राक्षसो के विनाश के लिये ज्वाला को तीव्र करता है।

उत स्वानासो दिवि षत्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हतवा उ।

मदे चिदस्य प्र रुजति भामा न वरंते परिबाधो अदेवीः॥१०॥

अन्वय - अग्नेः तिग्मायुधाः (इव) स्वानासः (ज्वाला) रक्षसे हन्तवै दिवि सन्तु। मदे चित् अस्य (अग्नेः) भामाः प्र रुजन्ति। परिबाध अदेवीः (सेनाः) (अग्नि) न वरन्ते।

अनुवाद - अग्नि की तीक्षण आयुध की भाँति शब्द करने वाली (ज्वालाये) राक्षसो को विनष्ट करने के लिये द्युलोक मे प्रादुभुत होती है। आनन्दित होने पर इस (अग्नि) की दीप्ति (राक्षसो को) पीड़ा देती है। सब ओर से बाधक आसुरी (सेना) (अग्नि को) बाधित नही करती।

एत ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम्।

यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम॥११॥

अन्वय - हे तुविजात (अग्नेः!) विप्रः धीरः स्वपाः (वय) ते एते स्तोम न अतक्षम् हे देवा ! अग्ने! त्वम् इत् (स्तोम) प्रतिहार्या (तर्हि) (वय) एना स्वर्वती अपः जयेम।

अनुवाद - हे बहुव्याप्त (अग्ने!) विद्वान् धीर, कर्मकुशल (हमने) तुम्हारे लिये इस स्तोत्र को उसी प्रकार बनाया है जैसे रक्ष (बनाया जाता है) हे दीप्यमान अग्ने! यदि तुम इस (स्तोत्र) को ग्रहण करो (तो) (हम) इससे सर्वत्र व्याप्त जल को प्राप्त करे

तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्रव१र्यः समजाति वेदः।

इतीममग्निममृता अवोचन्बर्हिष्मते मनवे शर्म यसद्धविषमते मनवे शर्म यसत्॥१२॥

अन्वय - तुविग्रीव वृषभ ववृधान (अग्नि) अर्य. वेदः अशत्रु सम् अजाति। इतीमम् अमृताः अग्निम् अवोचन् (यत्) (स) बर्हिष्मते मानवे शर्म यसत् हविष्यते च मानवे शर्म यसत्।

अनुवाद - बहुज्वाला विशिष्ट, बलशाली वर्द्धमान (अग्नि) शत्रुओ के धन को निष्कटक भाव से सङ्ग्रहीत करता है। इस बात को देवो ने अग्नि से कहा था (कि) (वह) यज्ञ करने वाले मनुष्य को सुख प्रदान करे और हव्य देने वाले मनुष्य को सुख प्रदान करे।

सूक्त (३)

देवता-अग्नि, ***ऋषि***- वसुश्रुतात्रेय, ***छन्द***- त्रिष्टुप् १ विराट्

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्व मित्रो भवसि यत्समिद्ध.।

त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय॥१॥

अन्वय - हे अग्ने । त्व यत् जायसे (सन्) वरुण· (भवसि) यत् समिद्ध (भवसि) (तद्) मित्र भवसि। त्वे इति विश्वे देवा (सन्ति) हे सहस· पुत्र। दाशुषे यजमानाय त्वम् इन्द्रः (असि)।

अनुवाद - हे अग्ने । तुम उत्पन्न होते (ही) वरुण (अन्धकार निवारक) (होते हो) जब प्रदीप्त (होते हो) (तब) मित्र (हितकारी) होते हो। तुम्ही मे समस्त देवता स्थित हैं। हे बलपुत्र। हविर्प्रदाता यजमान के लिये तुम इन्द्र (रक्षक) (हो)।

त्वमर्यमा भवसि यत्कनीना नाम स्वधावन्गुह्य बिभर्षि।

अजति मित्र सुधितं न गोभिर्यद्दंपती समनसा कृणोषि॥२॥

अन्वय - (हे अग्ने!) त्व कनीनाम् (अर्थाय) अर्यमा भवसि। हे स्वधावान्! (त्व) गुह्य नाम बिभर्षि। यत् (त्व) दम्पती समनसा कृणोषि (तदा) मित्र न (त्वा) गोभिः (ते) सुधितम् अञ्जन्ति।

अनुवाद - (हे अग्ने !) तुम कन्याओ के (सम्बन्ध मे) अर्यमा (सब के रक्षक) हो जाते हो। हे हव्यवान्! तुम गोपनीय नाम (वैश्वानर) धारण करते हो। जब (तुम) पतिपत्नी को एक मनवाला कर देते हो (तब) मित्र की भाँति (तुमको) गव्यादि (दुग्ध आदि) से (वे) भलीभाँति सिञ्चित करते है।

तव श्रिये मरुतो मर्जयत रुद्र यत्ते जनिम चारु चित्रम्।

पद यदिवष्णोरुपम निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम्॥३॥

अन्वय - (हे अग्ने !) तव श्रिये मरुतः (अपः) मर्जयन्त, हे रुद्र! ते यत् जनिम चारु चित्र यत् विष्णोः उपम पद निधायि तेन गोना गुह्य नाम पासि।

अनुवाद - (हे अग्ने!) तुम्हारे आश्रय के लिये मरुद्गण (अन्तरिक्ष का) मार्जन करते है। हे रुद्र ! तुम्हारे लिये जो वैद्युतलक्षण विचित्र और मनोहर जो विष्णु का अगम्य पद (अन्तरिक्ष) स्थापित हुआ है उसके द्वारा जल के छिपे हुये नाम की रक्षा करो।

तव श्रिया सुदृशो देव देवा. पुरु दधाना अमृतं सपत।

होतारमग्नि मनुषो नि षेदुर्दशस्यत उशिजः शसमायो ॥४॥

अन्वय - हे देव ! (अग्ने!) सुदृश तव श्रिया देवा पुरु (प्रीति) दधानाः अमृत सपन्त। मनुष शसम् आयो· दशस्यन्त होतारम् अग्नि निसेदु।

अनुवाद - हे देव (अग्ने !) सुदर्शन तुम्हारी समृद्धि से देवता अत्यधिक (प्रीति) धारण करते हुये अमृत का स्पर्श करते है। मनुष्य (ऋत्विग्गण) फलाभिलाषी यजमान के लिये हव्य वितरण करते हुये होता अग्नि की परिचर्या करते हैं॥

न त्वद्होता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः।

विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्तान्॥५॥

अन्वय - हे अग्ने ! त्वत् (अन्यः) होता न (अस्ति) पूर्व· (न अस्ति) हे स्वधाव ! पर (त्वत्) काव्यैः यजीयान् न अस्ति। हे देव! यस्या च विश (त्वम्) अतिथिः भवसि स· यज्ञेन (द्वेष्टन्) मर्तान् वनवत्।

अनुवाद - हे अग्ने ! तुमसे (भिन्न) कोई होता नही (है) कोई पुरातन (नही है) हे अन्नवान्! भविष्य मे (तुम्हारे सदृश कोई) स्तुतियो के द्वारा स्तवनीय नही होगा। हे देव! जिस प्रजा (ऋत्विक्) के (तुम) अतिथि होते हो वह यज्ञ के द्वारा (द्वेष करने वाले) मनुष्यो को नष्ट कर देता है।

वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः।

वय समर्ये विदथेष्वह्ना वय राया सहसस्पुत्र मर्तान्॥६॥

अन्वय - अग्ने! वसुयव· हविषा (त्वा) बुध्यमाना. वय त्वोता (शत्रून्) वनुयाम! वय समर्ये (जयेम) अह्ना विदधेषु (बल प्राप्नुयाम) हे सहस पुत्र! राया (सह) वय मर्तानि लाभेमहि।

अनुवाद - हे अग्ने ! धनाभिलाषी हवि के द्वारा (तुमको) प्रवृद्ध करने वाले हम तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर (शत्रुओ को) पाड़ा पहुँचाये। हम युद्ध मे (विजयी हो) प्रतिदिन यज्ञ मे (बल प्राप्त करे) हे बलपुत्र ! धन(के साथ) हम पुत्र-लाभ करे।

यो न आगो अभ्येनो भरात्यधीदघमघशंसे दधात।

जही चिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन॥७॥

अन्वय - य न अग· एन (च) अभिभराति अघशसे (तम्) (अग्निः) अघम् अधिदधात्। चिकित्वः । अग्ने! एताम् अभिशस्ति जहि य न द्वयेन मर्चयति।

अनुवाद - जो हमारे प्रति पाप और अपराध करता है पापी (उस) को (अग्नि) पाप प्रदान करे; हे विद्वान्! अग्ने ! उस पापी का नाश करो जो हमे दो प्रकार (पाप और अपराध) से बाधित करता है।

त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूत कृण्वाना अयजत हव्यैः।

सस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः॥८॥

अन्वय - (अग्ने !) पूर्वे त्वा देव दूत कृण्वाना· अस्याः व्युषि च हव्यैः अयजन्त। अग्ने । रयीणा सस्थे वसुभि मर्तैः देव इध्यमान (सन्) ईयसे।

अनुवाद - (हे अग्ने !) पुरातन (यजमान) तुम्हे देवताओ का दूत बनाकर रात्रि एव उषाकाल मे हव्यो के द्वारा (तुम्हारा) यजन करते है। हे अग्ने ! हव्य एकत्र होने पर निवासप्रद मनुष्यो द्वारा द्युतिमान एव समिद्ध (होकर) (तुम) गमन करते हो।

अव स्पृधि पितर योधि विद्वान्पुत्रो यस्ते सहसः सून ऊहे।

कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नोऽग्ने कदाँ ऋतचिद्यातयासे॥६॥

अन्वय - हे सहस· सून (अग्ने !) यः विद्वान् पुत्र· ते (हव्यम्) ऊहे (त) (त्व) पितरम् (इव) अवस्पृधि योधि च। चिकित्व·! कदा न अभिचक्षसे ? ऋत्चित् ! कदा (न) (सन्मार्गे) यातायासे।

अनुवाद - हे बलपुत्र ! (अग्ने !) जो विद्वान् पुत्र तुम्हारे लिये (हव्य) वहन करता है (उसको) (तुम) पिता की भाँति पार कर देते हो और पाप से पृथक् कर देते हो। हे विद्वान् ! (तुम) कब हमे देखोगे ? हे यज्ञ के प्रेरक । (अग्ने !) कब हमे (सन्मार्ग मे) प्रेरित करोगे ?

भूरि नाम वंदमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषयासे।

कुविद्देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः॥१०॥

अन्वय - हे वसो (अग्ने !) (त्व) पिता (असि) तत् (हव्य) (त्व) जोषयसे (त्वदीय) नाम वन्दमान· भूरि दधाति। देवस्य कुवित् (हव्य) चकान (अग्निः) ववृधानः सहसा (सन्) सुम्न वनते।

अनुवाद - हे निवासप्रद ! (अग्ने !) (तुम) पालक (हो) उस (हव्य का) तुम सेवन करते हो जो (तुम्हारे) नाम की वन्दना करके प्रचुर रूप से दिया गया है। यजमान के बहुत (हव्य) की कामना करने वाला(अग्नि)प्रवृद्ध और बलयुक्त (होकर) सुख प्रदान करता है।

त्वमग जरितार यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरिताति पर्षि।

स्तेना अदृश्रन्रिपवो जनासोऽज्ञातकेता वृजिना अभूवन्॥११॥

अन्वय - हे अङ्ग ! हे यविष्ठ अग्ने ! जरितारम् (अनुगृहीतु) त्व विश्वानि दुरिता अति पर्षि। स्तेनाः (न·) अदृशन् अज्ञातकेता रिपव जनास. (अस्माभिः) वृजिनाः अभूवन्।

अनुवाद - हे स्वामी ! हे युवतम अग्ने ! स्तोताओ को (अनुगृहीत करने के लिये) तुम समस्त विघ्नो को पार (नष्ट) कर देते हो। चोर (हमे) दिखायी पड़ने लगते है। अपरिगत चिह्न वाले शत्रुभूत मनुष्य (हमारे द्वारा) बाधित होते है।

इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन्वसवे वा तदिदागो अवाचि।

नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परा दात्॥१२॥

अन्वय - इमे (स्तोमा) त्वद्रिक यामासा· अभूवन्। वसवे वा (अग्निसमीप न·) तत् आग· अवाचि। न· (स्तोमैः) ववृधान. अयम् अग्नि नः अभिशस्तये रिषते (वा) न परादात्।

अनुवाद - ये (स्तोत्र) तुम्हारे अभिमुख गमन करते है। अथवा निवासप्रद (अग्नि के समीप) (हम) उस पाप का उच्चारण करते है। हमारी (स्तुतियो) के द्वारा प्रवृद्ध यह अग्नि हमे निन्दको (अथवा) हिसको को न दे।

सूक्त (४)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- वसुश्रुतात्रेय, ***छन्द***- त्रिष्टुप्

त्वामग्ने वसुपति वसूनामभि प्र मंदे अध्वरेषु राजन्।

त्वया वाजं वाजयतो जयेमाभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम्॥१॥

अन्वय - राजन् ! अग्ने ! वसूना वसुपति। त्वाम् अध्वरेषु (नः) अभि प्र मन्दे। वाजयन्त· (न) त्वया वाज जयेम मर्त्याना पृत्सुर्ती· अभिस्याम्।

अनुवाद - हे स्वामी ! अग्ने । प्रचुर धनो के स्वामी तुम्हारे अभिमुख होकर यज्ञ मे (हम) स्तुति करते है। अन्नाभिलाषी (हम) तुम्हारी सहायता से अन्न प्राप्त करे। मनुष्यो की सेनाओ पर विजय प्राप्त करे।

हव्यवाळग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे।

सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक्स मिमीहि श्रवांसि॥२॥

मन्त्र (२) अन्वय - हव्यवाट् अग्नि अजर· (सन्) न पिता (अस्ति)। अस्मे विभु विभावा अग्नि· सुदृशीक (भवतु)। (हे अग्ने !) सुगार्हपत्या· इषः नः सम् दिदीहि। अस्मद्र्यक श्रवासि सम् मिमीह।

अनुवाद - हव्यवाहक अग्नि जरारहित (होकर) हमारा पालक (है) हमे व्यापक सर्वत्र दीप्यमान अग्नि भलीभाँति दर्शनीय (हो) (हे अग्ने !) शोभन गार्हपत्ययुक्त अन्न हमे भलीभाँति प्रदान करो। हम लोगो को कीर्ति दो।

विशा कवि विश्पतिं मानुषीणा शुचिं पावक घृतपृष्ठमग्निम्।

नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्याणि॥३॥

अन्वय (हे ऋत्विज !) मानुषीणा विशा विशपति कवि शुचि पावक घृतपृष्ठ होतार विश्वविदम् अग्नि दधित्वे। स (अग्नि) देवेषु (मध्ये) वर्याणि (धनानि) (अस्मदर्थं) वनते।

अनुवाद - (हे ऋत्विजो !) मनुष्य की प्रजाओ के पालक, मेधावी, कान्तिवान, पवित्र, घृतपृष्ठ, होमनिष्पादक, सर्वविद् अग्नि को धारण करो। वह (अग्नि) देवताओ के (मध्य मे) सग्रहणीय (धन) को (हमारे लिये) सम्भक्त करता है।

जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य।

जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान्हविरद्याय वक्षि॥४॥

अन्वय - हे अग्ने । इळया सजोषाः (सन्) सूर्यस्य रश्मिभिः यातमानः (त्व) (स्तुति) जुषस्व। हे जातवेद· । न· समिध जुषस्व। हविरद्याय देवान् आ (वह) (हविः) च वक्षि।

अनुवाद - हे अग्ने ! वेदभूमि के साथ समान प्रीतियुक्त (होकर) सूर्य की किरणो से सयुक्त होकर (तुम) (स्तुति का) सेवन करो। हे जातवेदस्! हमारे समिधो का सेवन करो। हवि भक्षण के लिये देवताओ का (आह्वान करो) और हव्य वहन करो।

जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इम नो यज्ञमुप याहि विद्वान्।

विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि॥५॥

अन्वय - (अग्ने !) जुष्ट· दमूनाः दूरोणे अतिथिः (इव पूज्यः) (त्व) नः इमं यज्ञम् उप याहि। विद्वान् ! अग्ने! विश्वा· अभियुज. विहत्या शत्रुयता भोजनानि आ भर।

अनुवाद - (हे अग्ने !) प्रीतियुक्त उदारमन वाले घर आये अतिथि के (समान पूज्य) (तुम) हमारे इस यज्ञ मे आगमन करो। हे विद्वान् अग्ने ! समस्त शत्रुओ को विनष्ट करके शत्रु समान आचरण करने वालो के धन का अपहरण करो।

वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे ३ स्वायै।

पिपर्षि यत्सहसस्पुत्र देवान्त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान्॥६॥

अन्वय - अग्ने । (त्व) वधेन दस्यु प्र चातयस्व स्वायै (च) तन्वे वयः कृष्वान·। सहस· पुत्र । यत् देवान् पिपर्षि (तथा) हे नृतम । अग्ने । स· (त्व) वाजे अस्मान् पाहि !

अनुवाद - हे अग्ने । (तुम) आयुध द्वारा दस्युओ को विनष्ट करते हो। (और) यजमानरूप पुत्र को अन्न प्रदान करते हो। हे बलपुत्र । जिस प्रकार देवताओ को तृप्त करते हो (उसी प्रकार) हे नेताओ मे । श्रेष्ठ । अग्ने । वह (तुम) युद्ध मे हमारी रक्षा करो।

वय ते अग्न उक्थैर्विधेम वय हव्यैः पावक भद्रशोचे।

अस्मे रयिं विश्ववार समिन्वास्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि॥७॥

अन्वय - हे अग्ने । वयम् उक्थैः ते विधेम वय हव्यैः (ते विधेम) पावक ! भद्रशोचे ! अस्मे विश्ववार रयि समिन्व। अस्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि।

अनुवाद - हे अग्ने ! हम लोग स्तोत्र द्वारा तुम्हारी परिचर्या करेगे हम लोग हव्य द्वारा (तुम्हारी परिचर्या करेगे) हे शोभनदीप्ति युक्त अग्ने । हमे सबके द्वारा वरणीय धन दो। हमे समस्त धन प्रदान करो।

अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम्।

वय देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरुथेन पाहि॥८॥

अन्वय - हे अग्ने । अस्माकम् अध्वर जुषस्व। सहस· सूनो । त्रिसधस्थ (अग्ने!) (न·) हव्य (जुषस्व) वय देवेषु सुकृत स्याम त्रिवरुथेन शर्मणा नः पाहि।

अनुवाद - हे अग्ने ! हमारे यज्ञ की सेवा करो। हे बलपुत्र । हे तीन (क्षिति आदि) स्थानो मे रहने वाले (अग्ने) (हमारे) हव्य की (सेवा करो)। हम देवताओ के मध्य सुकर्मकारी हो। तीन प्रकार के सर्ववरणीय सुख द्वारा हमारी रक्षा करो।

विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिंधुं न नावा दुरितातिं पर्षि।

अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानो ऽस्माकं बोध्यविता तनूनाम्॥९॥

अन्वय - जातवेदः अग्ने ! सिन्धु (तरिमः) नावा इव नः विश्वानि दुर्गहा दुरिता अति पर्षि। हे अग्ने। अत्रिवत् (न) नमसा गृणान (त्व) अस्माक तनूनाम् अविता (इति) बोधि।

अनुवाद - हे जातवेदस् अग्ने ! नदी (पार करने वाले) नाविक की भाँति हमे समस्त दु·सह दुखो से पार करो। हे । अग्ने। अत्रि की भाँति (हमारी) स्तुतियो के द्वारा स्तुत होकर (तुम) हमारे शरीर के रक्षक हो (यह) जान लो।

यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि।

जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम्॥१०॥

मन्त्र (१०) अन्वय - यः मर्त्य· (वय) कीरणा हृदा अमर्त्य त्वा जोहवीमि। जातेवेदः । अस्मासु यश धेहि अग्ने। प्रजाभि· (युक्त·) (वयम्) अमृतत्वम् अश्याम्।

अनुवाद - जो मरणधर्मा (हम) स्तुतियुक्त हृदय से अमरणधर्मा तुम्हारी स्तुति करते है। हे जातिवेदस! (उन) हमे सन्तान दो हे अग्ने ! सन्तान से (युक्त) हम अमृतत्व को प्राप्त करे।

यस्मै त्व सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम्।

अश्विनं स पुत्रिणं वीरवंतं गोमंतं रयिं नशते स्वस्ति॥११॥

अन्वय - जातवेदस ! अग्ने ! सुकृते यस्मै (यजमानाय) त्व लोक स्योन (अनुग्रह) कृणव स अश्विन पुत्रिण वीरवन्त गोमन्त (सन्) स्वस्ति रयि नशते।

अनुवाद - हे जातवेदस! अग्ने! सुकर्मा जिस (यजमान) के लिये तुम लौकिक सुखकर (अनुग्रह) करते हो वह अश्वयुक्त पुत्रयुक्त वीर्ययुक्त गोयुक्त (होकर) कल्याणकारी धन को प्राप्त करता है।

सूक्त (५)

देवता- आप्री, ***ऋषि***- वसुश्रुतात्रेय, ***छन्द***- गायत्री।

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे॥१॥

अन्वय - (ऋत्विज· !) जातवेदषे शोचिसे सुसमिद्धाय अग्नये तीव्र धृतं जुहोतन।

अनुवाद - (हे ऋत्विजो !) जातवेदस, दीप्तिवान, सुसमिद्ध अग्नि के लिये प्रचुर घृत से हवन करो।

नराशसंः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः कविर्हि मधुहस्त्यः॥२॥

अन्वय - नराशस अदाभ्य· कविः मधुहस्त्य· (अयम् अग्निः) इम यज्ञ सुसूदति।

अनुवाद- मनुष्यो के द्वारा प्रशसनीय अहिसनीय, मेधावी, शोभन हाथो वाला (यह अग्नि) इस यज्ञ को प्रदीप्त करे।

ईळितो अग्न आ वहेंद्रं चित्रमिह प्रियं सुखै रथेभिरूतये॥३॥

अन्वय - अग्ने ! ईळितः (सन्) (त्व) चित्र प्रियम् (च) इन्द्र सुखैः रथेभि. (अस्मद्) ऊतये इह (यज्ञे) आ वह।

अनुवाद - हे अग्ने ! स्तुत (होकर) (तुम) विचित्र (एव) प्रिय इन्द्र को सुखकर रथो द्वारा (हमारी) रक्षा के लिये इस (यज्ञ) मे लाओ।

ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्य१र्का अनूषत। भवा नः शुभ्र सातये॥४॥

अन्वय (हे बर्हि· !) उर्णम्रदाः (इव) वि प्रथस्व। अर्काः (त) अभि अनूषत। शुभ्र ! (बर्हि) (त्व) नः सातये भव।

अनुवाद - (हे बर्हि !) कम्बल (की भाँति) विस्तृत होओ। स्तोता (तुम्हारी) स्तुति करते है। हे दीप्त ! (बर्हि· !) (तुम) हमारे लिये धनप्रद होओ।

देवीर्द्वारो वि श्रयध्व सुप्रायणा नं ऊतये। प्रप्र यज्ञं पृणीतन॥५॥

अन्वय - सुप्रायणा ! (यज्ञस्य) द्वार· देवीः ! यूय वि श्रयहवम्। नः ऊतये यज्ञ प्रप्र पृणीतन।

अनुवाद - हे सुगमनसाधिका ! (यज्ञ-) द्वार की देवियो ! तुम विमुक्त होओ। हमारी रक्षा के लिय यज्ञ को पूर्ण करो।

सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा। दोषामुषासमीमहे॥६॥

अन्वय - सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा दोषाम् उषस (च) (देव्यौ) (वय) ईमहे।

अनुवाद - सुन्दर रूप वाली, अन्न बढाने वाली, महती, यज्ञ का निर्माण करने वाली रात्रि एव उषा (देवियो) की (हम) स्तुति करते है।

वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः। इमं नो यज्ञमा गतम्॥७॥

अन्वय - दैव्या (समुद्भूतौ) होतारा! (यूवा) ईळितः वातस्य पत्मन् नः मनुषः इम यज्ञम् आ गतम्।

अनुवाद - हे देवताओ (से समुद्भूत) होताओ ! (तुम) स्तुत होकर वायुपथ से गमन करते हो। हम मनुष्यो के इस यज्ञ मे आओ।

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदंत्वस्रिधः॥८॥

अन्वय - इळा सरस्वती मही तिस्रः देवीः मयोभुवः (सन्तु) अस्रिधः (सन्) बर्हि सीदन्तु।

अनुवाद - इळा सरस्वती मही तीनो देवियो सुख प्रदान करने वाली (हो) हिसा शून्य (होकर) बर्हि पर बैठे।

शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना। यज्ञेयज्ञे न उदव॥९॥

अन्वय - हे त्वष्टः ! शिवः विभुः (त्व) इह आ गहि। न· पोषे त्मना (एव) (नः) यज्ञे यज्ञे उदव।

अनुवाद - हे त्वष्टा! कल्याणकारी व्यापक (तू) यहाँ आ। हमारे कल्याण के लिये स्वय (ही) (हमारी) प्रत्येक यज्ञ मे रक्षा करो।

यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि। तत्र हव्यानि गामय॥१०॥

अन्वय - वनस्पते! (देव !) (त्व) यत्र देवाना गुह्य नामानि वेत्थ तत्र (न.) हव्यानि गमय।

अनुवाद - हे वनस्पति! (देव !) (तुम) जिस स्थान मे देवताओ के गुप्त नाम को जानते हो उस स्थान मे (हमारे) हव्य को पहुँचाओ।

स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेद्राय मरुद्भ्यः। स्वाहा देवेभ्यो हविः॥११॥

अन्वय - (इद) हवि अग्नये वरुणाय स्वाहा इन्द्राय मरुद्भ्यः (च) स्वाहा (विश्व -) देवेभ्य· स्वाहा।

अनुवाद - (यह) हवि अग्नि, वरुण को समर्पित है इन्द्र (और) मरुतो को समर्पित है (समस्त) देवताओ को समर्पित है।

सूक्त (६)

देवता - अग्नि, ***ऋषि***- वसुश्रुतात्रेय, **छन्द**- पङ्क्ति।

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।

अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर॥१॥

अन्वय - यः वसुः (अस्ति) यम् अस्त धेनवः यान्ति (यम्) अस्तम् आशवः अर्वन्तः (यान्ति) तम् अग्नि स्तौमि (यम्) अस्त नित्यास वाजिनः (यजमाना.) (यान्ति) हे अग्ने! स्तोतृभ्यः इषम् आ भर।

अनुवाद - जो निवासप्रद (है) जिसके आश्रय मे गाये जाती है (जिसके) आश्रय मे तीव्रगामी अश्व (जाते है) जिसके आश्रय मे नित्य हव्य देने वाले (यजमान) जाते है उस अग्नि की स्तुति करता हूँ। (हे अग्ने !) स्तोताओ के लिये अन्न लाओ।

सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः।

समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर॥२॥

अन्वय - य· वसुः गृणे य धेनवः समायाति (य) रघुध्रुवः अर्वन्तः सम् (आयन्ति) (य) सुजातास· सूरयः (आयन्ति) स· अग्नि (अस्ति) (अग्ने!) स्तोतृभ्यः इषम् आ भरा

अनुवाद - जो आश्रय के रूप मे स्तुत होता है जिसके समीप गाये आती है (जिसके) समीप तीव्रगामी अश्व आते है जिसके समीप उत्तम कुलोत्पन्न विद्वान् (आते है) वह अग्नि (है)। (हे अग्नि) स्तोताओ को अन्न प्रदान करो।

अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः।

अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर॥३॥

अन्वय - विश्वचर्षणि· अग्निः विशे वाजिन ददाति। स· अग्निः प्रीतः (सन्) राये स्वाभुव वार्य (धन) यति। हे अग्ने । स्तोतृभ्य इषम् आ भर।

अनुवाद - सबको देखने वाला अग्नि यजमान को अन्न देता है अग्नि प्रसन्न (होकर) धनार्थी को सर्वत्र व्याप्त एव वरणीय (धन) प्रदान करता है। (हे अग्ने !) स्तोताओ के लिये अन्न लाओ।

आ ते अग्न इधीमहि द्युमंतं देवाजरम्।

यद्ध स्या ते पीनयसी समिद्दीदयति द्यवीष स्तोतृभ्य आ भर॥४॥

अन्वय - अग्ने । द्युमन्तम् अजर ते (वय) आ इधीमहि। ते स्या पनीयसी समित् द्यवि दीदयति। अग्ने। स्तोतृभ्य इषम् आ भर।

अनुवाद - हे अग्ने ! कान्तिवान एव जरारहित तुमको (हम) सर्वत्र प्रज्ज्वलित करते है , तुम्हारी वह प्रशासनीय दीप्ति द्युलोक मे प्रकाशित होती है। हे अग्ने ! स्तोताओ को अन्न प्रदान करो।

आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते।

सुश्चंद्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर॥५॥

अन्वय - शुक्रस्य शोचिषः पते ! सुश्चन्द्रः (शत्रूणा) दस्म ! विश्पते ! हव्यवाट् । अग्ने । ते तुभ्य ऋचा सह हवि हूयते। अग्ने । स्तोतृभ्य इषम् आ भर ॥

अनुवाद - हे दीप्ति समूह के स्वामी । आह्लाददायक (शत्रुओ के) विनाशक प्रजाओ के स्वामी, हव्यवाहक हे अग्नि। तुम्हे ही मन्त्र के साथ आहुति दी जाती है। हे अग्ने ! स्तोताओ को अन्न प्रदान करो।

प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यंति वार्यम्।

ते हिन्विरे त इन्विरे त इषण्यत्यानुषगिषं स्तोतृभ्य आ भर॥६॥

अन्वय - त्ये (लौकिका·) अग्नयः (गार्हपत्यादिषु) अग्निषु विश्व वार्य (धन) प्रो इष्यन्ति। ते (अग्नयः) हिन्विरे ते इन्विरे ते आनुषुक् इषण्यन्ति हे अग्ने । स्तोतृभ्यः इषम् आ भर।

अनुवाद - वे (लौकिक) अग्नि (गार्हपत्य) अग्नि मे समस्त वरणीय (धन) का पोषण करते है। वह (अग्नि) आनन्दित करते वह (सर्वत्र) व्याप्त है। वे अनवरत अन्न की इच्छा करते हैं। हे अग्ने ! स्तोताओ को अन्न प्रदान करो।

तव त्ये अग्ने अर्चयो महिं व्राधंत वाजिनः।

ये पत्वभिः शफानां व्रजा भुरत गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर॥७॥

अन्वय - अग्ने । तव त्ये अर्चय वाजिनः व्राधन्त। ये (रश्मयः) पत्वाभि· शफाना गोना व्रजा भुरन्त। इष स्तोतृभ्य आभर।

अनुवाद - हे अग्नि। तुम्हारी वे किरणे तीव्र होकर वर्धित हो। वे (किरणे) पतन के द्वारा खुरयुक्त गायो के समूह की इच्छा करे। (हे अग्ने ।) स्तोताओ को अन्न प्रदान करो।

नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः।

ते स्याम य आनृचुस्त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर॥८॥

अन्वय - अग्ने ! नः स्तोतृभ्य· नवा. सुक्षिती इष भर। (येन) ये (वय) ते दमेदमे आनृच दूतास· त्वा स्याम।

अनुवाद - हे अग्ने ! हम स्तोताओ को नूतन सुन्दर गृहयुक्त अन्न प्रदान करो (जिससे) वे (हम) तुम्हारी प्रत्येक घर मे स्तुति कर दूत रूप मे तुम्हे प्राप्त करे।

उभे सुंश्चंद्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि।

उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर॥९॥

अन्वय - हे सुश्चन्द्र ! (अग्ने !) (त्व) सर्पिष· उभे दर्वी श्रीणीषे आसनि। शवस्पते ! उक्थेषु उतो न. (फलै·) उत्पुपूर्या।

अनुवाद - हे शोभन आह्ल्लाददायक (अग्ने !) (तुम) घृतपूर्ण दोनो जुहू उपभृत को मुख मे ग्रहण करते हो। हे बल के स्वामी ! यज्ञ मे भी हमे (फलो द्वारा) पूर्ण करो।

एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक्।

दधदस्मे सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर॥१०॥

अन्वय - एव (स्तोताः) आनुषक् अग्नि गीभि· यज्ञेभिः अर्जुः (त) यमुः (च)। (अग्ने!) अस्मे सुवीर्यम् आशु अश्वयम् उत् त्यत् दधत्।

अनुवाद - इस प्रकार (स्तोता) निरन्तर अग्नि के समीप स्तोत्रो (एव) स्तुतियो के द्वारा गमन करते है एव (उसको) स्थापित करते है। हे अग्ने ! हमे उत्तम पुत्र और तीव्र अश्व भी प्रदान करो।

सूक्त (७)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- इषात्रेय, ***छन्द***-अनुष्टुप्, पङ्ति

सखायः सं वः सम्यञ्चमिषं स्तोमं चाग्नये। वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते॥१॥

अन्वय - हे सखायः सम् (ऋत्विजः !) वः क्षितीना वर्षिष्ठाय ऊर्ज· नप्त्रे सहस्वते अग्नये इष स्तोत च सम्यञ्चम्।

अनुवाद - हे मित्रवत् (त्रित्विको !) तुम प्रजाओ (यजमानो) के लिये प्रवृद्ध बलपुत्र बलशाली अग्नि को अन्न और स्तुति प्रदान करो।

कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने। अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः॥२॥

अन्वय - यस्य समृतौ नर. रण्वा· नृसदने अर्हन्तः चित् यम् इन्धते (यदर्थं) जन्तवः सजयन्ति (स अग्निः) कुत्र चित् (वर्तते) ?

शुचिःष्म यस्मा अत्रिवत्प्र स्वधितीव रीयते। सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम्॥८॥

अन्वय - यस्मै (यजमाना.) अत्रिवत् प्र रीयते। (यः) शुचि· स्वधितिः इवा (वृक्षाणि छिनत्ति) यत् क्राणा (य.) भगम् आनशे (तमग्नि) सुषू माता (अरणि) असूत।

अनुवाद - जिसके समीप (यजमान) अत्रि की भाँति जाते है (जो) पवित्र (है) कुल्हाणी की भाँति (वृक्षो को काटता है) जो (उपकार) करने वाला है (जो) अन्न ग्रहण करता है (उस अग्नि को) (सुप्रसवा माता) (अरणि) ने उत्पन्न किया।

आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे। ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्त मर्त्येषुधाः॥६॥

अन्वय- सर्पिरासुते! अग्ने! य. (त्व) (सर्वस्य धायसे) (नः स्तुति.) (तस्मै) ते शम् अस्ति। एषु (न.) मर्त्येषु द्युम्न श्रवः उत् (उत्तमम्) चित्तम् आ धा·।

अनुवाद- हे हव्यभोजी! अग्ने! जो (तुम) (सबके) धारक हो। (हमारी) स्तुतियाँ तुम्हे शान्ति दे। इन (हमारे) मनुष्यो को दीप्त अन्न और (उत्तम) मन प्रदान करो।

इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे।

आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद्दस्यूनिषः सासह्यान्नॄन्॥१०॥

अन्वय- इति चित् मन्यु (रचयिता) अध्रिज. त्वादत्त पशुम् आददे। आत् अग्ने (हव्यम्) अपृणतः अत्रि· (त) ससह्यात्। दस्यून् इष च नॄन् ससह्यात्।

अनुवाद- इस प्रकार स्तोत्रो के (रचयिता) अत्रिकुलात्पन्न तुम्हारे द्वारा प्रदत्त पशुओ को प्राप्त करता है। जो अग्नि को (हव्य) दान नही करता अत्रि (उसे) पराभूत करे। दस्युओं और द्वेष करने वाले मनुष्यो को भलीभाँति पराभूत करे।

सूक्त - (८)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- इषात्रेय, ***छन्द***- जगती।

त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत।

पुरुश्चन्द्र यजत विश्वधायसं दमूनस गृहपतिं वरेण्यम्॥१॥

अन्वय सहस्कृत ! अग्ने ! प्रत्नासः ऋतायव (ऋषय.) (स्व) (ऊतये) पृत्न पुरुश्चन्द्र यजत विश्वधायस दमूनस गृहपति वरेण्य च त्वा सम् ईधिरे।

अनुवाद- हे बलकर्त्ता ! अग्ने! पुरातन यज्ञकारी (ऋषि) (अपनी) (रक्षा) के लिये पुरातन, अत्यधिक आह्लाददायक, याग योग्य ससार का पोषण करने वाले, उदारचित्त, गृहपति और वरणीय तुमको भलीभाँति प्रदीप्त करते है।

त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं निषेदिरे।

बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम्॥२॥

अन्वय- अग्ने ! पूर्व्य शोचिष्केश बृहत्केतु पुरुरूप धनस्पृत सुशर्माण स्ववस जरद्विष त्वा गृहपति विश· नि सेदिरे।

अनुवाद- हे अग्ने। पुरातन, दीप्त ज्वालाओ वाले, विशाल ज्वालाओ वाले, अनेक रूपो वाले, धनदाता, सुखप्रद भलीभाँति सरक्षण करने वाले, सूखे (वृक्षो) को जलाने वाले तुमको गृहपति के रूप मे यजमान स्थापित करते है।

त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम्।

गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम्॥३॥

अन्वय- सुभग अग्ने ! होत्राविद, विविच, रत्नधात, गुहासन्त, विश्वदर्शत, तुविष्वणस, सुयुज घृतश्रिय त्वां मानुषी· विश ईडते।

अनुवाद- हे सुभग अग्ने। होमविद् विवेचक, रत्नप्रद, सबके दर्शन योग्य, प्रभूत हवियुक्त, सुयज्ञकर्ता, घृतग्रहाक तुम्हारा मनुष्य सम्बन्धी प्रजा (यजमान) पूजन करते है।

त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं गीर्भिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम।

स नो जुषस्व समिधानो अंगिरो देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभि :॥४॥

अन्वय- अग्ने । वय विश्वधा गीभिः नमसा (च) गृणन्तः (सर्वेषा) धर्णसि त्वाम् उप सेदिम। अङ्गिरः ! सः (त्वम्) देव· मर्त्यस्य यशसा सुदीतिभिः (च) (आहुतिभिः) समिन्धानः नः जुषस्व।

अनुवाद- हे अग्ने । हम अनेक प्रकार के स्तोत्रो (एव) नमस्कार के द्वारा स्तुति करते हुये (सबके) धारक तुम्हारे समीप बैठते है। हे अङ्गिरापुत्र । वह प्रदीप्त (तुम) मनुष्यो के यश और भलीभाँति प्रदान की गयी (आहुतियो) के द्वारा सम्यक् दीप्त होकर हमारी सेवा करो।

त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत।

पुरुण्यन्ना सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे॥५॥

अन्वय- पुरुरूपः ! अग्ने ! त्व प्रत्नथा विशे विशे वयः दधासि। पुरुस्तुत ! (त्व) सहसा पुरुणि अन्ना विराजसि। तित्विषाणस्य ते सा त्विषिः (अन्यैः) नाधृषे।

अनुवाद- हे बहुरूप ! अग्ने ! तुम पहले की भाँति प्रजाओ को अन्न प्रदान करते हो। हे बहुस्तुत । (तुम) बल द्वारा प्रभूत अन्न के स्वामी होओ। प्रदीप्त तुम्हारी वह दीप्ति (अन्यो के द्वारा) रोकी नही जा सकती।

त्वामग्ने समिधानं यविष्ठय देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम्।

उरुज्रयस घृतयोनिमाहुत त्वेष चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति॥६॥

अन्वय- यविष्ठय अग्ने ! समिधान हव्यवाहन त्वा देवाः दूत चक्रिरे। उरुज्रयस घृतयोनिम् आहूत त्वेष चोदयन्मति (त्वाम्) (मर्त्या) चक्षु· दधिरे।

अनुवाद- हे युवतम! अग्ने ! भलीभाँति प्रज्ज्वलित होने वाले हव्यवाहक तुमको देवताओ ने दूत बनाया। प्रभूत वेगवान, घृतयोनि, हवि- प्राप्त करने वाले, प्रदीप्त, बुद्धिप्रेरक (तुमको) (मनुष्यो) ने चक्षु मे धारण किया।

त्वामग्ने प्रदिव आहुत घतैः सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे।

स वावृधान ओषधीभिरुक्षिता३भि ज्रयासि पार्थिवा वि तिष्ठसे॥७॥

अन्वय- अग्ने ! प्रदिवः सुम्नायव : घृतैः आहुत त्वा सुषमिधा समीधिरे। सः ववृधानः ओषधीभि· उक्षितः (त्वम्) पार्थिवा ज्रयासि अभि वि तिष्ठसे।

अनुवाद- हे अग्ने ! पुरातन, सुखाभिलाषी, यजमानो के द्वारा घृत से आहूत तुम सुसमिधा द्वारा प्रदीप्त होते हो। वह प्रवृद्ध वनस्पतियो के द्वारा सिक्त (तुम) पार्थिव अन्नो को अभिव्यक्त कर स्थित होते हो।

सूक्त (६)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- गयात्रेय, ***छन्द***- अनुष्टुप्, ५, ७, पङ्क्ति।

त्वामग्ने हविष्मंतो देव मर्तास ईळते। मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुषक्॥१॥

अन्वय- अग्ने ! हविष्मन्तः मर्तासः देव त्वाम् ईळते (अह) जातवेदस त्वा मन्ये। सः (त्व) हव्या अनुषक् वक्षि।

अनुवाद- हे अग्ने ! हविष्ययुक्त द्रव्य से मनुष्य दीप्तवान तुम्हारी स्तुति करते है। (मै) सर्वज्ञ तुम्हारी स्तुति करता हूँ। वह (तुम) हवियो का निरन्तर वहन करते हो।

अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्तबर्हिषः। सं यज्ञासश्चरंति य सं वाजासः श्रवस्यवः॥२॥

अन्वय- यज्ञासः यम् (अग्निम्) स चरन्ति, (यजमानस्य) श्रवस्यवः वाजासः (य) स (चरन्ति) (स) अग्निः दास्वत· वृक्तबर्हिष (यज्ञमानस्य) क्षत्रस्य होता (भवति)।

अनुवाद- याज्ञिक जिस (अग्नि) के साथ गमन करते है। (यजमान) का कीर्तियुक्त अन्न (जिसको) प्राप्त होता है (वह) अग्नि दानशील कुशच्छेदक (यजमान) के यज्ञ के लिये देवताओ का आह्वाता (होता है)।

उत स्म य शिशु यथा नव जनिष्टारणी। धर्तार मानुषीणा विशामग्निं स्वध्वरम्॥३॥

अन्वय- मानुषीण विशा धर्तार स्वध्वर यम् अग्निम् अरणी उत् स्म नाव शिशु यथा जनिष्ट।

अनुवाद- मानवी प्रजाओ को धारण करने वाले, शोभनयज्ञसम्पन्न जिस (अर्थात् उस) अग्नि को अरणिद्वय ने भी नूतन शिशु की भाँति उत्पन्न किया।

उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम्। पुरु यो दग्धासि वनाग्ने पशुर्न यवसे॥४॥

अन्वय - अग्ने ! (त्वम्) ह्वार्याणा पुत्र न दुर्ग्रभीयसे। उत स्म यवसे (विसृष्ट· क्षुर्धात·) पशुः न य (त्वम्) पुरु वना दग्धा असि।

अनुवाद- हे अग्ने ! (तुम) कुटिलगति सर्प के पुत्र की भाँति कठिनाई से धारण करने योग्य हो और तृणमध्य मे (पडे हुये क्षुधार्त) पशु की भाँति अनेक वनो के दाहक हो।

अध स्म यस्यार्चयः सम्यक्संयन्ति धूमिनः।

यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा॥५॥

अन्वय- अध स्म धूमिनः यस्य (अग्नेः) अर्चय· सम्यक् सयन्ति। त्रित (लोकेषु व्यापक· अग्नि·) ध्मातेव यदीमहि दिवि उप धमति। यथा ध्मातरि (अग्निना ध्मात) शिशीते (तथा अग्निः आत्मान शिशीते)।

अनुवाद- और धूमवान जिस (अग्नि) की शिखये सम्यक् रूप से सर्वत्र व्याप्त होती है। तीनो (लोको में स्थित अग्नि) लोहार की भाँति स्वय को अन्तरिक्ष मे उपवर्धित करता है। जिस प्रकार लोहार (अग्नि से लोहे को) तीक्ष्ण करता है (उसी प्रकार अग्नि स्वय को तीक्ष्ण करता है)।

तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः। द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम्॥६॥

अन्वय- अग्ने । मित्रस्य तव ऊतिभिः प्रशस्तिभिः च अह द्वेषोयुतः (तुर्यमाणः) न मर्त्याना दुरिता तुर्याम।

अनुवाद- हे अग्ने ! मित्र तुम्हारी रक्षा एव स्तुति द्वारा मै द्वेषयुक्तो को (पार करने वाले की) भाँति मनुष्यो के पापकर्मो से पार हो जाऊँ।

तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आ भर।

स क्षेपयत्स पोषयद्भुवद्वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे॥७॥

अन्वय- अग्ने । नरः सहस्वः (त्व) नः अभि त रयिम् आ भर। स· (अग्निः शत्रून्) क्षेपयत् स· (नः) पोषयत्। (अग्ने !) (त्व) वाजस्य सातये भुवत् उत् पृत्सु न. वृधे एधि।

अनुवाद हे अग्ने । नेता हव्यवाहक (तुम) हमारे समीप उस धन को ले आओ। वह (अग्नि शत्रुओ को) पराभूत करे। वह हमारा पोषण करे। (हे अग्ने !) (तुम) अन्नलाभ के लिये होओ और सङ्ग्राम मे हमारी वृद्धि के लिये होओ।

सूक्त - (१०)

देवता- अग्नि, **ऋषि**- गयात्रेय, **छन्द**- अनुष्टुप्, ४, ७ - पक्ति।

अग्न॒ ओजि॑ष्ठ॒माभ॑र द्यु॒म्नम॒स्मभ्य॑मध्रिगो। प्र नौ॑रा॒या परी॑णसा॒ रत्सि॒ वाजा॑य॒ पथा॑म्॥१॥

अन्वय- अग्ने । ओजिष्ठ द्युम्नम् (धनम्) अस्मभ्यम् आ भर। अध्रिगः (त्व) न परीणसा राया प्र (योजय)। वाजाय (न) पन्था रत्सि।

अनुवाद - हे अग्ने । बलयुक्त सर्वत्र प्रकाशित (धन) को हमारे समीप लाओ। हे अप्रतिहतगति ! (तुम) हम लोगो को सर्वत्र व्याप्त धन से भलीभाँति (युक्त करो)। अन्न के लिये (हम लोगो का) मार्ग बनाओ।

त्व नो॑ अग्ने अद्भुत॒ क्रत्वा॒ दक्ष॑स्य म॒हना॑। त्वे असु॒र्य१॒॑मारु॑हत्क्रा॒णा मि॒त्रो न य॒ज्ञिय॑ः॥२॥

अन्वय- अद्भुत अग्ने ! त्व न· क्रत्वा (प्रीतः सन्) दक्षस्य महना (कुरु) त्वे (बलम्) असुर्यम् आरुरुहत (अतः) मित्र. न यज्ञिय (त्वम्) (असुरघातक) क्राणा (कुरु)।

अनुवाद- हे अद्भुत अग्ने! तुम हमारे कर्म से (प्रसन्न होकर) बल का दान (करो)। तुम्हारा (बल) असुरो को नष्ट करने वाला है (अत·) सूर्य की भाँति पूज्य (तुम) (असुरो को नष्ट करने वाला) काम (करो)।

त्व नो॑ अग्न एषा॒ं गयं॑ पु॒ष्टि च॑ वर्धय। ये स्तोमे॑भि॒ः प्र सू॒रयो॒ नरो॑ म॒घान्या॑न॒शुः॥३॥

अन्वय- (अग्ने !) ये (प्रसिद्धा·) सूरयः नरः (तब) स्तोमेभिः मघानि आनशुः। अग्ने ! त्वम् एषाम् (स्तोतॄणा) न (च) गय पुष्टि च वर्धय।

अनुवाद- (हे अग्ने!) जिन (प्रसिद्ध) स्तवकारी मनुष्यो ने (तुम्हारी) स्तुति के द्वारा धन प्राप्त किया हे अग्ने! उन (स्तोताओ) के (और) हमारे धन और बल को बढाओ।

ये अ॑ग्ने चंद्र ते॒ गिर॑ः शु॒भंत्यश्व॑राधसः।

शुष्मे॑भिः शुष्मिणो॒ नरो॑ दि॒वश्चि॒द्येषा॑ं बृहत्सु॑की॒र्तिर्बोध॑ति॒ त्मना॑॥४॥

अन्वय- चन्द्र । अग्ने ! ये नरः गिरः ते शुम्भन्ति (ते) अश्वराधसः (भवन्ति) शुष्मेभिः च शुष्माण· (शत्रुहन्ता भवन्ति) येषा सुर्कीर्ति· दिव चित् बृहत् (तेष त्व) त्मना एव बोधति।

अनुवाद- हे आह्लादक । अग्ने। जो मनुष्य स्तोत्रो से तुम्हारी भलीभाँति स्तुति करते है (वे) अश्वधन (प्राप्त करने) वाले (होते है) और बल ये बलयुक्त (शत्रुओ का नाश करते है) जिनकी सुकीर्ति स्वर्ग से भी बढकर (है) (उन्हे) (तुम) स्वय ही जानते हो।

तव त्ये अग्ने अर्चयो भ्राजंतो यति धृष्णुया।

परिज्मानो न विद्युतः स्वानो रथो न वाजयुः॥५॥

अन्वय- अग्ने! तव त्य धुष्णुया भ्राजन्तः अर्चय परिज्यमान· विद्युतः न स्वान रथ न वाजयु (च न) (सर्वत्र) यान्ति।

अनुवाद- हे अग्ने! तुम्हारी वे अत्यन्त प्रगल्भ दीप्तवान किरणे सर्वत्र विद्यमान विद्युत की भाँति, शब्दायमान रथ की भाँति (और) अन्नकामी (की भाँति) (सर्वत्र) गमन करती है।

नू नो अग्न ऊतये सबाधसश्च रातये। अस्माकासश्च सूरयो विश्वा आशास्तरीषणि॥६॥

अन्वय- अग्ने! नु न ऊतये रातये च सबाधसः (भव)। अस्माकासः (सम्बन्धिन) सूरयः च विश्वा आशा तरीषणि।

अनुवाद- हे अग्ने! शीघ्र ही हमारी रक्षा के लिये एव धन के लिये समस्त बाधाओ को हटाने वाले (होओ) हमारे (सम्बन्धी) और स्तोता समस्त मनोकामनाओ को प्राप्त करे।

त्व नो अग्ने अगिरः स्तुतः स्तवान् आ भर।

होतर्विभ्वासह रयि स्तोतृभ्यः स्तवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे॥७॥

अन्वय- अङ्गिर! स्तुत·! अग्ने! त्वम् स्तवानः न विभ्वासहस रयिम् आ भर। होत·! नः स्तोतृभ्य स्तवान· (प्रयच्छ) पृत्सु च उत न वृधे एधि।

अनुवाद- हे दीप्त ! स्तुत! अग्ने! तुम स्तुत होते हुये हमे सबको अभीभूत करने वाला धन प्रदान करो। हे होता! हम स्तोताओ को स्तुति का सामर्थ्य (दो) और सड्ग्राम मे भी हम समृद्धि को प्राप्त करे।

सूक्त - (११)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- सुतभरात्रेय, ***छन्द***- जगती।

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे।

घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः॥१॥

अन्वय- जनस्य गोपा· जागृविः सुदक्ष अग्नि नव्यसे सुविताय अजनिष्ट। घतप्रतीक· (अग्नि) बृहता दिविस्पृशा द्युमत् भरतेभ्य. विभाति।

अनुवाद- प्रजाओ का रक्षक, प्रवृद्ध श्लाघनीय बल वाला अग्नि (लोगो के) नूतन कल्याण के लिये उत्पन्न होता है। घृत द्वारा प्रज्ज्वलित (अग्नि) विशाल द्युलोक के स्पर्श से द्युतिमान होकर ऋत्विको के लिये प्रकाशित होता है।

यज्ञस्य केतु प्रथमं पुरोहितमग्नि नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे।

इद्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतु.।।२।।

अन्वय- यज्ञस्य केतु पुरोहितम् इन्द्रेण देवै. सरथम् अग्नि नरः त्रिसधस्थे प्रथम समीधिरे। सुक्रतु होता सः (अग्नि·) बर्हिषि यजथाय नि सीदत्।

अनुवाद- यज्ञ के प्रज्ञापक, (यजमानो द्वारा) अग्रभाग मे स्थापित, इन्द्रादि देवो के समान रथवाले अग्नि को ऋत्विक तीनो स्थनो मे सर्वप्रथम भलीभाँति समिद्ध करते है।। शोभन कर्मवाला (और) देवो का आह्वता वह (अग्नि) कुश पर यज्न के लिये बैठता है।

असंमृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः।

घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद्दिवि श्रितः।।३।।

अन्वय- अग्ने ! शुचिः , मन्द्रः, कविः, (यजमानै) उदतिष्ठः, विवस्वत· (त्वम्) असमृष्ट· मात्रो· जायसे। (पूर्वे महर्षय) घृनेन त्वा अवर्धयन्। आहुत ! दिविश्रित. धूमः ते केतुः अभवत्।

अनुवाद- हे अग्ने ! पवित्र. स्तुत, कान्तप्रज्ञ, (यजमानो के द्वारा) उदित, विवस्वत (तुम) निर्विघ्न रूप से माता से उत्पन्न होते हो। (पूर्व महर्षियो ने) घृत द्वारा तुम्हे वर्धित किया। हे हव्यवाहक !अन्तरिक्षव्यापी धुआँ तुम्हारा प्रज्ञापक है।

अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु साधुयाग्निं नरो वि भरंते गृहेगृहे।

अग्निर्दतो अभवद्धव्यवाहनोऽग्नि वृणाना वृणते कविक्रतुम्।।४।।

अन्वय- (सर्वपुरुषार्थाना) साधुया अग्निः न. यज्ञम् उपवेतु। नरः अग्नि गृहे गृहे वि भरन्त। हव्यवाहनः अग्निः (देवाना) दूत अभवत्। कविक्रतु वृणानाः (जना·) अग्नि वृणते।

अनुवाद- (सभी पुरुषर्थो के) साधक अग्नि हमारे यज्ञ मे आगमन करे। मनुष्य अग्नि को प्रत्येक घर मे सस्थापित करते है। हव्यवाहक अग्नि (देवताओ का) दूत हुआ। कान्त प्रज्ञ का सम्भजन करते हुये (लोग) अग्नि की सेवा करते है।

तुभ्येदमग्ने मधुमत्तम वचस्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे।

त्वा गिरः सिंधुमिवावनीर्महीरा पृणंति शवसा वर्धयंति च।।५।।

अन्वय- अग्ने ! इदम मधुत्तम वच· तुभ्य (क्रियते)। इय मनीषा तुभ्य शम् अस्तु। महीः अवनी· (वर्धितम्) सिन्धुम् इव त्वा गिर (त्वाम्) आ पृणन्ति शवसा च वर्धयन्ति।

अनुवाद- हे अग्ने ! यह माधुर्ययुक्त वाणी तुम्हारे लिये (प्रयुक्त हुयी है)। यह स्तुति तुम्हारे हृदय मे सुख उत्पन्न करे। विशाल नदियो से (बढे हुये) समुद्र की भाँति तुम्हारी स्तुति (तुम्हे) पूर्ण करती है और बल से वर्धित करती है।

त्वामग्ने अगिरसो गुहा हितमन्वविदञ्छिश्रियाण वनेवने।

स जायसे मथ्यमानः सहो महत्वामाहुः सहसस्पुत्रमगिरः॥६॥

अन्वय- अग्ने । गुहाहित वने वने शिश्रियाणम् त्वाम् अङ्गिरस· अन्वविन्दन्। अङ्गिर· । स (त्वम्) महत् सह· मथ्यमान जायसे (अत) त्वा सहस पुत्रम् आहुः।

अनुवाद- हे अग्ने। गुहा मे निहित प्रत्येक वन का आश्रय लेने वाले तुमको अङ्गिराओने खोज निकाला। हे अङ्गिरा । वह (तुम) महान बल द्वारा मथित होते हयु उत्पन्न होते हो (अतः) तुम्हे बलपुत्र कहा जाता है।

सूक्त - (१२)

देवता- अग्नि. ***ऋषि***- सुतभरात्रेय, ***छन्द***- त्रिष्टुप्।

प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म।

घृतं न यज्ञ आस्य३सुपूत गिर भरे वृषभाय प्रतीचीम्॥१॥

अन्वय- बृहते, यज्ञियाय, ऋतस्य वृष्णे, असुराय वृषभाय अग्नये प्रतीची मन्म यज्ञे आस्ये घृत न सुपूत गिर प्र भरे।

अनुवाद- महान. यागयोग्य, जलवर्षक, बलवान, कामनासेचक अग्नि को प्रीतिकर मननयोग्य यज्ञ मे डाले हुय घृत की भाँति स्तुति प्रदान करता हूँ।

ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्धृतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः।

नाहं यातु सहसा न द्वयेन ऋत सपाम्यरुषस्य वृष्णः॥२॥

अन्वय- ऋत चिकित्व. । (अग्ने !) (मयाक्रियमाणमिदम्) ऋत चिकिद्धि। ऋतस्य (च) पूर्वी धारा· अनुतृन्धि। सहसा अह यातु न (सपामि)। द्वयेन (सत्यानृताभ्याम् अवैदिककृत्य) न (सपामि)। वृष्णः (अहम्) अरुषस्य (तुभ्य) ऋत सपामि।

अनुवाद- हे स्तोत्र को जानने वाले ! (अग्ने !) (मेरे द्वारा बनाये गये इस) स्तोत्र को जानो। (और) जल की अनेक धाराओ का वर्षण करो। बलयुक्त मै हिसक कार्य नही (करता) दोनो (सत्य और झूठ से युक्त अवैदिक कार्य) नही (करता) हे कामना सेचक। (मैं) दीप्तवान (तुम्हारे) लिये स्तोत्र कहता हूँ।

कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः।

वेदा मे देव ऋतुपा ऋतुना नाह पतिं सनितुरस्य रायः॥३॥

अन्वय- अग्ने। ऋतयन् (त्वम्) कया ऋतेन न उचथस्य नवेदाः भुवः। नव्य· ऋतूनाम् ऋतुपा देव· (अग्नि·) मे वेद। (किम्) अह सनितुः (मम) अस्य रायः पतिम् (अग्नि) न जानामि।

अनुवाद- हे अग्ने । जलप्रदान करते हुये (तुम) किस सत्य द्वारा हमारी स्तुति के ज्ञाता होओगे। स्तवनीय ऋतुओ का रक्षक दिव्य (अग्नि) मुझे जाने। (क्या) मै सम्मानजनक (मेरे) इस धन के स्वामी (अग्नि) को नही जानता ?

के ते अग्ने रिपवे बधनासः के पायवः सनिषत द्युमतः।

के धासिमग्ने अनृतस्य पाति क आसतो वचसः सति गोपाः॥४॥

अन्वय अग्ने । के रिपवे बन्धनास स्यु के पायव. सनिषन्त· द्युमन्त स्यु· ? ते (त्वदीया· सन्तिः)। अग्ने । के के अनृतस्य धासि पान्ति ? के असत वचस. गोपाः सन्ति ?

अनुवाद- हे अग्ने । कौन शत्रुओ के लिये बन्धनकारी है। ? कौन लोकरक्षक, दानशील दीप्तवान है ? वे (तुम्हारे है)। हे अग्ने। कौन कौन असत्य बोलने वाले की रक्षा करते है ?

सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः संतो अशिवा अभूवन्।

अधूर्षत स्वयमेते वचोभिर्ऋजूयते वृजिनानि ब्रुवंतः॥५॥

अन्वय- अग्ने । विषुणा ते एते सखाय (पुरा) अशिवा· अभूवन्। (इदानी) (त्वत्परिचर्याम्) सन्त· शिवास· (भवन्ति)। ऋजुयते (न ये) वृजिनानि वचभि. ब्रुवन्त. एते स्वयम् (एव) अधूर्षत।

अनुवाद- हे अग्ने । व्यापक तुम्हारे ये बन्धुगण (पहले) अभद्र हो गये थे (अब) (तुम्हारी परिचर्या) करते हुये कल्याणकारी (हो गये है)। सन्मार्गी (हमसे जो) कुटिल वचन बोलते है वे सवय (ही) नष्ट हो जाते है।

यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्टे ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः।

तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः॥६॥

अन्वय- अग्ने । य यज्ञ ते नमसा ईळे सः अरुषस्य वृषण· (अग्नेः) ऋत पाति। तस्य क्षय· पृथु· (भवति) (ते) प्रसस्रिणस्य नहुषस्य साधु शेष· आ एतु।

अनुवाद- हे अग्ने । जो स्तवनीय तुम्हारी नमस्कार द्वारा स्तुति करता है वह कान्तिवान कामनासेचक (अग्नि) के स्तोत्र की रक्षा करता है। उसका निवासस्थान विशाल (होता है)। तुम्हारी परिचर्या करता हुआ मनुष्य कामना को सिद्ध करने वाला पुत्र प्राप्त करता है।

सूक्त - (१३)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- सुतभरात्रेय, ***छन्द***- गायत्री।

अर्चंतस्त्वा हवामहेऽर्चंतः समिधीमहि। अग्ने अर्चंत ऊतये॥१॥

अन्वय- अग्ने । अर्चन्त. (वय) त्वा हवामहे। अर्चन्त च (वय) (स्व) ऊतये (त्वा) समिधीमहि।

अनुवाद- हे अग्ने ! पूजा करते हुये (हम) तुम्हारा आह्वान करते है एव स्तुति करते हुये (हम) (अपनी) रक्षा के लिये (तुम्हे) भलीभाँति प्रज्ज्वलित करते है।

अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः। देवस्य द्रविणस्यवः॥२॥

अन्वय- द्रविणस्यव (वय) दिविस्पृश· देवस्य अग्ने सिघ्र स्तोमम् अद्य मनामहे।

अनुवाद- धन की इच्छा करते हुये (हम) आकाशस्पर्शी प्रज्ज्वलित अग्नि की पुरुषार्थसाधक स्तुति का आज पाठ करते ह

अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा। स यक्षद्दैव्य जनम्॥३॥

अन्वय- होता य अग्नि· मानुषेषु आ वसति सः न गिर· जुषत् (सः) दैव्य जन यक्षत्।

अनुवाद- होता जो अग्नि मनुष्यो के मध्य अवस्थित होता है वह हम लोगो की स्तुति ग्रहण करे, (वह) देवताओ के समक्ष वहन करे।

त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः। त्वया यज्ञ वि तन्वते॥४॥

अन्वय - अग्ने । जुष्ट वरेण्यः होता त्व सप्रथा असि। त्वया (साधनेन) (यजमानः) यज्ञ वि तन्वते।

अनुवाद- हे अग्ने ! प्रीतियुक्त, वरणीय होता तुम सर्वत्र व्याप्त हो। तुम्हारी (सहायता) से (यजमान) यज्ञ सम्पादन करता ह.

त्वामग्ने वाजसातम विप्रा वर्धति सुष्टुतम्। स नो रास्व सुवीर्यम्॥५॥

अन्वय- अग्ने । विप्रा. (स्तोतार) वाजसातम सुस्तुत त्वा (स्तोत्रैः) वर्धयन्ति। स. (त्व) न सुवीर्य· रास्व।

अनुवाद- हे अग्ने । मेधावी (स्तोता) अन्नदाता सुस्तुत तुम्हे (स्तोत्रो) से सवर्द्धि करते है वह (तुम) हमे श्लाघनीय बल प्रदान करो।

अग्ने नेमिरराँ इव देवां स्त्वं परिभूरसि। आ राधश्चित्रमृंजसे॥६॥

अन्वय- अग्ने । त्व नेमि· (परित· वेष्टितान्) आरान् इव देवाना परिभू· असि। (त्वम्) चित्र राध· (स्तोतृभ्य) आ ऋञ्जसे·

अनुवाद- हे अग्ने । तुम नेमि के (चारो ओर वेष्टित) आरो की भाँति देवताओ के चारो ओर व्याप्त हो। (तुम) नाना प्रकार का धन (स्तोताओ को) प्रदान करो।

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- सुतभरात्रेय, ***छन्द***- गायत्री।

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम्। हव्या देवेषु नो दधत्॥१॥

अन्वय - (स्तोत !) (त्वम्) अमर्त्यम् अग्नि स्तोमेन बोधय। समिधानः (सः अग्नि) न. हव्या देवेषु दधत्।

अनुवाद- (हे स्तोता !) (तुम) अमर्त्य अग्नि को स्तोत्रो से चैतन्य करो। प्रदीप्त (वह अग्नि) हमारे हव्य को देवताओ मे स्थपित करे।

तमध्वरेष्वीळते देव मार्ता अमर्त्य। यजिष्ठ मानुषे जने॥२॥

अन्वय- मर्ता देवम् अमर्त्य मानुषे जने यजिष्ठ तम् अग्निम् अध्वरेषु ईडते।

अनुवाद- मनुष्य दिव्य, अमर्त्य मनुष्य लोक मे सर्वाधिक यजनीय उस अग्नि की यज्ञ मे स्तुति करते है।

त हि शश्वत ईळते स्रुचा देव घृतश्चुता। अग्नि हव्याय बोळ्हवे॥३॥

अन्वय शश्वन्त. (स्तोतार·) घृतश्चुता स्रुवा हव्याय बोळहवे हि त देवम् अग्निम् ईळते।

अनुवाद- बहुत से (स्तोता) घृत गिराते हुये स्रुवा से हव्य वहन के लिये ही उस दिव्य अग्नि की स्तुति करते है।

अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः। अविदद्गा अपः स्वः॥४॥

अन्वय- (अरणयोर्मन्थनेन) जात. अग्निः (स्वेन) ज्योतिषा दस्यून् तमः (च) घ्नन् अरोचत। (अग्नि.) गा· अपः स्व· (च) अविन्दत्।

अनुवाद- (अरणि मन्थन से) उत्पन्न अग्नि (अपनी) ज्योति से दस्युओ (और) अन्धकार को नष्टकर प्रदीप्त होता है। (अग्नि ने) ने गाय, जल (और) सूर्य को प्राप्त किया।

अग्निमीळेन्य कवि घृतपृष्ठ सपर्यत। वेतु मे शृणवद्धवम्॥५॥

अन्वय- (जना !) (यूयम्) ईडेन्य कवि घृतपृष्ठम् अग्नि सर्पयत। (सः अग्नि·) मे हव शृणवत् वेतु (च)।

अनुवाद- (हे लोगो !) (तुम) स्तुत्य, कान्तप्रज्ञ, घृतपृष्ठ अग्नि की सेवा करो। (वह अग्नि) मेरे आह्वान को सुने (और) समझे

अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम्। स्वाधीभिर्वचस्युभि.॥६॥

अन्वय- (ऋत्विज.) स्वाधीभिः वचस्युभि· (च) (देवै· सह) विश्वचर्षिणम् अग्नि घृतेन स्तोमेभिः (च) ववृधु।

अनुवाद- (ऋत्विग्गण) शोभनध्यानगम्य (एव) स्तुत्याभिलाषी (देवताओ के साथ) सर्वदर्शी अग्नि को घृत (एव) स्तोम द्वारा सवर्द्धित करते है।

सूक्त - (१५)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- धरुणाङ्गिरस, ***छन्द***- त्रिष्टुप्।

प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय।

घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः॥१॥

अन्वय- अग्नि घृतप्रसत्त , असुर., सुशेव:, राय धर्ता, (हवि.) धरुण· वस्वः (भवति)। कवये, वेद्याय, यशसे, पूर्व्याय (तस्मै अग्नये) (वय) गिर प्र भरे।

अनुवाद- अग्नि, घृतद्वारा प्रसन्न होने वाला, बलशाली, सुखस्वरूप धन का अधिपति (हवि) वाहक, ग्रहदाता है। कान्तदर्शी, विधाता, स्तुतियोग्य, यशस्वी श्रेष्ठ (उस अग्नि के लिये) (हम) स्तुति का प्रणयन करते है।

ऋतेन ऋत धरुणं धारयत यज्ञस्य शाके परमे व्योमन्।

दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नॄञ्जातैरजाताँ अभि ये ननक्षुः॥२॥

अन्वय- ये (यजमाना) दिव धरुणे धर्मन् सेदुष नॄन् अजातान् जातै· अभि ननक्षुः (ते) ऋत यज्ञस्य धरुणम् (अग्नि) शाके परमे व्योमन् (वेद्याम्) ऋतेन धारयन्त।

अनुवाद- जो (यजमान) द्युलोक के धारक, यज्ञ मे आसीन नेता देवों को ऋत्विको द्वारा प्राप्त करते है (वे) सत्यस्वरूप यज्ञ के धारक (अग्नि) को यज्ञ के उत्तम स्थान (वेदि) पर स्तोत्रो द्वारा स्थापित करते है।

अहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद्दुष्टरं पूर्व्याय।

स संवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिंहं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः॥३॥

अन्वय- (ये यजमाना.) पूर्व्याय (अग्नये) महत् दुस्तर वय. (प्रयच्छन्ति) (तेषा) तन्व· अह·युवः (सन्) वि तन्वते। नवजात स (अग्नि) क्रुद्ध सिह न समर्वतः शत्रून तुतुर्यात् अभितः (च) (वर्तमाना. शत्रव·) (न) परि स्थुः।

अनुवाद- (जो यजमान) श्रेष्ठ (अग्नि) के लिये अत्यन्त कठिनता से प्राप्त अन्न (प्रदान करते है।) (उनका) शरीर पापमुक्त होकर बढता है। नूतन उत्पन्न वह (अग्नि) क्रुद्ध सिह की भाँति एकत्र हुये शत्रुओ को नष्ट करे (और) चारो ओर (वर्तमान शत्रुओ को) हमसे दूर ले जाये।

मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनंजनं धायसे चक्षसे च।

वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि॥४॥

अन्वय- (अग्ने !) यत् (त्व) माता इव जन जन भरसे, चक्षसे धायसे च प्रप्रथान (असि)। (अग्ने !) यत् (त्व) दधान (भवसि) (तदा) वयोवय जरसे विरूप. च त्मना (एव) परि जिगासि।

अनुवाद- (हे अग्ने !) (तुम) माता की भाँति समस्त लोगो का पोषण, दर्शन एव धारण करने के लिये विस्तृत हुये (हो)। (हे अग्ने !) जब (तुम) प्रदीप्त होते (हो) (तब) अन्नो को जीर्ण करते हो और नानारूपो वाले स्वय (ही) सर्वत्र व्याप्त होते हो।

वाजो नु ते शर्वसस्पात्वर्तमुरु दोघं धरुणं देव रायः।
पद न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः॥५॥

अन्वय देव । (अग्ने !) ऊरु दोघ, रायः धरुण ते अन्त शवसः वाज· नु पातु। गुहा दधान पद (रक्षक.) तायु· न मह· राये (न सन्माग) चितयन् (अग्ने !) अत्रिमस्प·।

अनुवाद- हे देव । (अग्ने !) अत्यन्त पूरक, धनरक्षक तुम्हारे बल की आज अन्न रक्षा करे। गुफा मे स्थित धन के (रक्षक) तस्कर की भाँति महान धन के लिए (हमे सन्मार्ग) दिखाओ। (हे अग्ने !) अत्रि को प्रसन्न करो।

सूक्त (१६)

देवता अग्नि, ***ऋषि***- पुरुरात्रेय, ***छन्द***- अनुष्टुप्, ५, पङ्ति।

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये। यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः॥१॥

अन्वय मर्तास य मित्र न (अग्निम्) प्रशस्तिभि. पुन· दधिरे (यजमानः !) तस्मै भानवे देवाय अग्नये बृहत् वय· हि अर्च

अनुवाद मनुष्य जिस सखास्वरूप (अग्नि) को प्रशस्तियो द्वारा आगे स्थापित करते है (हे यजमानो !) उस द्युतिमान दिव्य अग्नि को उत्तम अन्न प्रदान करो।

स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः। वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति॥२॥

अन्वय- य हव्यम् (देवान्) आनुषक्, बाह्वो. दक्षस्य द्युभि· स· हि (अग्नि) जानाना होता (अस्ति) भग· (च) न (मनुष्येभ्य) वार (धनम्) वि ऋण्वति।

अनुवाद (जो) हव्य को (देवताओ के लिये) ले जाता है, बाहुबल के तेज से युक्त वही (अग्नि) लोगो का होता है (और) सूय की भाँति (मनुष्यो को) वरणीय (धन) विशेष रूप से प्रदान करता है।

अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः।

विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः॥३॥

अन्वय- विश्वा (ऋत्विज) यस्मिन् तुविष्वणि अर्ये (अग्नौ) शुष्म सम् अदधु· (वयम्) अस्य मघोन वृद्धशोचिष (अग्ने) सख्ये स्तोमे (च) स्याम।

अनुवाद- समस्त (ऋत्विग्गण) जिस बहुशब्द विशिष्ट स्वामी (अग्नि) मे बल का भलीभाँति आधान करते है (हम) इस धनवान, प्रवृद्ध तेजवाले (अग्नि) के मित्र (एव) स्तुति बोलने वाले हो जाये।

अधा ह्यग्न एषा सुवीर्यस्य महना। तमिद्यह्व न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः॥४॥

अन्वय- अग्ने । अद्य हि एषा (यजमानाना) सुवीर्यस्य महना (भव)। रोदसी यह्व न श्रव तम् इत् (अग्नि) परिबभूवतु·।

अनुवाद- हे अग्ने । अब हम (यजमानो) को उत्तम बल का दान देने वाले (होओ)। द्यावापृथिवी सूर्य की भाँति पूज्य उसी (अग्नि) को परिगृहीत करते है।

नू न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर।

ये वय ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे॥५॥

अन्वय- अग्ने । नु न· (यज्ञम्) एहि। गृणान· (न·) वार्य (धनम्) आ भर। ये (यजमाना) ये च वय सूरय· (ते हव्या) सचा स्वस्ति धामहे न· (त्वम्) पृत्सु वृधे एधि।

अनुवाद- हे अग्ने ! शीघ्र ही हमारे (यज्ञ मे) आओ। स्तुति करते हुये (हमे) वरणीय (धन) प्रदान करो। जो (यजमान) आर जो हम स्तोता (तुम्हारी) (हवि के) साथ स्तुति करते है। (उन) हमारे लिये (तुम) सङ्ग्राम मे वृद्धि के लिये होओ।

सूक्त - (१७)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- पुरुरात्रेय, ***छन्द***- अनुष्टुप्, ५ पङ्ति।

आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये। अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे॥१॥

अन्वय- देवः । मर्त्यः इत्था तव्यासम् (अग्निम्) यज्ञै· ऊतये आ (ह्वयति)। मनुष्यः पुरु कृते स्वध्वरे अवसे अग्निम् ईळीत।

अनुवाद- हे देव । मनुष्य इस प्रकार तेजोयुक्त अग्नि को स्तोत्रो द्वारा रक्षा के लिये आहूत (करते है)। मनुष्य प्रारम्भ किये हुये शोभन यज्ञ मे रक्षा के लिए अग्नि की स्तुति करते है।

अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन्मन्यसे।

त नाके चित्रशोचिष मद्र परो मनीषया॥२॥

अन्वय- विधर्मन् । (स्तोत !) स्वयशस्तर (त्वम्) अस्य नाक चित्रशोचिष मन्द्र पर तम् (अग्निम्) मनीषया आसा मन्यसे।

अनुवाद- हे विधर्मन् ! (स्तोताओ !) श्रेष्ठ यश वाले (तुम) इस दुःखरहित, अद्भुत तेजवाले, स्तवनीय, श्रेष्ठ उस (अग्नि) की प्रबुद्धि युक्त वाणी से स्तुति करते हो।

अस्य वासा उ अर्चिषा च आयुक्त तुजा गिरा।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचत्यर्चयः॥३॥

अन्वय- य (अग्नि) तुजा गिरा (च) अयुक्त (अस्ति)। दिवः न (द्योतमानः) यस्य रेतसा (कृत्स्न जगत् व्याप्त) (यस्य) बृहत् अर्चयः शोचन्ति अस्य वै (अग्नेः) अर्चिषा असौ (आदित्यः) (अर्चिष्मान भवति)।

अनुवाद - जो (अग्नि) बल और स्तुति से युक्त (है)। आदित्य की भाँति (द्योतमान) जिसकी प्रभा से (सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है) (जिसकी) बृहती दीप्ति प्रकाशित होती है। इसी (अग्नि) की प्रभा से यह (आदित्य) (प्रभावान होता है)।

अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ।
अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते॥४॥

अन्वय- विचेतसः (ऋत्विजः) दस्मस्य अस्य (अग्ने.) (यज्ञ) क्रत्वा वसु रथे (च) आ (भरन्ति)। हव्या अग्नि अधा विश्वासु विक्षु प्रशस्यते।

अनुवाद- सुमतियुक्त (ऋत्विक्गण) दर्शनीय इस (अग्नि) का (यज्ञ) कर्म, धन (और) रथ (प्राप्त करते है।) आह्वनीय अग्नि उत्पन्न होते ही समस्त प्रजाओ द्वारा स्तुत होता है।

नू न इद्धि वार्यमासा सचंत सूरयः
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे॥५॥

अन्वय- (अग्ने !) नु नः (तत्) वर्यम् (धनम्) इद्धि (य) सूरयः आसा सचन्त। ऊर्जः नपात् । (अग्ने !) (नः) पाहि। (वयम्) अभिष्टये स्वस्तये (च) (त्वा धनम्) शग्धि। उत पृत्सु नः वृधे एधि।

अनुवाद- (हे अग्ने !) शीघ्र ही हमे (वह) वरणीय (धन) प्रदान करो (जिसे) स्तोताओ ने स्तोत्र द्वारा प्राप्त किया था। हे बलपुत्र! (अग्ने !) (हमारी) रक्षा करो।(हम) अभीष्ट के लिये (और) कल्याण के लिये (तुमसे धन की) याचना करते है। सङ्ग्राम मे हमारी समृद्धि के लिये होओ।

सूक्त (१८)

देवता- अग्नि, **ऋषि**- द्वितात्रेय, **छन्द**- अनुष्टुप्, ५ पङ्ति।

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति॥१॥

अन्वय- पुरुप्रिय अतिथि (न पूज्य) अग्नि प्रात विशः स्तवेत। य अमर्त्य· (अस्ति) (स अग्नि·) मर्त्येषु विश्वानि हव्या रण्यति।

अनुवाद- बहुप्रिय अतिथि (के समान पूज्य) अग्नि प्रात लोगो द्वारा स्तुत होता है। जो अमत्यर्य (है) (वह अग्नि) यजमानो मे समस्त हव्य की कामना करता है।

द्वितायं मृक्तावहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना। इंदु स धत्त आनुषक्स्तोता चित्ते अमर्त्य॥२॥

अन्वय- अग्ने ! मृक्तवाहसे द्विताय (त्वम्) स्वस्य दक्षस्य महना (भव)। अमर्त्य· ! (अग्ने !) (हि) स· आनुषक् ते इन्दु धत्ते। (स च) (ते) स्तोता चित् अस्ति।

अनुवाद- हे अग्ने ! विशुद्ध यज्ञ करने वाले द्वित को (तुम) अपने बल को देने वाले (होओ)। हे अमर्त्य ! (अग्ने !) (क्योकि) वह तुम्हे सर्वदा तुम्हे सोम प्रदान करता है। (और वह) (तुम्हारी) स्तुति भी करने वाला है।

त वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम्। अरिष्टो येषा रथो व्यश्वदावन्नीयते॥३॥

अन्वय- अश्वदावन् ! (अग्ने !) दीर्घायुशोचिष ते (त्वाम्) मघोना (यजमानानाम्) व· गिरा हुवे (येन) येषा (यजमानाना) रथ (युद्धे) अरिष्ट वि ईर्यते।

अनुवाद- हे अश्वदाता ! (अग्ने !) दीर्घकालिक दीप्ति वाले उस (तुम्हारा) धनी (यजमानो) के लिये हम स्तोत्र द्वारा आह्वान करते है। जिससे उन (यजमानो) का रथ (युद्ध मे) अहिंसित होकर गमन करे।

चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पाति ये।
स्तीर्ण बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि॥४॥

अन्वय- येषु चित्रा दीधिति· (भवति) ये वा आसन् उक्था पान्ति (तै· ऋत्विजैः) (यज्ञे) स्तीर्ण बर्हि परि श्रवासि दधिरे।

अनुवाद- जिनके द्वारा नानावधि यज्ञक्रिया (सम्पन्न होती है) और जो उच्चारण द्वारा स्तोत्रो की रक्षा करते है। (उन ऋत्विको द्वारा) स्वर्गप्रापक (यज्ञ) मे विस्तीर्ण कुश के ऊपर अन्न स्थापित किया जाता है।

ये मे पचाशतं ददुरश्वाना सधस्तुति।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोना नृवदमृत नृणाम्॥५॥

अन्वय- अमृत ! अग्ने ! (तव) सुधस्तुतिः (अनन्तरम्) य (यजमानाः) मे पञ्चाशतम् अश्वाना ददु (तेषा) मघोना नृणा (त्वम्) द्युमत् नृवत् महि बृहत् श्रवः कृधि।

अनुवाद- हे अमर ! अग्ने ! (तुम्हारी) सुस्तुति (के पश्चात्) जो (यजमान) मुझे पाँच सौ अश्व प्रदान करे (उन) दानी मनुष्यो को (तुम) दीप्तवान परिचारक युक्त अत्यन्त विशाल अन्न वाला बना दो।

सूक्त - (१६)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- वव्रिरात्रेय, ***छन्द***- गायत्री, ३, ४, अनुष्टुप्, ५ विराड्रूपा।

अभ्यवस्थाः प्र जायते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत। उपस्थे मातुर्वि चष्टे॥१॥

अन्वय- (य. अग्नि·) मातु· (पृथिव्या) उपस्थे (सर्वान्) विचष्टे। वव्रिः स· (अग्नि) वव्रे अभि अवस्था· प्रजायन्ते प्रचिकेत (च) (ज्ञात्वा च ताम् अपनयतु)।

अनुवाद- (जो अग्नि) माता (पृथिवी) के समीपस्थ (सबको) भलीभाँति देखता है। हव्यवाहक वह (अग्नि) वव्रि की अशोभन अवस्था को जाने (और) भलीभाँति समझे (और जानकर उसका निवारण करे)।

जुहुरे वि चितयंतोऽनिमिष नृम्णं पांति। आ दृळ्हा पुरं विविशुः॥२॥

अन्वय- (अग्ने !) (त्वाम्) विचिन्तन्तः (येजना·) अनिमिष जुहुरे (त्वाम् आह्वन्ति) तव (च) नृम्ण पान्ति (ते) दृळहाम् (अशक्यम्) पुरम् आ विविशुः।

अनुवाद- (हे अग्ने!) (तुमको) भलीभाँति जानते हुये (जो लोग) सर्वदा यज्ञ के लिये (तुम्हारा आह्वान करते हैं)। (और) तुम्हारे बल की रक्षा करते है (वे) शत्रुओ के द्वारा (अगम्य) पुरी मे प्रवेश करते हैं।

आश्वैत्रेयस्य जंतवो द्युमद्वर्धत कृष्टयः।

निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः॥३॥

अन्वय- निष्कग्रीवः बृहदुक्थः वाजयुः कृष्टय. जन्तवः मध्वा न एना (स्तुत्या) श्वैत्रेयस्य (अग्नेः) द्युमत् आ वर्धन्त।

अनुवाद- स्वर्णयुक्त ग्रीवावाले, महान स्तोता, अन्नाभिलाषी उत्पन्न होने वाले मनुष्य मधु की भाँति इस (स्तुति) द्वारा अन्तरिक्षवर्ती (अग्नि) के बल को बढाते है।

प्रियं दुग्ध न काम्यमजामिजाम्योः सचा। घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः॥४॥

अन्वय- धर्म न वाजजठर. अदब्ध· शश्वतः दभ. जाम्यो· सचा (अग्नि·) दुग्ध न काम्य प्रियम् अजामि (अस्मदीय स्तोत्र शृणोतु)।

अनुवाद- हव्य की भाँति अन्नयुक्त जठर वाला, अहिंसित निरन्तर शत्रुहिसक, द्यावापृथिवी का सहायक (अग्नि) दुग्ध की भाँति कमनीय. प्रिय दोषरहित (हमारे स्तोतृ को सुने)।

क्रीळन्नो रश्म आ भुवः स भस्मना वायुना वेविदानः।
ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः॥५॥

अन्वय- रश्मे ! (अग्ने !) (वनेषु) क्रीडन् वायुना (प्रेरकेण) (स्व-) भस्मना सवेविदान· (त्वम्) न आ भुव। (तव) वक्षणेस्था सुशंसिता धृषजः ताः वक्ष्यः मम यजमानस्य तिग्माः न सन्।

अनुवाद हे प्रदीप्त (अग्ने !) (वनो मे) क्रीडा करते हुये वायु द्वारा (उडायी गयी) (अपनी) भस्म से भलीभाँति जाने जाते हुये (तुम) हमारे अभिमुख होओ। (तुम्हारी) शिरा मे स्थित सुतीक्ष्ण शत्रुनाशक वे ज्वालाये इस (मुझ यजमान) के लिये तीक्ष्ण न हो।

सूक्त - (२०)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- प्रयस्वतात्रेय, ***छन्द***- अनुष्टुप्, ४ पङ्क्ति।

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन्मन्यसे रयिम्। तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम्॥१॥

अन्वय- वाजसातम ! अग्ने ! (अस्माभिर्दीयमानम्) य (हविर्लक्षणम्) रयि त्व चित् मन्यसे। नः गीभि· श्रावाय्य (च) यजु न (हविर्लक्षण धन) (त्व) देवत्रा पनय।

अनुवाद- हे सर्वाधिक अन्नप्रद ! अग्ने ! (हम लोगो द्वारा प्रदत्त) जिस (हविर्लक्षण) धन को तुम स्वीकार करते हो हमारी स्तुतियो (एवम्) प्रशस्ति के साथ उस (हविर्लक्षण धन) को (तुम) देवो के निकट ले जाओ॥

ये अग्ने नेरयंति ते वृद्ध उग्रस्य शवसः। अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिरे॥२॥

अन्वय- अग्ने ! वृद्धा (अपि) ये ते (हवीषि) न ईरयन्ति (त) उग्रस्य शवस· अप (नीताः) अन्य (अवैदिकस्य) व्रतस्य (पालका) द्वेष ह्वर (च) अप सश्चिरे।

अनुवाद- हे अग्ने । समृद्ध होने पर (भी) जो तुम्हारे लिये (हवि) नही लाते (वे) तीव्र बल से रहित (होते हैं) अन्य (अवैदिक) व्रत के (पालक) द्वेष (और) हिसा से युक्त स्वय को पाते है।

होतार त्वा वृणीमहेऽग्ने दक्षस्य साधनम्। यज्ञेषु पूर्व्य गिरा प्रयस्वतो हवामहे॥३॥

अन्वय- अग्ने । दक्षस्य साधन होतार त्वा प्रयस्वन्तः (वयम्) वृणीमहे। पूर्व्य (त्वाम्) (वयम्) यज्ञेषु गिरा हवामहे।

अनुवाद- हे अग्ने । बल के साधयिता होता तुम्हारा अन्नवान (हम) वरण करते है। श्रेष्ठ (तुम्हारी) (हम) यज्ञ मे स्तुति करते है।

इत्था यथा त ऊतये सहसावन्दिवेदिवे।

राय ऋताय सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः॥४॥

अन्वय- सहसावन् ! अग्ने । यथा दिवे दिवे ते ऊतये (वयम्) स्याम (इत्था कुरु) सुक्रतो ! अग्ने ! (येन) वय राये ऋताय च स्याम (तथा कुरु) (येन) गोभिः वीरैः (वयम्) सधमादः स्याम (तथ कुरु)।

अनुवाद- हे बलवान । अग्ने ! जिससे प्रतिदिन तुम्हारा रक्षण हम प्राप्त करे (वैसा करो) हे सुक्रतु ! अग्ने । (जिससे) हम धन और यज्ञ को प्राप्त करे (वैसा करो) (जिससे) गायो पुत्रो द्वारा (हम) आनन्दित हो (वैसा करो)।

सूक्त - (२१)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- ससात्रेय, ***छन्द***- अनुष्टुप्, ४ पङ्ति।

मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत्समिधीमहि। अग्ने मनुष्वदंगिरो देवान्देवयते यज॥१॥

अन्वय- (अग्ने !) (वयम्) मनुष्वत् त्वा निधीमहि मनुष्वत् त्वा समिधीमहि। अङ्गिरः ! अग्ने । देवयते (यजमानाय) (त्व) मनुष्वत् देवान् यज।

अनुवाद- (हे अग्ने !) (हम) मनु की भाँति तुम्हे स्थापित करते है। मनु की भाँति तुम्हे प्रदीप्त करते है। हे अङ्गिरा । अग्ने । देवकामी (यजमान) के लिये (तुम) मनुष्यरूप देवताओ का यजन करो।

त्व हि मानुषे जनेऽग्ने सुप्रीत इध्यसे। स्रुचस्त्वा यंत्यानुषक्सुजात सर्पिरासुते॥२॥

अन्वय- अग्ने । (स्तोत्रैः) सुप्रीतः त्व मानुषे जने इध्यसे। सुजातः! अग्ने ! सर्पिरासुते स्रुचः त्वा आनुषक् यन्ति।

अनुवाद- हे अग्ने ! (स्तोत्रो द्वारा) प्रशंसित तुम मानव लोगो के लिये प्रदीप्त होते हो। हे सुजन्मा अग्ने । घृतयुक्त चम्मच तुम्हे निरतर प्राप्त करते है।

त्वा विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत। सपर्यतस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते॥३॥

अन्वय- (अग्ने !) सजोषसः विश्वे देवासः त्वा दूतम् अक्रम। कवे । (अग्ने !) देव त्वा सर्पयन्तः यजमाना (देवानामाह्वातु त्वाम्) यज्ञेषु ईडते।

अनुवाद- हे अग्ने ! प्रीतियुक्त समस्त देवताओ ने तुम्हे दूत बनाया। हे कान्तप्रज्ञ ! (अग्ने !) दिव्य तुम्हारी सेवा करते हुये यजमान (देवाह्वान के लिये तुम्हारी) यज्ञ मे स्तुति करते है।

देव वो देवयज्ययाग्निमीळीत मर्त्यः

समिद्धः शुक्र दीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः॥४॥

अन्वय- देवयज्यया व मर्त्य· देवम् अग्निम् ईळीत्। शुक्र ! (अग्ने !) समिद्ध· त्व (अस्माभि) दीदिहि। ऋतस्य योनिम् आ असद , ससस्य योनिम् आ ससद·।

अनुवाद- देवयजन के लिये हम मनुष्य देव अग्नि की स्तुति करते है। हे तेजस्वी ! (अग्ने !) समिद्ध तुम (हमारे द्वारा) प्रदीप्त होओ। स्वर्ग की साधनभूत वेदी पर आकर बैठो। सस की वेदी पर आकर बैठो।

सूक्त - (२२)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- विश्वसामात्रेय, ***छन्द***- अनुष्टुप्, ४ पङ्ति।

प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे। यो अध्वरेष्वीड्यो होता मंद्रतमो विशि॥१॥

अन्वय- विश्वसामन् ! (ऋषे !) अत्रिवत् पावकशोचिषे (अग्नये) प्र अर्च। य अध्वरेषु ईड्य होता, विशि मन्द्रतम (अस्ति)।

अनुवाद- हे विश्वसामन् ! (ऋषे) अत्रि की भाँति पवित्र दीप्ति वाले (अग्नि) की अर्चना करो जो यज्ञ मे स्तुत्य, होता, प्रजाओ मे सर्वाधिक स्तुत (होता है)।

न्य१ग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम्। प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः॥२॥

अन्वय- (यजमानाः !) (यूय) जातवेदस देवम्, ऋत्विजम् अग्नि नि दधात। अद्य देवव्यचस्तम यज्ञ (अग्निः) (न दीयमान हवि) (देवान्) आनुषक् प्रएतु।

अनुवाद- (हे यजमानो !) तुम जातवेदस, दिव्य, ऋत्विज अग्नि को सुस्थापित करो। आज देवताओ का अतिप्रिय यजनीय (अग्नि) (हमारे द्वारा प्रदत्त हवि को) (देवताओ) के समक्ष निरन्त ले जाये।

चिकित्विन्मनस त्वा देव मर्तास ऊतये। वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि॥३॥

अन्वय चिकित्वमनस ! (अग्ने !) (वय) मर्तासः देव त्वा ऊतये (हुवे)। इयनासः (वय) वरेण्यस्य ते अवसः अमन्महि।

अनुवाद- हे ज्ञानमनस् ! (अग्ने !) (हम) मनुष्य दिव्य तुम्हे रक्षा के लिये (बुलाते है)। समीप आते हुये (हम) वरणीय तुम्हारी रक्षा के लिये स्तुति करते है।

अग्ने चिकिद्धयस्य न इद वचः सहस्य।

त त्वा सुशिप्र दंपते स्तोमैर्वधत्यत्रयो गीर्भिः शुंभत्यत्रय.॥४॥

अन्वय- सहस्य ! अग्ने ! न· अस्य (स्तोत्रस्य) इद वच· चिकिद्धि। सुशिप्र ! दम्पते ! (अग्ने !) त त्वाम् अत्रय (स्त्रोमै) वर्धन्ति अत्रय च गीभि (त्वाम्) शुम्भन्ति।

अनुवाद- हे बलपुत्र ! अग्ने ! हमारे इस (स्तोत्र) की वाणी को जानो। हे सुन्दर कपोल वाले ! गृहपते ! (अग्ने !) उस तुम्हे अत्रिपुत्र (स्तोत्रो द्वारा) बढाते है और अत्रिपुत्र स्तुति द्वारा (तुम्हे) अलङ्कृत करते है।

सूक्त - (२३)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- द्युम्नात्रेय, ***छन्द***- अनुष्टुप्, ४ पङ्ति।

अग्ने सहंतमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम्। विश्वा यश्चर्षणीरभ्या३सा वाजेषु सासहत्॥१॥

अन्वय- अग्ने ! (मह्य) द्युम्नस्य प्रासहा (शत्रून्) सहन्त (पुत्र न) रयिम् आ भर यः आसा वाजेषु विश्वा· चर्षणी· अभि ससहत्।

अनुवाद- हे अग्ने ! (मुझ) द्युम्न को प्रकृष्ट बल से (शत्रुओ को) पराभूत करने वाला (पुत्ररूप) धन दो। जो स्तोत्रो द्वारा युद्धो मे समस्त शत्रुओ को अभीभूत करे।

तमग्ने पृतनाषहं रयि सहस्व आ भर। त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमत·॥२॥

अन्वय- सहस्वः ! अग्ने ! त्व हि सत्यः अद्भुत गोमत· (च) वाजस्य दाता असि। (मह्य) (त्वम्) (शत्रूणा) पृतनासह त (पुत्र न) रयिम् आ भर।

अनुवाद- हे बलवान ! अग्ने ! तुम सत्यरूप, अद्भुत (और) गोयुक्त धन के दाता हो। (मुझे) (तुम) (शत्रुओ की) सेनाओ को परास्त करने मे समर्थ (पुत्ररूप) धन प्रदान करो।

विश्वेहित्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः। होतारं सद्यसु प्रिय व्यति वार्या पुरु॥३॥

अन्वय- (अग्ने !) होतार प्रिय (च) त्वा सजोषस वृक्तबर्हिषः विश्वे जनासः सद्यसु पुरु वार्या (धनानि) व्यन्ति।

अनुवाद- हे अग्ने ! होता (और) प्रिय तुमसे समान प्रीतिवाले कुशच्छेदक समस्त ऋत्विक यज्ञगृह मे बहुविध वरणीय (धन) की याचना करते है।

स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे।

अग्न एषु क्षयेष्वा देवत्रः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि॥४॥

अन्वय- (अग्ने !) सः हि विश्वचर्षणि (ऋषिः) अभिभाति सह· दधे। शुक्र । अग्ने । न एषु क्षयेषु रेवत् आ दीदिहि। पावक । (अग्ने ।) (त्वम्) द्युमत् दीदिहि।

अनुवाद- (हे अग्ने !) वह सबको देखने वाला (ऋषि) शत्रुओ के हिसक बल को धारण करे। हे दीप्त ! अग्ने । हमारे इस घर मे धनयुक्त प्रकाश दो। हे पापशोधक ! (अग्ने !) (तुम) प्रकाशित होते हुये प्रदीप्त होओ।

सूक्त - (२४)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- गौपायन लौपायन वा बन्धु· सुबन्धु· श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च, **छन्द**- द्विपदा विराट्।

अग्ने त्वं नो अतम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयि दाः॥१॥२॥

अन्वय- अग्ने ! त्व त्राता, शिव·, वरुथ्यः न. अन्तमः उत भव।

अनुवाद- हे अग्ने । तुम रक्षक, कल्याणकारी, वरणीय और हमारे निकटतम होओ।

अन्वय- वसु वसुश्रवा (च) अग्नि (न.) अच्छ नक्षि। (सः) (न·) द्युमन्तम रयि दा ।

अनुवाद- निवासप्रद (और) प्रभूतअन्नवान अग्नि हमारी ओर व्याप्त हो। (वह) (हमे) दीप्ततम धन दे।

स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात्।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः॥३॥४॥

अन्वय- अग्ने ! सः (त्वम्) नः बोधि (नः) हव श्रुधि। अघायतः समस्मात् नः उरुष्य।

अनुवाद- (हे अग्ने !) वह (तुम) हमे जानो (हमारे) आह्वान को सुनो। पापेच्छुक समस्त लोगो से हमारी रक्षा करो।

अन्वय- शोचिष्ठ ! दीदिवः । (अग्ने !) (वय) सुम्नाय सखिभ्यः च नून त त्वा ईमहे।

अनुवाद- हे शोधकतम ! प्रदीप्त (अग्ने !) (हम) सुख एव मित्रता के लिये उस तुमसे याचना करते है।

सूक्त - (२५)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- वसुयवात्रेय, **छन्द**- अनुष्टुप्।

अच्छा वो अग्निमवसे देव गासि स नो वसुः।
रासत्पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विषः॥१॥

अन्वय- (वसुयव· !) वः अवसे देवम् अग्निम् अच्छ गासि। वसुः ऋषूणां पुत्र· ऋतावा सः (अग्नि.) नः (कामनाम्) रासत् द्विष च (अस्मान्) पर्षति।

अनुवाद- (हे वसुयवो !) तुम लोग रक्षा के लिये देव अग्नि का भलीभाँति स्तवन करो। निवासप्रद ऋषियो का पुत्र सत्यवान वह (अग्नि) हमारी (कामनाओ) को पूर्ण करे और शत्रुओ से (हमारी) रक्षा करे।

स हि सत्यो यं पूर्वे चिद्देवासश्चिद्यमीधिरे। होतार मद्रजिह्वमित्सुदीतिभिर्विभावसुम्॥२॥

अन्वय- होतार मन्द्रजिहव सुदीतिभिः विभावसु यम् अग्नि पूर्वे (ऋषयः) य (च) देवास· ईधिरे स हि सत्य (अस्ति)।

अनुवाद- होता, मादक जिह्वा वाले, सुदीप्ति से प्रभायुक्त जिस अग्नि को पूर्ववर्ती (ऋषि) (और) जिसको देवता प्रदीप्त करते है वही सत्य है।

स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या। अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य॥३॥

अन्वय- वरेण्य ! अग्ने ! सः (त्वम्) नः वरिष्ठया श्रेष्ठया धीती सुमत्या सुवृक्तिभि· च (प्रीतः सन्) नः रायः दिदीह।

अनुवाद- हे वरणीय ! अग्ने ! वह (तुम) हमारी स्वीकारयोग्य श्रेष्ठ परिचर्या से, सुमति से और सुस्तुतियो से (प्रसन्न होकर) हमे धन प्रदान करो।

अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन। अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्नि धीभिः सपर्यत॥४॥

अन्वय- यः अग्नि. देवेषु राजति (यः) अग्निः मर्तेषु (मध्ये) अविशन् (यः) अग्निः नः हव्यवाहनः (अस्ति) (यजमाना ! यूय) (त) अग्नि धीभि· सर्पयत।

अनुवाद- जो अग्नि देवताओ मे प्रकाशित होता है (जो) अग्नि मनुष्यो के (मध्य) प्रविष्ट होता है (जो) अग्नि हमारा हव्यवाहन (हैं) (हे यजमानो ! तुम) (उस) अग्नि की स्तुतियो द्वारा परिचर्या करो।

अग्निस्तुविश्रवस्तम तुविब्रह्माणमुत्तमम्। अतूर्तं श्रावयत्पति पुत्रं ददाति दाशुषे॥५॥

अन्वय- दाशुषे (यजमानाय) अग्निः तुविश्रवस्तम तुविब्रह्मणम् उत्तमम् (शत्रुभ्यः) अतूर्त श्रवयत्पति पुत्र ददाति।

अनुवाद- दाता (यजमान) को अग्नि बहुविधअन्नयुक्त, बहुत स्तोत्र वाला उत्तम (शत्रुओ द्वारा) अहिसित पितरो के यश को फैलाने वाला पुत्र देता है।

अग्निर्ददाति सत्पति सासाह यो युधा नृभिः। अग्निरत्यं रघुष्यद जेतारमपराजितम्॥६॥

अन्वय- अग्निः (न·) सत्पति (पुत्र) दादाति यः युधा नृभिः ससाह। अग्नि· (नः) रघुस्यदम्, जेतारम् अपराजितम् अत्यम् (अपि ददाति)।

अनुवाद- अग्नि (हमे) सत्य का पालन करने वाला (पुत्र) देता है। जो युद्ध मे शत्रुओ को पराभूत करता है। अग्नि (हमे) तीव्र वेगवाला, जयनीय अपराजित अश्व (भी प्रदान करता है)।

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो। महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते॥७॥

अन्वय- यत् वाहिष्ठ (स्तोत्रम् अस्ति) तत् अग्नये (अस्ति) विभावसो ! (अग्ने!) अस्मभ्य बृहत् (धनम्) अर्च। महिषी इव त्वत् रयि. (ईरते) त्वत् वाज· उत् ईरते।

अनुवाद- जो श्रेष्ठतम (स्तोत्र है) वह अग्नि के लिये (हैं) हे विभावसु ! (अग्ने !) (हमे) बहुत (धन) प्रदान करो। महिषी की भाँति तुमसे धन (उत्पन्न होता है) तुमसे अन्न भी उत्पन्न होता है।

तव द्युमतो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत्।

उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः॥८॥

अन्वय- अग्ने ! तव अर्चय· द्युमन्तः (सन्ति) ग्रावा इव बृहत् उच्यते। दिव ते स्वानः तन्यतु· यथा त्मना अर्त·

अनुवाद- हे अग्ने! तुम्हारी शिखाये दीप्तिमती (है) प्रस्तर की भाँति विशाल कही जाती है। दिव्य तुम्हारा शब्द मेघगर्जन की भाँति स्वय व्याप्त होता है।

एवाँ अग्नि वसूयवं. सहसान ववदिम। स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः॥६॥

अन्वय- (वय) वसुयवः एव सहसानम् अग्नि ववन्दिम। सुक्रतु· सः (अग्निः) नावा इव न· विश्वा द्विष अति पर्षत्।

अनुवाद- (हम) वसुयुगण इस प्रकार से बलवान अग्नि का स्तवन करते है। सुकर्मा वह (अग्नि) नौका की भाँति हमे समस्त शत्रुओ से पार ले जाये।

सूक्त - (२६)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- वसुयवात्रेय, ***छन्द***- गायत्री।

अग्ने पावक रोचिषा मद्रया देव जिह्वया। आ देवान्वक्षि यक्षि च॥१॥

अन्वय- पावक ! अग्ने ! (त्व) (स्व) रोचिषा देव मन्द्रया (च) जिह्वया देवान् (यज्ञे) आ वक्ष यक्षि च।

अनुवाद- हे शोधक ! अग्ने ! (तुम) (अपनी) दीप्ति से (और) देवों की मधुरवाणी से देवताओ को (यज्ञ मे) ले आओ और यजन करो।

त त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम्। देवाँ आ वीतये वह॥२॥

अन्वय- घृतस्नो ! चित्रभानो ! (अग्ने !) त स्वः दृश त्वाम् (वयम्) ईमहे। (हविम्) वीतये देवान् आ वह।

अनुवाद- हे घृतोत्पन्न ! बहुविधरश्मिवाले ! (अग्ने !) उस सर्वद्रष्टा तुमसे (हम) याचना करते है। (हव्य) भक्षण के लिये देवताओ को लाओ।

वीतिहोत्र त्वा कवे द्युमत समिधीमहि। अग्ने बृहंतमध्वरे॥३॥

अन्वय - कवे ! अग्ने! वीतिहोत्र, द्युमन्त (च) त्वा (वयम्) अध्वरे समिधीमहि।

अनुवाद - हे कान्तप्रज्ञ! अग्ने! हव्यभक्षक, दीप्तिवान (और) महान तुम्हे (हम) यज्ञ मे प्रदीप्त करते है।

अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये। होतारं त्वा वृणीमहे॥४॥

अन्वय- अग्ने ! विश्वेभि देवेभिः (सह) हव्यदातये (यजमानस्य यज्ञे) आ गहि। (वयम्) होतार त्वा वृणीमहे।

अनुवाद- हे अग्ने ! समस्त देवताओ के (साथ) हविप्रदाता (यजमान के यज्ञ) मे आओ। (हम) होता तुमसे प्रार्थना करते है।

यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्य वह। देवैरा सत्सि बर्हिषि॥५॥

अन्वय- अग्ने ! सुन्वते यजमानाय (त्वम्) सुवीर्यम् आ वह। देवैः (च) (सह) बर्हिषि आ सत्सि।

अनुवाद- हे अग्ने ! अभिषव करने वाले यजमान को (तुम) शोभन बल प्रदान करो (और) देवताओ के साथ कुश पर बैठो।

समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि। देवानां दूत उक्थ्यः॥६॥

अन्वय- सहस्रजित् ! अग्ने ! (त्वम्) समिधानः उक्थ्यः देवाना (च) दूतः (सन्) (न· यगादि) धर्माणि पुष्यसि।

अनुवाद- हे सहस्रजेता ! अग्ने ! (तुम) प्रदीप्त, प्रशसनीय (एवम्) देवताओ के दूत (होकर) (हमारी यज्ञादि) क्रिया का पोषण करते हो।

न्यग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम्। दधाता देवमृत्विजम्॥७॥

अन्वय- (यजमाना !) (यूय) जातवेदस, होत्र वाहन, यविष्ठय, देवम् ऋत्विजम् अग्नि नि दधात।

अनुवाद- (हे यजमानो !) (तुम), जातवेदस, यज्ञप्रापक, युवतम, दिव्य, ऋत्विक् अग्नि को सस्थापित करो।

प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः। स्तृणीत बर्हिरासदे॥८॥

अन्वय- देवव्यचस्तमः यज्ञः अद्य (देवान्) आनुषक् प्र एतु। (ऋत्विजः !) (अग्नेः) आसदे बर्हिः स्तृणीत।

अनुवाद- दिव्य स्तोताओ द्वारा हवि आज (देवताओ के पास) निरन्तर पहुचे। (हे ऋत्विजो !) (अग्नि के) बैठने के लिये कुश बिछाओ।

एद मरुतो अश्विना मित्र· सीदंतु वरुणः। देवासः सर्वया विशा॥९॥

अन्वय- मरुत·, अश्विना, मित्र·, वरुण· (इति) देवास· सर्वया विशा (सह) इद (बर्हिः) आ सदन्तु।

अनुवाद- मरुत, अश्विनौ, मित्र, वरुण (आदि) देवता समस्त प्रजाओ के (साथ) इस (कुश) पर आकर बैठे।

सूक्त - (२७)

देवता- अग्नि, ६ इन्द्राग्नी, ***ऋषि***- त्र्यरुण, त्रिसदस्यु भरत आदि राजा, **छन्द**- त्रिष्टुप्, ४, ५, अनुष्टुप्।

अनस्वता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत॥१॥

अन्वय- वैश्वानर ! अग्ने ! (त्वम्) सत्पतिः, चेतिष्ठः, असुर. मघे न. (असि), त्रैवृष्ण त्र्यरुण. मे अनस्वन्ता गावा, (च) दशभि सहस्त्रैः (हिरण्य)ममहे चिकेत।

अनुवाद- हे वैश्वानर ! अग्ने ! (तुम) सत्पति, सर्वाधिक ज्ञानवान, बलशाली, धनवान (हो)। त्रिवृष्णु के पुत्र त्र्यरुण ने मुझे शकटयुक्त दो वृषभ (और) दस सहस्र (सुवर्ण) प्रदान कर ख्याति प्राप्ति की।

यो मे शता च विंशति च गोना हरी च युक्ता सुधुरा ददाति।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म॥२॥

अन्वय- य (त्र्यरुण) मे शता (हिरण्य) विंशति च गोना (रथेन) युक्ता सुधुरा च हरी ददाति। वैश्वानर ! अग्ने ! (अस्माभि) सुस्तुतः ववृधानः (त्व) (तस्मै) त्र्यरुणाय शर्म यच्छ।

अनुवाद- जिस (त्र्यरुण) ने मुझे सौ (सुवर्ण) और बीस गाये और (रथ) से युक्त भारवहन करने वाले दो अश्व प्रदान किया था। हे वैश्वानर ! अग्ने ! (हमारे द्वारा) भलीभाँति स्तुत, प्रवृद्ध होते हुये (तुम) (उस) त्र्यरुण को सुख प्रदान करो।

एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः।
यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति॥३॥

अन्वय- यः त्र्यरुणः तुविजातस्य मे पूर्वीः गिरः अभियुक्तेन (चेतसा) गृणाति। अग्ने ! नविष्ठाय त्रसदस्यु एव नवम सुमति चकान।

अनुवाद- जो त्र्यरुण बहुसन्तति वाले मेरी अनेक स्तुतियाँ एकाग्रता से ग्रहण करता है। हे अग्ने। अत्यन्त स्तुत्य तुम्हारे लिये त्रिसदस्यु ने भी नूतन स्तुति को बनाया है।

यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये। दददृचा सनि यते ददन्मेधामृतायते॥४॥

अन्वय- (अग्ने !) (त्वाम्) सूरये ऋतायते मे अश्वमेधस्य (धन देहि) य. इति प्रवोचति (तस्मै त्वम्) ऋचा ददत् सनि यते मेधा (च) ददत्।

अनुवाद- (हे अग्ने!) (तुमसे) दानशील यज्ञकामी मुझको अश्वमेध के लिये (धन दो) जो ऐसा बोलता है (उसे तुम) स्तोत्र देते हो, धन प्रदान करते हो (और) बुद्धि देते हो।

यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः। अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः॥५॥

अन्वय- यस्य अश्वमेध दानाः परुषा शतम् उक्षण· मा उदूर्षयन्ति (अग्ने !) त्र्यशिर सोमा इव (ते उक्षण· तव प्रीणनाय भवन्तु)।

अनुवाद- जिसके अश्वमेध मे दिये गये कामनापूरक सौ बैल मुझे प्रसन्न करते है (हे अग्ने !) तीन पदार्थों (दही, सत्तू, दुग्ध) से निर्मित सोम की भाँति (वे बैल तुम्हे प्रसन्न करे)।

इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्यं। क्षत्रं धारयत बृहद्दिवि सूर्यमिवाजरम्॥६॥

अन्वय- इन्द्राग्नी ! (युवाम्) शतदाव्नी (असि)। अश्वमेध (यज्ञे) सुवीर्य बृहत् दिवि सूर्यम् इव अजर क्षत्र धारयतम्।

अनुवाद- हे इन्द्राग्नी ! (तुम दोनो) अपरिमित धन के दाता (हो)। अश्वमेध (यज्ञ) मे श्रेष्ठ बलयुक्त, विशाल अन्तरिक्ष मे सूर्य की भाँति जरारहित धन प्रदान करो।

सूक्त - (२८)

देवता- अग्नि, ***ऋषि***- विश्ववारात्रेयी, ***छन्द***- १, ३, त्रिष्टुप्, २ जगती, ४ अनुष्टुप्, ५ ६ गायत्री।

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची॥१॥

अन्वय- समिद्धः अग्नि· दिवि शोचिः अश्रेत्। उषसम् (च) प्रत्यङ् उर्विया विभाति। नमोभिः देवान् ईळाना हविषा घृताची (च) (आदाय) विश्ववारा (अग्नि) प्राची एति।

अनुवाद- समिद्ध अग्नि द्युलोक मे तेज को फैलाता है (और) उषा के अभिमुख विस्तृत होकर शेभित होता है। नमस्कार द्वारा देवताओ का स्तवन करती हुयी हवि (एव) घृतयुक्त स्रुवा (लेकर) विश्ववारा (अग्नि) के अभिमुख जाती है।

समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृण्वंतं सचसे स्वस्तये।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत्पुरः॥२॥

अन्वय- (अग्ने !) समिध्यमानः (त्वम्) अमृतस्य राजसि। हवि. कृणवन्त (यजमानै) स्वस्तये सचसे। य (समीप त्वम्) इन्वसि स विश्व द्रविण धत्ते। अग्ने । च (यजमान·) अतिथ्य (हव्य) (तव) पुर· इत् नि धत्ते।

अनुवाद- (हे अग्ने !) समृद्ध होते हुये तुम जल पर प्रभुत्व करते हो। जिसके (समीप) (तुम) जाते हो वह समस्त धन को धारण करता है और हे अग्ने ! (यजमान) अतिथि के योग्य (हव्य) (तुम्हारे) समक्ष रखता है।

अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सतु।

स जास्पत्य सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि॥३॥

अन्वय- अग्ने ! (अस्माक) महते सौभगाय (शत्रून्) शर्ध। तव द्युम्नानि उत्तमानि सन्तु। (अग्ने !) जास्पत्य सम् सुयमम् आ कृणुष्व। (न·) शत्रुयता महांसि अभितिष्ठ।

अनुवाद- हे अग्ने ! (हम लोगो के) प्रभूत ऐश्वर्य के लिये (शत्रुओ का) दमन करो। तुम्हारा धन उत्कृष्ट हो। (हे अग्ने !) दाम्पत्य कार्य को अच्छी तरह सुनियमित करो। (हमसे) शत्रुता का भाव रखने वालो के तेज को आक्रान्त करो।

समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वंदे तव श्रियम्। वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे॥४॥

अन्वय- अग्ने ! प्रमहस· (अह) समिद्धस्य तव श्रिय वन्दे। (अग्ने !) (त्वम्) वृषभः, द्युम्नवान्, अध्वरेषु सम इध्यसे असि।

अनुवाद- हे अग्ने ! प्रकृष्ट तेजयुक्त (मैं) समिद्ध तुम्हारी दीप्ति की वन्दना करती हूँ। (हे अग्ने !) (तुम) कामनापूरक, धन्वान यज्ञो मे भलीभाँति प्रदीप्त होने वाले हो।

समिद्धो अग्न आहुत देवान्यक्षि स्वध्वर। त्व हि हव्यवाळसि॥५॥

अन्वय- (यजमानै·) आहुत ! स्वध्वर अग्ने ! समिद्ध· (त्वम्) देवान् यक्षि हि त्व हव्यवाट् असि।

अनुवाद- हे (यजमानो द्वारा) आहूत ! शोभनयज्ञ वाले अग्ने ! भलीभाँति प्रदीप्त तुम देवताओ का यजन करो क्योकि तुम हव्यवहन करने वाले हो।

आ जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे। वृणीध्व हव्यवाहनम्॥६॥

अन्वय- (ऋत्विजः !) (यूयं) (नः) अध्वरे प्रयति हव्यवाहनम् अग्निम् आ जुहोत (त) दुवस्यत वृणीध्वम् च।

अनुवाद- (हे ऋत्विजो !) (तुम) (हमारे) यज्ञ मे प्रवृत्त होकर हव्यवाहन अग्नि मे भलीभाँति हवन करो (उसकी) परिचर्या और वरण करो।

सूक्त - (२६)

देवता- अग्नि, ६ (प्रथमपादस्य) उशना वा, ***ऋषि***- गौरवीति शाक्त्य, ***छन्द***- त्रिष्टुप्।

त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयत।

अर्चति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिद्रासि धीरः॥१॥

अन्वय- देवताता (यज्ञे) मुनषः त्री अर्यमा दिव्या (च) (अन्तरिक्षे) त्री रोचना (मरुत·) धारयन्ति। इन्द्र ! धीरः त्वा पूतदक्षा मरुत अर्चन्ति। त्वम् एषाम् ऋषि असि।

अनुवाद- देवताओ के (यज्ञ मे) मनुष्य सम्बन्धी तीन तेज (और) दिव्य (अन्तरिक्ष) मे तीन तेज को (मरुद्गण) धारण करते है। हे इन्द्र ! बुद्धिमान तुम्हारी पवित्र बल वाले मरुद्गण अर्चना करते है। तुम इनके द्रष्टा होओ।

अनु यदीं मरुतो मंदसानमार्चन्निद्रं पपिवास सुतस्य।
आदत्त वज्रमभि यदहि हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ॥२॥

अन्वय- यत् मरुत सुतस्य पपिवास मन्दसानम् ईम् इन्द्रम् अनु आर्चन् (तदा इन्द्रः) वज्रम् आ अदत्त (तेन) अहिम् अभि हन यह्वी· च अपः सर्तवै (गन्तुम्) असृजत्।

अनुवाद- जब मरुतो ने सोम के पान से तृप्त हुये इस इन्द्र की अर्चना की (तब इन्द्र ने) वज्र आकर ग्रहण किया (उससे) वृत्र को मारा और विशाल जलराशि को स्वेच्छा से (बहने के लिये) मुक्त कर दिया।

उत ब्रह्मणो मरुतो मे अस्येद्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः।
तद्धि हव्य मनुषे गा अविंददहन्नहिं पपिवाँ इद्रो अस्य॥३॥

अन्वय- ब्रह्माण· ! मरुतः ! इन्द्र ! उत् (यूयम्) मे अस्य सुषुतस्य सोमस्य पेयाः। तत् हि हव्य मानुषे गाः अविन्दत्। अस्य च (सोमस्य) पपिवान् इन्द्रः अहिम् अहन्।

अनुवाद- हे मन्त्रज्ञाता ! मरुतो ! और इन्द्र ! (तुम) मेरे इस भलीभाँति अभिषुत सोम का पान करो। इस हव्य से मनुष्य गाये प्राप्त करते है और इस (सोम) का पान करने वाले इन्द्र ने वृत्र को मारा।

आद्रोदसी वितर वि ष्कंभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृग कः।
जिगर्तिमिद्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसंतमव दानवं हन्॥४॥

अन्वय- (इन्द्र :) (सोमपानस्य) आत् रोदसी वितर विस्कभायत् सम्व्यानः (इन्द्र) मृग चिन् (पलायमान वृत्र) श्वसन्त दानव (वृत्रम्) अपजर्गुराणः प्रति अव हन्।

अनुवाद- (इन्द्र ने) (सोमपान के) पश्चात् द्यावापृथिवी को अत्यधिक स्थिर कर दिया। गमनशील (इन्द्र) ने मृग की भाँति (पलायमान वृत्र को) भयभीत कर दिया। इन्द्र ने छिप रहे (भय से) श्वास लेते हुये दानुपुत्र (वृत्र) को आच्छादन विहीन करते हुये जाकर मारा।

अध क्रत्वा मघवन्तुभ्य देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम्।
यत्सूर्यस्य हरितः पतंतीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः॥५॥

अन्वय- मघवन् ! (इन्द्र !) यत् (त्वम्) एतशे पतन्तीः पुर सती· सूर्यस्य हरिव उपरा क अद्य (तव एन) क्रत्वा विश्वे देवा अनु तुभ्यम् सोमपेयम् आददु।

अनुवाद- हे धनवान ! (इन्द्र !) जब (तुमने) एतश के लिये आते हुये सम्मुखवर्ती सूर्य के अश्वो को मन्दगति किया था तब (तुम्हारे इस) कर्म के कारण समस्त देवताओ ने क्रमश. तुम्हे सोमरस पीने के लिये दिया था।

नव यदस्य नवतिं च भोगान्त्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत्।

अर्चतींद्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा बाधत द्याम्॥६॥

अन्वय- यत् मघवा (इन्द्र :) अस्य (शम्बरस्य) नव नवति च भोगान् साक वज्रेण विवृश्चत् (तदा) मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा इन्द्रम् अर्चन्ति (तस्य च स्तोत्रस्य) द्याम् (शम्बर) बाधत।

अनुवाद- जब धनवान (इन्द्र) ने इस (शम्बर) के निन्यानवे नगरो को एक साथ वज्र से नष्ट किया (तब) मरुतो ने युद्धभूमि मे त्रिष्टुप् छन्द के द्वारा इन्द्र की अर्चना की (और उस स्तोत्र की) दीप्ति से (शम्बर को) पीडित किया।

सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि।

त्री साकमिंद्रो मनुषः सरांसि सुत पिबद्वृत्रहत्याय सोमम्॥७॥

अन्वय- सखा (अग्निः) सख्ये अस्य इन्द्रस्य क्रत्वा त्रि शतानि महिषा तूयम् अपचत्। इन्द्र वृत्रहन्याय मनुष· त्री सरासि सुत सोम साक पिबत्।

अनुवाद- मित्रभूत (अग्नि) ने सखा इस इन्द्र के निमित्त तीन सौ वृषभो को शीघ्र पकाया। इन्द्र ने वृत्र को मारने के लिये मनुष्यो के तीन पात्रो मे अभिसुत सोम एक साथ पिया।

त्री यच्छता महिषाणामघो मास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः।

कारं न विश्वे अह्वत देवा भरमिंद्राय यदहिं जघान॥८॥

अन्वय- मघवा (इन्द्र·) यत् त्री शता महिषाणा माः अघ· त्री च सरासि सोम्यापाः (तदा) अहि जघान। कार न विश्वे देवा (सोमेन) भरम् इन्द्राय आह्वन्त।

अनुवाद- धनवान (इन्द्र) ने जब तीन सौ वृषभो का मास खाया (और) तीन पात्रो मे स्थित सोम का पान किया (तब) (उसने) अहि को मारा। स्वामी की भाँति समस्त देवताओ ने (सोम) से पूर्ण इन्द्र का आह्वान किया।

उशना यत्सहस्यैरयात गृहमिंद्र जूजुवानेभिरश्वैः।

वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम्॥६॥

अन्वय- इन्द्र ! यत् (त्वम्) उशना (च) सहस्यै जूजुवानेभि अश्वै· (कुत्सस्य) ग्रहम् अयातम् (तदा) अत्र वन्वान (त्वम्) कुत्सेन देवै (च सह) सरथ ययाथ। (इन्द्र !) (त्वम्) हि शुष्मणम् अवनोः।

अनुवाद- हे इन्द्र ! जब (तुम) (और) उशना अभिभवशील द्रुतगामी अश्वो द्वारा (कुत्स के) घर मे आये (तब) यहाँ मारकर (तुम) (और) देवताओ (के साथ) समान रथ पर आरूढ हुये। (हे इन्द्र !) (तुम) ही शुष्म को मारने वाले हो।

प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेऽकः।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचः॥१०॥

अन्वय- (इन्द्र ! त्वम्) सूर्यस्य (द्विचक्रस्य) अन्यत् चक्र प्र अवृह·। अन्यत् च वारिव यातवे कुत्साय अकरित्यक·। अनास दस्यून (त्वम्) दुर्योणे मृधवचः नि अवृणक् वधेन (च) अमृणः।

अनुवाद- (हे इन्द्र !) (तुमने) सूर्य के (दो चक्रो मे से) एक चक्र को पृथक् कर दिया (और) दूसरा धन प्राप्ति के लिये कुत्स को दे दिया शब्दरहित शत्रुओ को (तुमने) सङ्ग्राम मे हतबुद्धि कर छिन्न भिन्न कर दिया (और) वज्र से मार डाला।

स्तोमासस्त्वा गौरिवातेरवर्धन्नरधयो वैदथिनाय पिप्रुं।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिबः सोममस्य॥११॥

अन्वय- (इन्द्र !) गौरिवीतेः स्तोमासः त्वा अवर्धयन् (त्वम्) वैदथिनाय (ऋजिष्वाय) पिप्रुम् अरन्धय·। ऋजिष्वा त्वा सख्याय पक्ती पचन् (त्वाम्) आ चक्रे। (त्वम्) अस्य सोमम् अपिबः।

अनुवाद- (हे इन्द्र !) गौरिवीति के स्तोत्र तुम्हे वर्धित करे। तुमने विदथि पुत्र (ऋजीष्वा) के लिये पिप्रु को हिसित किया। ऋजीष्वा तुम्हारी मित्रता के लिए पुरोडाश पकाकर (तुम्हारे) सम्मुख रखता है। (तुमने) इस (ऋजीष्वा) के सोम का पान किया।

नवग्वासः सुतसोमास इंद्रं दशग्वासो अभ्यर्चत्यर्कैः।
गव्यं चिदूर्वमपिधनवत त चिन्नरः शशमाना अप वृन्॥१२॥

अन्वय- नवग्वास· दशग्वास· (च) (यज्ञास·) सुतसोमासः (अङ्गिरस) अर्कैः इन्द्रम् अभि अर्चन्त। शशमानाः (अङ्गिरस) नर· (असुरं) अपिधानवन्त त चित् गव्यम् ऊर्वम् अपवृन्।

अनुवाद- नौ महीने मे समाप्त होने वाले (और) दस महीने मे समाप्त होने वाले (यज्ञ के कर्त्ता) सोमाभिषव करने वाले (अङ्गिरा) स्तोत्रो द्वारा इन्द्र की अर्चना करते है। स्तुति करते हुये (अङ्गिरा) लोगो ने (असुरो द्वारा) आच्छादित उस गो समूह को उन्मुक्त किया।

कथोनु ते परि चराणि विद्वान्वीर्या मघवन्या चकर्थ।

या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम॥१३॥

अन्वय- मघवन् ! (इन्द्र !) (त्वम्) या वीर्या चकर्थ (तान्) विद्वान् (वय) कथ नु ते परि चराणि। शविष्ठ ! (त्वम्) या नु नव्या (वीर्याणि) कृणव ते ता (वीर्याणि) (अहम्) विदथेषु प्र ब्रवाम।

अनुवाद- हे धनवान ! (इन्द्र !) (तुमने) जिन वीरतापूर्ण कार्यो को किया (उन्हे) जानते हुये हम कैसे शीघ्र तुम्हारी परिचर्या करे। हे बलशाली ! तुमने जो नूतन (पराक्रम) दिखाये है तुम्हारे उन (पराक्रमो) को मै यज्ञ मे वर्णित करता हूँ।

एता विश्वा चकृवाँ इंद्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण।

या चिन्नु वज्रिन्कृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः॥१४॥

अन्वय- इन्द्र ! अपरित (त्वम्) जनुषा वीर्येण एता विश्वा भूरि (वीर्याणि) चकृवान्। दधृष्वान वज्रिन ! (त्वम्) नु या चित् कृणव ते तस्या तविष्या वर्ता (कोऽपि) न अस्ति।

अनुवाद- हे इन्द्र ! अजातशत्रु (तुमने) जन्मजात पराक्रम से इन समस्त प्रभूत (वीरता का कार्य) किया है। हे धर्षक वज्रधारी ! निश्चय ही (तुमने) जो किया है तुम्हारे उस बल का निवारयिता (कोई भी) नही है।

इद्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म।

वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथ न धीरः स्वपा अतक्षम्॥१५॥

अन्वय- शविष्ठ ! इन्द्र ! ते या नव्या (ब्रह्म) अकर्म (अस्माभिः) क्रियामाणा ब्रह्म जुषस्व। धीरः स्वपाः वसुयुः (अहम्) भद्रा सुकृता (स्तोत्राणि) वस्त्रा इव रथ (च) न अतक्षम्।

अनुवाद- हे बलशाली ! इन्द्र ! तुम्हारे लिये जो नूतन (स्तोत्र) बनाये गये है (हमारे द्वारा) बनाये स्तोत्र का सेवन करो। धीर, सुकर्मा, धनेच्छुक (मैंने) भजनीय सुकृत (स्तोत्रो) को वस्त्र की भाँति (और) रथ की भाति बनाया है।

सूक्त - (३०)

देवता- इन्द्र, १२ - १५ ऋणञ्चयेन्द्रौ, ***ऋषि***- बभ्रुरात्रेय, ***छन्द***- त्रिष्टुप्।

क्व१स्य वीरः को अपश्यदिद्रं सुखरथमीयमान हरिभ्याम्।

यो राया वज्री सुतसोममिच्छन्तदोको गंता पुरुहूत ऊती॥१॥

अन्वय- य (इन्द्रः) वज्री पुरुहूत राया सुतसोमम् (यजमान) इच्छन् तत् ओक गन्ता (अस्ति) स्य वीर (इन्द्रः) क (अस्ति) हरिभ्या सुखरथम् ईयमानम् इन्द्र क अपश्यत् ?

अनुवाद- जो इन्द्र बलवान, बहुतो द्वारा आहूत, धन के साथ सोमाभिषव करने वाले (यजमान) की इच्छा करता हुआ उसके घर मे जाने वाला है वह वीर (इन्द्र) कहाँ है ? अश्वो से युक्त सुखकर रथ पर जाते हुये इन्द्र को किसने देखा ?

अर्वाचचक्ष पदमस्य सस्वरुग्र निधातुरन्वायमिच्छन्।

अपृच्छमन्यॉ उत ते म आहुरिद्र नरो बुबुधाना अशेम॥२॥

अन्वय- (इन्द्रम्) इच्छन् (वय) (तम्) अनु आयम् निधातु च अस्य (इन्द्रस्य) सस्व उग्र (च) पदम् अचचक्षम्। अहम् अन्यान् उत अपृच्छम् (तदा) नर बुबुधाना ते मे आहू (यत् वयम्) इन्द्रम् अशेम।

अनुवाद- (इन्द्र की) इच्छा करते हुये (हमने) (उसका) अन्वेषण किया और स्थापयिता इस (इन्द्र) के अन्तर्निहित और उग्र स्थान को देखा। मैने अन्य से भी पूछा (तब) नेता और ज्ञानाभिलाषी उन्होने मुझसे कहा (कि हमने) इन्द्र को प्राप्त किया है।

प्र नु वय सुते या ते कृतानीद्र ब्रवाम यानि नो जुजोष।

वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान्वहतेऽय मघवा सर्वसेन॥३॥

अन्वय- इन्द्र ! सुते नु वय यानि न· जुजोष या (च) ते कृतानि (तानि) ब्रवाम। शृण्वत् विद्वान् च अविद्वान् (तव विषये) वेदत्। मघवा सर्वसेन अयम् (इन्द्र) (अश्वै जनान्) वहते।

अनुवाद- हे इन्द्र ! अभिषव के समय आज जिनसे हमारी सेवा की है (और) जो तुम्हारे कर्म (है) (उन्हे) बोलेगे। सुनने वाले और विद्वान् न जानने वाले को (तुम्हारे विषय मे) समझाये। धनवान समस्त सेनाओ से युक्त यह (इन्द्र) (अश्वो द्वारा) (लोगो के पास) ले जाया जाता है।

स्थिर मनश्चकृषे जात इंद्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित्।

अश्मान चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम्॥४॥

अन्वय - इन्द्र ! जात· (त्वम्) मन· स्थिर चकृषे। एक· इत् भूयस चित् युधये वेषि। (गवाम्) अश्मान (पर्वत) चित् शवसा वि दिद्युत उस्रियाणा (च) गवाम् उर्व विद।

अनुवाद- हे इन्द्र ! उत्पन्न होते (तुमने) मन को स्थिर कर लिया। अकेले ही अनेको के साथ युद्ध के लिये गमन किया। गायो को) छिपाने वाले (पर्वत) को बल से (तुमने) विदीर्ण किया (और) क्षीरदायिनी गायो के समूह को प्राप्त किया।

परो यत्त्व परम आजनिष्ठा परावति श्रुत्य नाम बिभ्रत्।

अतश्चिदिद्रादभयत देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नी·॥५॥

अन्वय- (इन्द्र !) पर. परम (च) यत् त्व परावति श्रुत्य नाम बिभ्रत् अजनिष्ठा। अत चित् देवाः इन्द्रात् अभयन्त। (इन्द्र) दासपत्नी विश्वा· अप· अजयत्।

अनुवाद- (हे इन्द्र !) प्रधान (और) उत्कृष्टतम जो तुम दूर से श्रवणीय नाम को धारण करते हुये उत्पन्न हुये इसीलिये देवता इन्द्र से डरने लगे (इन्द्र ने) दास (वृत्र) द्वारा पालित समस्त जल को जीत लिया।

तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यंधः।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिंद्रः॥६॥

अन्वय- इन्द्र ! सुशेवा· एते मरुत· तुभ्यम् इत् अर्कम् अर्चन्ति अन्धः (च) सुन्वन्ति। इन्द्र ! अप ओहानम् आशयान मायिनम् अहि (त्वम्) मायाभि प्र सक्षत्।

अनुवाद- हे इन्द्र ! शोभन सुखप्रद ये मरुत् तुम्हारे लिये स्तवनीय स्तोत्र बनाते है (और) सोम अभिसुत करते है। हे इन्द्र! जलाच्छादक सोते हुये मायावी अहिपुत्र को (तुमने) माया के द्वारा अभीभूत कर लिया।

वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्त्संचकानः।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन्॥७॥

अन्वय- मघवन् ! (इन्द्र !) सचकान· (त्वम्) गवा दानम् (वृत्रम्) इन्वन्। (त्वम) जनुषा मृधः सु वि अहन्। अत्र (युद्धे) गातुम् इच्छन् मनवे दासस्य नमुचेः शिर· यत् अवर्तयः।

अनुवाद- हे धनवान ! (इन्द्र !) सुस्तुत (तुम) वज्र द्वारा बाधक (वृत्र) को पीडित करो। (तुमने) जन्म से शत्रुओ का सहार किया है। इस (युद्ध) मे सुख की इच्छा करने वाले मेरे लिये दास नमुचि के सिर को चूर्ण करो।

युज हि मामकृथा आदिदिंद्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन्।
अश्मानं चित्स्वर्यं१ वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः॥८॥

अन्वय- इन्द्र ! स्वर्यं वर्तमानम् अश्मान चित् (त्वम्) दासस्य नमुचेः शिरः मथायन् आत् इत् मा यजु हि अकृथा (तदानी) मरुद्भ्यः रोदसी चक्रिया इव प्र (आस्ताम्)।

अनुवाद- हे इन्द्र ! गर्जनयुक्त भ्रमणशील मेघ की भाँति (तुमने) दास नमुचि का मस्तक चूर्ण करने के पश्चात् मुझसे मैत्री की (तब) मरुतो द्वारा द्यावापृथिवी चक्र की भाँति घूमने (लगे)।

स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः।
अतर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिंद्रः॥९॥

अन्वय- दास. (नमुचिः) स्त्रियः हि आयुधानि चक्रे। अस्य अबला सेनाः कि मा करन् (इति मन्यमान) इन्द्र अस्य उभे धने (गृहस्य) अन्त हि अख्यत् अथ दस्यु युधये उप प्र ऐत्।

अनुवाद- दास (नमुचि) ने स्त्रियो को युद्धसाधन बनाया। इसकी निर्बल सेना मेरा क्या कर लेगी (ऐसा सोचते हुये) इन्द्र ने इस (नमुचि) की दो प्रेयसियो को (घर के) मध्य रखा तत्पश्चात् दस्यु (नमुचि) से युद्ध के लिये प्रस्थान किया।

समत्र गावोऽभितोऽनवतेहेह वत्सैर्वियुता यदासन्।
स ता इंद्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमंदन्॥१०॥

अन्वय- यत् गावः वत्सैः वियुताः आसन् अत्र इह अभितः सम् अनवन्त यत् सुसुताः सोमास. (इन्द्रम्) अमन्दन् (तदा) इन्द्र अस्य शाकैः ता. (गाः) (वत्सैः) सम् असृजत्।

अनुवाद- जब गाये बछडो से अलग हो गयी उस समय इधर उधर चारो ओर भटकने लगी जब भलीभाँति अभिसुत सोम ने (इन्द्र को) आनन्दित किया (तब) इन्द्र ने अपने बल से उन गायो को (बछड़ो से) मिला दिया।

यदी सोमा बभ्रुधूता अमदन्नरोरवीद्वृषभः सादनेषु।
पुरदरः पपिवाँ इद्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम्॥११॥

अन्वय- यत् ईम् बभ्रुधूताः सोमाः (इन्द्रम्) अमन्दन् (तदा) बृषभः (इन्द्रः) सदनेषु अरोरवीत्। पुरन्दरः इन्द्रः (सोम) पपिवान् अस्य (च) (बभ्रोः) पुनः उस्रियाणा गवाम् अददत्।

अनुवाद- जब बभ्रु द्वारा अभिसुत सोम ने (इन्द्र को) आनन्दित किया (तब)-कामनासेचक (इन्द्र) ने युद्ध मे महान शब्द किया। नगर-विनाशक इन्द्र ने (सोम-) पान किया (और) इस (बभ्रु) को पुनः क्षीरदायिनी गाये दी।

भद्रमिद रुशमा अग्न अक्रन्गवा चत्वारि ददतः सहस्रा।
ऋणचयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम्॥१२॥

अन्वय- अग्ने ! रूशमाः (मह्यम्) चत्वारि सहस्रा. गवा ददतः इद भद्र (कर्म) अक्रन्। नृणा नृतमस्य ऋणञ्चस्य प्रयता मघानि प्रति अग्रभीष्म।

अनुवाद- हे अग्ने ! रुशमवासियो ने (मुझे) चार हजार गायें देकर यह कल्याणकारी (कर्म) किया। मनुष्यो मे उत्तम मनुष्य ऋणञ्चय के दिये गये धन को (मैने) ग्रहण किया।

सुपेशस माव सृजत्यस्तं गवा सहस्रै रुशमासो अग्ने।
तीव्रा इंद्रमममदुः सुतोसोऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः॥१३॥

अन्वय- अग्ने ! रुशमास मा सहस्रै· गवा सुपेशसम् (च) अस्तम् अव सृजन्ति। परितम्या अक्तो व्युष्टौ तीव्रा सुतास इन्द्रम् अममन्दु।

अनुवाद- हे अग्ने ! रुशमवासियो ने मुझे हजार गाये (और) सुसज्जित घर प्रदान किया। अन्धकारमय रात्रि के व्यतीत हो जाने पर सरस अभिषुत सोम ने इन्द्र को आनन्दित किया।

औच्छत्सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणंचये राजनि रुशमानाम्।

अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा॥१४॥

अन्वय- रुशमाना राजनि ऋणञ्चये (समीपे) या परितक्म्या रात्री सा औच्छत्। अज्यमानः बभ्रु· अत्य· रघु· वाजी न चत्वारि सहस्रा (गवाम्) असनत्।

अनुवाद- रुशमवासियो के राजा ऋणञ्चय के (समीप) जो अन्धकारयुक्त रात्रि (है) वह व्यतीत हो गयी है। बुलाये जाने पर बभ्रु ने सततगामी अश्वो की भाँति चार हजार (गाये) प्राप्त की।

चतुःसहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने।

घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे य आसीदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः॥१५॥

अन्वय- अग्ने ! रुशमेषु (वयं) चतु· सहस्र गव्यस्य पशव. प्रति अग्रगीष्म। प्रवृजे य· तप्त अयस्मयः धर्म आसीत् त चित् (वय) विप्रा आदाम।

अनुवाद- हे अग्ने ! रुशमदेश मे (हमने) चार हजार गोरूप पशु प्राप्त किये। यज्ञ मे जो तप्त स्वर्णमय पात्र था उसे भी (हम) मेधावियो ने प्राप्त किया।

सूक्त - (३१)

देवता- इन्द्र, ८ तृतीयपादस्य कुत्सो वा चतुर्थपादस्य उशना वा, ६ इन्द्रकुत्सौ, ***ऋषि***- अवस्युरात्रेय, **छन्द**- त्रिष्टुप्।

इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम्।

यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन्॥१॥

अन्वय- मघवा इन्द्र वाजयन्त य (रथम्) अध्यस्थात् (तस्मै) रथाय प्रवत कृणोति। पशवः यूथा· (प्रेरक) गोपा· इव (इन्द्र·) (जनान्) व्युनोति। प्रथमः (इन्द्रः) अरिष्ट· (सन्) सिसासन् याति।

अनुवाद- धनवान इन्द्र अन्न की इच्छा करता हुआ जिस रथ पर बैठता है (उस) रथ का सञ्चालन करता है। पशुओ के समूह के (प्रेरक) गोपालक की भाँति (इन्द्र) (लोगो को) प्रेरित करता है। सर्वश्रेष्ठ (इन्द्र) अहिंसित (होकर) धन की इच्छा करता हुआ जाता है।

आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशंगराते अभि नः सचस्व।

नहि त्वदिंद्र वस्यो अन्यदस्त्यमेनाश्चिज्जनिवतश्चकर्थ॥२॥

अन्वय- हरिव ! (इन्द्र !) (अस्मान्) आ प्र द्रव (न·) वि वेन· मा (भव)। पिशङ्गराते ! (त्व) न· अभि सचस्व। इन्द्र ! (कोऽपि) वस्य त्वत् अन्यत् नहि अस्ति। (इन्द्र !) अमेनात् चित् जनिवत· चकर्थ।

अनुवाद- हे अश्वयुक्त! (इन्द्र !) (हमारे) अभिमुख भलीभाँति गमन करो (हमसे) विरत न (होओ)। हे बहुविधधनवाले ! (तुम) हमारी सेवा करो। हे इन्द्र ! (कोई भी) वस्तु तुमसे श्रेष्ठ नही है। (हे इन्द्र !) पत्नीहीनो को पत्नीयुक्त कर दो।

उद्यत्सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इंद्र इंद्रियाणि विश्वा।

प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अंतर्वि ज्योतिषा संववृत्वत्तमोऽवः॥३॥

अन्वय- यत् (उषस) सहस· (सूर्यस्य) सहः उत् आ अजनिष्ट (तदा) इन्द्रः (यजमानेभ्य) विश्वा इन्द्रियाणि देदिष्ट। वव्रे अन्त सुदुघा (गा) प्र अचोदयत्। ज्योतिषा सववृत्वत् तम वि अरवित्यव.।

अनुवाद- जब (उषा के) तेज से (सूर्य का) तेज उत्पन्न होता है (तब) इन्द्र (यजमानो को) समस्त धन प्रदान करता है। पर्वत के मध्य से सुदुग्धदायिनी (गायो) को मुक्त करता है। तेज द्वारा सवरणशील अन्धकार को दूर करता है।

अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमंतम्।

ब्रह्माण इंद्रं महयंतो अर्कैरवर्धयन्नहये हंतवा उं॥४॥

अन्वय- पुरुहूत ! (इन्द्र !) अनव ते अश्वाय रथ तक्षन् त्वष्टा (ते) वज्र द्युमन्तम् (अकरोत्) मध्यन्त ब्राह्मण अहये हन्तवै इन्द्रम् अर्कै अवर्धयन्।

अनुवाद- हे बहुस्तुत ! (इन्द्र !) मनुष्यो ने तुम्हारे अश्वयुक्त रथ को बनाया त्वष्टा ने (तुम्हारे) वज्र को दीप्तिमान (किया)। पूजा करने वाले अङ्गिराओ ने वृत्र को मारने के लिये इन्द्र को स्तोत्रो द्वारा सवर्धित किया।

वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिंद्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः।

अनश्वासो ये पवयोऽरथा इंद्रेषिता अभ्यवर्तंत दस्यून्॥५॥

अन्वय- इन्द्र ! वृषण (मरुत) यत् वृषणे ते अर्कम् अर्चन् (तदा) अदितिः ग्रावाण सजोषा (सगता बभूवु·) इन्द्रेषिता अनश्वास अरथा य (मरुत) पवय (ते) दस्यून् अभि अवर्तन्त।

अन्वय- इन्द्रकुत्सा ! रथेन वहमाना वाम् अत्याः कर्णे अपि आ वहन्तु। (वाम्) सीम् (शुष्ण) सधस्थात् अदभ्य नि धमथ मघोन् (च) हृद तमांसि वरथ।

अनुवाद- हे इन्द्रकुत्सा ! रथ द्वारा वहन किये जाते हुये तुम दोनो को अश्व स्तोताओ के समीप ले आये (तुम दोनो ने) इस (शुष्ण) को निवासभूत जल से दूर किया (और) दानी के हृदय से अन्धकार को दूर किया।

वार्तस्य युक्तान्त्सुयुजश्चिदश्वान्कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः।

विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इंद्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन्॥१०॥

अन्वय- कवि एष अवस्यु चित् वातस्य चित् युक्तान् सुयुज· अश्वान् अजगन्। इन्द्र ! (अवस्यो) सखाय विश्वे मरुत अत्र ने तविषी ब्रहमाणि अवर्धयन्।

अनुवाद- मेधावी इस अवस्यु ने वायु की भाँति वेगवान सुष्ठु योजनीय अश्वो को प्राप्त किया। हे इन्द्र ! (अवस्यु के) सखाभूत स्तोताओ ने यहा तुम्हारे बल को स्तोत्रो द्वारा बढाया।

सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम्।

भरच्चक्रमेतशः स रिणाति पुरो दधत्सनिष्यति क्रतुं नः॥११॥

अन्वय- पूर्व परितक्म्याया (इन्द्र.) सूरः चित् जूजुवास रथम् उपर करत्। (तस्य) चक्रम् एतश· भरत्। (इन्द्र·) (शत्रून्) सम् रिणाति (सः) न· पुरः दधत् क्रतुं (च) सनिष्यति।

अनुवाद- पहले सग्राम मे (इन्द्र ने) सूर्य के वेगवान रथ को गतिहीन कर दिया था। (उसका) चक्र एतश को दिया। (इन्द्र) (शत्रुओ को) भलीभाँति हिंसित करता है (वह) हमे पुरस्कार दे (और) यज्ञ का सम्भजन करे।

आयं जना अभिचक्षे जगामेद्रः सखायं सुतसोममिच्छन्।

वदन्ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरंति॥१२॥

अन्वय- जना ! (यूयम्) अभिचक्षे अयम् इन्द्र सुतसोम सखाय (यजमानम्) इच्छन् आ जगाम। अध्वर्यव यस्य जीर चरन्ति (स·) ग्रावा वदन् वेदिम् अव भ्रियाते।

अनुवाद- हे लोगो ! (तुम लोगो को) देखने के लिये यह इन्द्र सोभाभिषव करने वाले सखारूप (यजमानो) की इच्छा करता हुआ अया है॥ अध्वर्यु जिसको तीव्रता से चलाते है (वह) प्रस्तर शब्द करता हुआ वेदी पर स्थापित किया जाता है।

ये चाकनंत चाकनंत नू ते मर्ता अमृत मो ते अह आरन्।

वार्वधि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम॥१३॥

अन्वय- अमृत! (इन्द्र !) ये (ते) चाकनन्त नु ते चाकनन्त ते मर्ता॰ (समीपे) अह मा आ अरन्। उत (त्व) यज्यून् ववन्धि येषु जनेषु (वय स्तोतार॰ सन्ति) तेषु ओजः धेहि ते (त्वदीय॰) स्याम।

अनुवाद- हे अमर ! (इन्द्र !) जो (तुम्हारी) कामना करते हैं, शीघ्र तुम्हारी अभिलाषा करते है (उन मनुष्यो के) (समीप) पाप न जाये। और (तुम) यजमानो का सम्भजन करो। जिन मनुष्यो के (हम स्तोता है) उन्हे बल दो वे (तुम्हारे) हो।

सूक्त - (३२)

देवता- इन्द्र, ***ऋषि***- गातुरात्रेय, ***छन्द***- त्रिष्टुप्।

अर्दर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः।

महान्तमिन्द्र पर्वत वि यद्वः सृजो वि धारा अव दानव हन्॥१॥

अन्वय- इन्द्र । त्वम् उत्सम् अर्ददः (जल) खानि (च) वि असृजः बद्धानान् अर्णवान् अरम्णा॰ यत् (त्वम्) महन्त पर्वत वरिति व. दानवम् अव हन् धाराः वि सृज॰।

अनुवाद- हे इन्द्र ! तुमने मेघ को विदीर्ण किया (और) (जल के) द्वार को बनाया। बँधे हुये जल को विसर्जित किया जो (तुमने) विशाल मेघ को उद्घाटित कर दानुपुत्र को मारकर जल बरसाया।

त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन्।

अहिं चिदुग्र प्रयुत शयान जघन्वाँ इंद्र तविषीमधत्थाः॥२॥

अन्वय- वज्रिन । (इन्द्र !) त्वं (वर्षा) ऋतुभिः बद्धानान् उत्सान् (मोचयित्वा) पर्वतस्य अघः अरहः। उग्र! इन्द्र ! (त्व) शयान प्रयुतम् अहि (वृत्रम्) चित् जघन्वान तविषी (च) अधत्थाः।

अनुवाद- हे वज्रवान ! (इन्द्र !) तुम (वर्षा) ऋतु मे निरुद्ध मेघो को (मुक्तकर) मेघ के जल को निकालो। हे उग्र! इन्द्र ! तुमने सोते हुये बलवान शत्रु (वृत्र) को मार दिया और बल धारण किया।

त्यस्य चिन्महतो निर्मृगस्य वधर्जघान तविषीभिरिंद्रः।

य एक इंदप्रतिर्मन्यमान आदस्मादन्यो अजनिष्ट तव्यान्॥३॥

अन्वय- अप्रति मन्यमानः यः एक इन्द्र॰ (अस्ति) (सः) महतः मृगस्य चित् (शीघ्रगामिनस्य) त्यस्य (वृत्रस्य) वध (विनष्ट्य) (तम्) (स्व) तविषीभि. नि जघान। आत् अस्मात् (वृत्रात्) अन्यः तव्यान् (असुर) अजनिष्ट।

अनुवाद- अप्रद्विन्दी मानता हुआ जो अद्वितीय इन्द्र (है) (उसने) महान मृग की भाँति (शीघ्रगामी) इस (वृत्र) के आयुध को (नष्टकर) (उसको) (अपने) बल से मार डाला। तत्पश्चात् इस (वृत्र) से अन्य बलवान (असुर) उत्पन्न हुआ।

त्य चिदेषा स्वधया मदंतं मिहो नपातं सुवृधं तमोगाम्।

वृषप्रभर्मा दानवस्य भाम वज्रेण वज्री नि जघान शुष्णम्॥४॥

अन्वय- वृषपृभर्मा वज्री (इन्द्र) एषा (प्रणिना) स्वधया मदन्त मिहः निपात सुवृध तमः गा दानवस्य भाम त्य चित् शुष्ण वज्रेण नि जघान।

अनुवाद- वर्षणशील वज्रधर (इन्द्र) ने इन (प्राणियो) के अन्न से प्रसन्न होते हुये सेचनसमर्थ (मेघ) के पालक, प्रवृद्ध अन्धकार मे गमन करने वाले दानव (वृत्र) के क्रोध से उत्पन्न उस शुष्ण को वज्र से मारा था।

त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म।

यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सत तमसि हर्म्ये धाः॥५॥

अन्वय- सुक्षत्र ! (इन्द्र !) मदस्य (सोमस्य) प्रभृता त्य चित् अमर्मणः विदत् अस्य (वृत्रस्य) निसत्त मर्म अस्य क्रतुभि विदत् युतुत्स यत् ईम् (वृत्र) तमांसि हर्म्ये धाः।

अनुवाद- हे बलवान ! (इन्द्र !) मादक (सोम) से प्रबृद्ध तुमने अबध्य इस (वृत्र) के छुपे हुये मर्म को इसके कार्यो द्वारा जाना (और) युद्ध की इच्छा कने वालाा जो इस (वृत्र को) अन्धकारपूर्ण स्थान मे रख दिया।

त्य चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम्।

तं चिन्मदानो वृषभः सुतस्योच्चैरिंद्रो अपगूर्या जघान॥६॥

अन्वय- सुतस्य (सोमेन) मन्दानः वृषभः इन्द्रः त्य चित् इत्था कत्पय शयान असुर्ये तमसि ववृधान त (वृत्र) चित् (वज्रेण) उच्चैं अपगूर्य जघान।

अनुवाद- अभिषुत(सोम) से मस्त होते हुये कामना सेचक इन्द्र ने इस लोक मे सुखपूर्वक सोते हुये सूर्यरहित अन्धकार मे प्रवृद्ध उस (वृत्र) को (वज्र द्वारा) ऊपर उठाकर मारा।

उद्यदिंद्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम्।

यदी वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जतोरधम चकार॥७॥

अन्वय- यत् इन्द्रः महते दानवाय सह अप्रतीत वध उत् यमिष्ट यत् वज्रस्य प्रभृतौ ईम् (वृत्र) ददाभ (तदा) विश्वस्य जन्तो (तम्) अधम चकार।

अनुवाद- जब इन्द्र ने विशाल दानुपुत्र (वृत्र) को विनाशक अजेय वज्र से ऊपर उठाया जब वज्र के प्रहार से इस (वृत्र) को हिंसित किया (तब) समस्त प्राणियो के मध्य (उसे) अधम बनाया।

त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्व वव्रं मह्यादंदुग्रः।

अपादमत्र महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचम्॥८॥

अन्वय- उग्र. इन्द्र· अर्ण (वावृत्य) शयान मधुपम् असिन्व वव्र महि त्य चित् (वृत्र) अदात् (तदन्तरम् इन्द्र) दुर्योणे अपादम् अत्र मृध्रवाच (वृत्र) महता वधेन नि अवृणक्।

अनुवाद- उग्र (इन्द्र) ने जल को (घेरकर) शयन करने वाले, जलरक्षक, शत्रु-सहारक, आच्छादक, विशाल उस (वृत्र) को ग्रहण किया। (तत्पश्चात् इन्द्र ने) सङ्ग्राम मे पादरहित परिणाम रहित, हिंसितवागिन्द्रिय वाले (वृत्र) को विशाल वज्र से पूर्णतः हिंसित किया।

को अस्य शुष्म तविषी वरात एको धना भरते अप्रतीतः।

इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इंद्रस्यौजसो भियसा जिहाते॥९॥

अन्वय- अस्य इन्द्रस्य शुष्म तविषीं कः वराते ? अप्रतीत· (इन्द्रः) एकः (शत्रूणा) धना भरते। देवी इमे (द्यावापृथिवी) चित् ज्रयस अस्य इन्द्रस्य ओजसः भियसा नु जिहाते।

अनुवाद- इस इन्द्र के शोषक बल का कौन निवारण कर सकता है? पीछे न हटने वाला (इन्द्र) अकेले (शत्रुओ के) धन का हरण करता है। द्युतिमान ये (द्यावापृथिवी) वेगवान इस इन्द्र के ओज से भयभीत होकर शीघ्र चलायमान होते है।

न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इंद्राय गातुरुशतीव येमे।

स यदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ने क्षितयो नमत॥१०॥

अन्वय- स्वधिति· देवी (द्यौः) अस्मै इन्द्रायः नि जिह्रीते। उशती गातुः इव येमे। यत् (इन्द्रः) विश्वम् ओज· आभिः सम् युवते (तदा) क्षितयः अनु स्वधाव्ने (इन्द्राय) नमन्त।

अनुवाद- स्वय धार्यमाण द्युतिमान (द्युलोक) इस इन्द्र के लिये नीचे गमन करता है और अभिलाषिणी भूमि की भाँति आत्मसमर्पण करता है। जब (इन्द्र) समस्त बल को प्रजाओ के साथ सयुक्त करता है (तब) मनुष्यगण क्रमश बलवान (इन्द्र) को नमन करते है।

एक नु त्वा सत्पति पाचजन्यं जात शृणोमि यशसं जनेषु।

त मे जगृभ्र आशसो नविष्ठ दोषा वस्तोर्हवमानास इंद्रम्॥११॥

अन्वय- (इन्द्र !) जनेषु एक नु सत्पति, पाञ्चजन्य जात यशस त्वा श्रणोमि। दोषा वस्तोः हवमानसः आशस मे (प्रजा) नविष्ठ तम् इन्द्र जगृभ्रे।

अनुवाद- (हे इन्द्र !) मनुष्यो के मध्य मुख्य, सज्जनो के पालक, पाञ्चजन्यो के लिये उत्पन्न, यशस्वी तुम्हे सुनता हूँ। दिनरात स्तुति करने वाली कामनायुक्त मेरी (प्रजाये) स्तुतियोग्य उस इन्द्र को प्राप्त करे।

एवा हि त्वामृतुथा यातयन्त मघा विप्रेभ्यो ददत शृणोमि।
कि ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिद्र॥१२॥

अन्वय- इन्द्र ! ऋतुथा यातयन्त त्वा विप्रेभ्यः मघा ददतम् एव हि शृणोमि। इन्द्र ! ये सखायः ब्राह्मण त्वया (स्व) काम निदधु· ते कि गृहते ?

अनुवाद- (हे इन्द्र !) समयानुसार प्रेरक तुमको स्तोताओ को धन देने वाला ही सुनता हूँ। हे इन्द्र ! जो मित्रभूत स्तोता तुममे (अपनी) कामना स्थापित करते है वे क्या प्राप्त करते है ?

सूक्त - (३३)

देवता- इन्द्र, ***ऋषि***- सम्वरण प्रजापत्य, ***छन्द***- त्रिष्टुप्।

महिं महे तवसे दीध्ये नृनिंद्रायेत्था तवसे अतव्यान्।
यो अस्मै सुमतिं वाजसातौ स्तुतो जने समर्यश्चिकेत॥१॥

अन्वय- य (इन्द्र) स्तुतः अस्मै जने सुमति (ददाति) वाजसातौ (च) समर्य चिकेत। अतव्यान् (अह सम्वरण·) महे इन्द्राय तवसे नृन् (च) तवसे इत्था महि (स्तोत्र) दीध्ये।

अनुवाद- जो (इन्द्र) स्तुत होकर हम लोगो को उत्तम बुद्धि (देता है) (और) युद्ध मे श्रेष्ठ वीरो को जानता है। अत्यन्त दुर्बल (मै स्मवरण) महान इन्द्र के बल के लिये (और) मनुष्यो के बल के लिये इस प्रकार महान (स्तोत्र) उद्घाटित करता हूँ।

स त्वं नं इद्र धियसानो अर्केर्हरीणां वृषन्योक्त्रमश्रेः।
या इत्था मघवन्नु जोष वक्षो अभि प्रार्यः संक्षि जनान्॥२॥

अन्वय- वृषन् ! इन्द्र ! नः धियसान· अर्कैः जोषम् अनु वक्ष· सः त्वं हरीणा योवत्रम् अश्रेः। मघवन् ! इत्था या· अरय· (सन्ति) (तान्) जनान् अभि प्र सक्षि।

अनुवाद- हे कामनासेचक ! इन्द्र ! हमारा ध्यान करते हुये, स्तोत्रो द्वारा प्रीति प्राप्त करते हुये वह तुम अश्वो की लगाम ग्रहण करते हो। हे ऐश्वर्यवान ! इस प्रकार जो शत्रु (है) (उन) लोगो को पराभूत करो।

न ते तं इंद्राभ्य१स्मदृष्वायुक्तासो अब्रह्माता यदसन्।
तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्ता रश्मि देव यमसे स्वश्वः॥३॥

अन्वय- ऋष्व । इन्द्र ! यत् अस्मत् अयुक्तासः अब्रहमाता अभि आसन् ते (नराः) ते न (सन्ति)। वज्रहस्त । देव! (इन्द्र !) स्वाश्व (त्व) त रथम् अधितिष्ठ (यस्य) रश्मि (त्वम्) आ यामसे।

अनुवाद- हे महान ! इन्द्र ! जो हमसे अलग हुये है वे (मनुष्य) तेरे नही (है)। हे वज्रहस्त । हे द्युतिमान ! (इन्द्र !) शोभन अश्वो वाले (तुम) उस रथ पर बैठो (जिसकी) लगाम (तुम) नियन्त्रित करते हो।

पुरु यत्त इद्र सत्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन्।

ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित्॥४॥

अन्वय- इन्द्र । यत् ते पुरु उक्था सन्ति (तत्र प्राप्यते यत्) (त्वम्) युध्यन् उर्वरासु भूमौ गवे (मार्ग) चकर्थ। (त्व) सूर्याय चित् स्व- ओकसि (स्थापितवान) समत्सु वृषा (प्रतिबन्धक.) दासस्य नाम (असुर) चित् ततक्षे।

अनुवाद- हे इन्द्र । जो तुम्हारे बहुत से स्तोत्र मिलते है (उनमे मिला है कि) (तुमने) युद्ध करते हुये उर्वरा (भूमि) मे जल के लिये (मार्ग) बनाया। (तुम) सूर्य को अपने स्थान में स्थापित करते हो। युद्ध मे वृष्टि के (प्रतिबन्धक) दास नाम के (असुर को) नष्ट करते हो।

वय ते त इंद्र ये च नरः शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः॥

आस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः॥५॥

अन्वय- इन्द्र । ये शर्धः जज्ञानः रथाः च याताः (सन्ति) ते वय नरः ते (सन्ति)। अहिशुष्म । (इन्द्र !) भाग न हव्य चारु (त्वम्) अस्मान् प्रभृथेषु आ जगम्यात्।

अनुवाद- हे इन्द्र ! जो बल उत्पन्न करने वाले और रथ से आने वाले (है) वे हम ऋत्विग्गण तेरे (है)। हे अहिशोषक । (इन्द्र !) धन की भाँति स्तवनीय सुन्दर (तुम) हमारे यज्ञ मे आओ।

पपृक्षेण्यमिंद्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः।

स न एनीं वसवानो रयिं दाः प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम्॥६॥

अन्वय- इन्द्र । त्व हि ओजः पपृक्षेण्यम् (अस्ति) (त्व) नृम्णानि नृतमानः अमर्तः च (असि) स (त्व) (जगत्) वस्वानः न एनी रयि दा.। तुविमघस्य अर्यः (दातुः इन्द्रस्य) दान प्र स्तुषे।

अनुवाद- हे इन्द्र ! तुम्हारा बल स्तवनीय (है) तुम धन के सरक्षक (तथा) अमर (हो)। वह (तुम) (ससार को) आच्छादित करते हुये हमे ऐसा धन दो। प्रभूत धन के श्रेष्ठ (दायक इन्द्र) के दान की स्तुति करता हूँ।

एवा न इद्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून्।

उत त्वच ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः॥७॥

अन्वय- शूर ! इन्द्र ! एव न· गृणत (त्वम्) ऊतिभि कारून् (अस्मान्) अव पाहि उत् वाजसातौ (न आच्छादक) त्वच ददत सुसुतस्य चारो मध्व· पिप्रीहि।

अनुवाद- हे शूर ! इन्द्र ! इस प्रकार हमारे द्वारा स्तुत होते हुये (तुम) रक्षा द्वारा (हम) यज्ञ करने वालो की सेवा करो। और सङ्ग्राम मे (हमे) (आच्छादक) रूप देते हुये अभिषुत मधुर सोम का पान करो।

उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे॥८॥

अन्वय- अस्य गौरिक्षितस्य पौरुकुत्स्यस्य सूरे· हिरणिन त्रसदस्यो· मा रराणा त्ये दश श्येतासः (अश्वा·) मा वहन्तु (अहम्) उत् (रथनियोजनादि -) क्रतुभिः नु सश्चे।

अनुवाद- इस गुरुक्षितगोत्रोत्पन्न पुरुकुत्स के पुत्र प्रेरक हिरण्यवान त्रिसदस्यु के द्वारा मुझे प्रदान किये गये ये दस श्वेत (अश्व) मेरा वहन करे और (मै) (रथनियोजनादि) कार्यो द्वारा शीघ्र गमन करूँ।

उत त्ये मा मरुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत्॥६॥

अन्वय- मरुताश्वस्य विदथस्य (यज्ञे) रातौ मा शोणाः ऋत्वामघासः त्ये (अश्वाः) (दत्तानि) (विदथ·) अर्य मे च्यवतान सहस्रा (धनानि) ददानः वपुर्षे आनूकम् आर्चत्।

अनुवाद- मरुताश्व के पुत्र विदथ के (यज्ञा मे) दान मे मुझे रक्तवर्ण (शीघ्र) गमन के कारण महान ये अश्व (दिये गये) (विदथ ने) श्रेष्ठ मुझको प्रवृद्ध करने वाला अपरिमित (धन) देते हुये शरीर का आभूषण दिया।

उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन्॥१०॥

अन्वय- लक्ष्मण्यस्य ध्वन्यस्य त्ये यतानाः सुरुचः (अश्वाः) मा जुष्टा.। वज्र (गन्तार·) गावः न प्रयता· महना राय सवरणस्य ऋषे अपि ग्मन्।

अनुवाद- लक्ष्मण के पुत्र ध्वन्य के ये ले जाने वाले सुन्दर (अश्व) मुझे प्राप्त हुये है। गोशाले मे (जाने वाली) गायो की भाति प्रदान किया हुआ धन सम्वरण ऋषि की ओर जाये।

सूक्त - (३४)

देवता- इन्द्र, *ऋषि*- सम्वरणप्रजापत्य, *छन्द*- त्रिष्टुप्, ६ जगती।

अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते।

सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन॥१॥

अन्वय- अजातशत्रु दस्मम् (इन्द्रम् प्रति) अजरा स्वर्वती अमिता स्वधा अनु ईयते। (ऋत्विज !) ब्रह्मवाहसे पुरुस्तुताय (इन्द्राय) (सोम) सुनोतन (पुरोडाश) पचत प्रतर (हव्य) दधातन।

अनुवाद- अजातशत्रु दर्शनीय (इन्द्र की ओर) अक्षुण्ण, स्वर्गीय अपरिमित हव्य गमन करता है। (हे ऋत्विजो !) स्तोत्र-वाहक बहुस्तुत (इन्द्र) के लिए (सोम) अभिषुत करो। (पुरोडाश) पकाओ। प्रकृष्ट (हव्य) अर्पण करो।

आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामदत मघवा मध्वो अधसः।

यदीं मृगाय हंतवे महावधः सहस्रभृष्टमुशना वध यमत्॥२॥

अन्वय- मघवा य (इन्द्र.) सोमेन जठरम् आ अपिप्रत। मध्वः अन्धस. (पानेन) अमन्दत। यत् महावध. (शत्रु) उशना (इन्द्र) ईम् मृगाय हन्तवे सहस्रभृष्टि वध यमत्।

अनुवाद- धनवान जो (इन्द्र) सोम से जठर को परिपूर्ण करता है। मधुर सोम के (पान से) तृप्त होता है। महान वज्र धारक (शत्रु की) कमाना करता हुआ (इन्द्र) इस मृग को मारने के लिये अपरिमित तेजवाला वज्र उठाता है।

यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह।

अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः॥३॥

अन्वय- य· (यजमान) अस्मै (इन्द्राय) घ्रसे उत वा य· ऊधानि सोम सुनोति (स·) अह द्युमान् भवति। यः कवसख· (अस्ति) (त) ततनुष्टि तनून शुभ्र (मनुष्य) शक्रः मघवा (इन्द्रः) अप ऊहति।

अनुवाद- जो (यजमान) इस (इन्द्र) के लिये दिन और जो रात मे सोम का अभिषव करता है (वह) निश्चय ही द्युतिमान होता है। जो कुत्सितो का मित्र (है) (उस) धर्मसन्नति की कामना करने वाले शोभन अलङ्कार वाले (मनुष्य) को तेजस्वी धनवान इन्द्र तिरस्कृत करता है।

यस्यावधीत्पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते।

वेतीद्वस्य प्रयता यतकरो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः॥४॥

अन्वय- शक्र (इन्द्र·) यस्य पितर यस्य मातर यस्य भ्रातरम् अवधीत् अत. (दूर) न ईषते। इत् अस्य प्रयता (हवीषि) वेत। यतकर वस्व (इन्द्र) किल्विषात् न ईषते।

अनुवाद- समर्थ (इन्द्र) ने जिसके पिता जिसकी माता जिसके भाई को मार डाला उससे (दूर) नही जाता। अपितु इसके प्रदान किये गये (हव्य) की कामना करता है। शासक धनवान (इन्द्र) पाप से भयभीत नही होता।

न पचभिर्दशभिर्वष्ट्यारभ नासुन्वता सचते पुष्यता चन।
जिनाति वेदमुया हंति वा धुनिरा देववु भजति गोमति व्रजे॥५॥

अन्वय- इन्द्र (शत्रुहननाय) पञ्चभिः दशभि (जनाना) आरभ न वष्टि (सोमम्) असुन्वता (बन्धून्) च न पुष्यता (यजमान) न सचते वाधुनिः अमुया जिनाति इत् हन्ति वा देवयुत (यजमान) गोमति व्रजे आ भजति।

अनुवाद- इन्द्र (शत्रुओ को मारने के लिये) पाँच दस (लोगो की) सहायता की कामना नही करता। (सोम) अभिषुत न करने वाले और (बन्धुओ का) पोषण न करने वाले (यजमान) के साथ संयुक्त नही होता अपितु इसे जीतता है और मारता है। देवता की कामना करने वाले (यजमान) को गोयुक्त गोशाला से सयुक्त करता है।

वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः।
इद्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः॥६॥

अन्वय- समृतौ (शत्रून्) वित्वक्षणः (रथ-) चक्रमासजः (सोमम्) असुन्वता विषुण. सुन्वत· वृध, विश्वस्य दमिता, विभीषण· अर्यः इन्द्र दास यथावश नयति।

अनुवाद- युद्ध मे (शत्रुओ को) क्षीण करने वाला, (रथ) चक्र को सयुक्त करने वाला (सोम) अभिषव न करने वाले से पराङ्मुख, अभिषव करने वाले को बढाने वाला, सबका दमन करने वाला, अत्यन्त भयकर, श्रेष्ठ इन्द्र दास को इच्छानुसार वश मे करता है।

समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनर वसु।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत्॥७॥

अन्वय- ईम् (इन्द्रः) पणे· भोजन मुषे सम् अजति। दाशुषे सूरिन वसु वि भजति। यः जनः अस्य तविषीम् अचुक्रुधत् (तान्) विश्व पुरु दुर्गे चन आ ध्रियते।

अनुवाद- यह (इन्द्र) पणि के भोजन को चुराने के लिये जाता है। दानशील मेधावी को धन देता है। जो इसके बल को क्रोधित करता है (उन) सबको बहुत से दुर्ग मे डाल देता है।

सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसाववेदिंद्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु।
युज ह्यऽन्यमकृत प्रवेपन्युदी गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः॥८॥

अन्वय- यत् सुधनौ विश्वशर्धसौ जनौ शुभ्रिषु गोषु (प्रतिद्वन्द्विनौ) सम् उषेत् मघवा इन्द्रः अन्यत् हि (याज्ञिक) यजुम् अकृत। सत्त्वभिः (मेघ) धुनिः (शत्रून) प्रवेपनी (इन्द्रः) ईम् गव्यम् उत् सृजते।

अनुवाद- जब शोभनधन वाले, व्याप्त बल वाले दो लोगो को शुभ्र गायो के लिये (प्रतिद्वन्दी) समझकर धनवान इन्द्र अन्य (यज्ञ करने वाले) की सहायता करता है। बलद्वारा (मेघ) को कँपाने वाला (शत्रुओ को) कँपाने वाला (इन्द्र) इस (यजमान) को गोसमूह देता है।

सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः।

तस्मा आपः सयतः पीपयत तस्मिंक्षत्रममवत्त्वेषमस्तु॥६॥

अन्वय- अग्ने ! (इन्द्र !) अर्यः (अहम्) सहस्रासाम् उपमा के तुम् अग्निवेश शत्रि गृणीषे। आपः तस्मै सयत पीपयन्त तस्मिन् क्षत्रम् अभवत् त्वेषम् अस्तु।

अनुवाद- हे दीप्तिवान ! (इन्द्र!) श्रेष्ठ (मैं) अपरिमित धन के दाता, उपमायोग्य, प्रज्ञापक अग्निवेश के पुत्र शत्रि की स्तुति करता हूँ। जल उसे भलीभाँति जाकर तृप्त करे। उसका धन बलयुक्त दीप्तिवान हो।

सूक्त - (३५)

देवता- इन्द्र, ***ऋषि***- प्रभुवसुराङ्गिरस, ***छन्द***- अनुष्टुप्, ८ पङ्क्ति।

यस्ते साधिष्ठोऽवस इंद्र क्रतुष्टमा भर। अस्मभ्यं चर्षणीसह सस्निं वाजेषु दुष्टरम्॥१॥

अन्वय- इन्द्र ! ते यः साधिष्ठः क्रतुः (अस्ति) चर्षणिसह, सस्निं, वाजेषु दुस्तर तम् अस्मभ्यम् आ भर।

अनुवाद- हे इन्द्र ! तुम्हारा जो साधकतम कर्म (है) मनुष्यो को अभीभूत करने वाले, शुद्ध, युद्ध मे अनभिभनीय उसको हमे भलीभाँति दो।

यदिंद्र ते चतस्रो यच्छूर संति तिस्रः। यद्वा पंच क्षितीनामवस्तत्सु न आ भर॥२॥

अन्वय- शूर ! इन्द्र ! यत् ते चतस्रः (वर्णेषु) यत् तिस्रः (लोकेषु) यत् वा पञ्चक्षितीनाम् अवः (साधनानि) सन्ति तत् सु न आ भर।

अनुवाद- हे वीर ! इन्द्र ! जो तुम्हारा चार (वर्णो) मे जो तीन (लोको) मे और जो पञ्चजनो मे रक्षा (साधन) है उन्हे भलीभाँति हमे प्रदान करो।

आतेऽवो वरेण्यं वृषंतमस्य हूमहे। वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिंद्र तुर्वणिः॥३॥

अन्वय- इन्द्र ! वृषन्तमस्य ते वरेण्यम् अवः (वयम्) आ हूमहे। वृषजूतिः (शत्रून) तुर्वाणि (इन्द्र) आभूमि (मरुद्भि सह) हि जज्ञिस।

अनुवाद- हे इन्द्र ! कामनासेचक तुम्हारे वरणीय रक्षा का (हम) आह्वान करते है। वृष्टिकर्ता (शत्रु-) हिसक (इन्द्र) सवव्यापी (मरुतो के साथ) प्रकट होता है।

वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः। स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिंद्र पौंस्यम्॥४॥

अन्वय- (इन्द्र !) (त्व) वृषा हि असि। वृष्णि ! ते शवः राधसे जज्ञिषे। इन्द्र ! मन. ते स्वक्षत्रम् (अस्ति) (ते) पौंस्य (शत्रूणा) धृषत् सत्राह (च) (अस्ति)।

अनुवाद- हे इन्द्र ! (तुम) वर्षा कराने वाले हो। हे कामनासेचक ! तुम्हारा बल समृद्धि के लिये उत्पन्न हुआ। हे इन्द्र ! मन तुम्हारे अपने नियन्त्रण मे (है) (तुम्हारा) पौरुष (शत्रुओ का) दमन करने वाला है (और) सघविनाशक (है)।

त्व तमिंद्र मर्त्यममित्रयतंमद्रिवः। सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवस्पते॥५॥

अन्वय- अद्रिव ! शतक्रतो ! शवस्पते ! इन्द्र ! त्वम् अमित्रयता मर्त्य (विरुद्ध) सर्वरथा नि याहि।

अनुवाद- हे वज्रधारिन् ! हे शतक्रतो ! हे बलपते ! इन्द्र ! तुम मित्रता न रखने वाले मनुष्य के (विरुद्ध) सर्वव्यापक रथ से जाते हो।

त्वामिद्वृत्रहंतम जनासो वृक्तबर्हिषः। उग्र पूर्वीषु पूर्व्य हवंते वाजसातये॥६॥

अन्वय- वृत्रहन्तम् ! (इन्द्र !) उग्र पूर्वीषु पूर्व्य त्वम् इत् वृक्तबर्हिषः जनासः वाजसातये हवन्ते।

अनुवाद- हे वृत्रहन्ता (इन्द्र !) उग्र, प्राचीनो मे प्राचीन तुम्हारा कुशासन बिछाने वाले मनुष्य युद्ध मे आह्वान करते है।

अस्माकमिंद्र दुष्टर पुरोयावानमाजिषु। सयावान धनेधने वाजयंतमवा रथम्॥७॥

अन्वय- इन्द्र ! दुस्तरम् आजिषु पुरोयावानं सयावान धने धने वाजयन्तम् अस्माक रथम् अव (रक्ष)।

अनुवाद- हे इन्द्र ! कठिनाई से पार होने योग्य, युद्ध मे अग्रगामी, अनुचरो के साथ जाने वाले, धन की इच्छा करने वाले हमारे रथ की (रक्षा करो)।

अस्माकमिंद्रेहि नो रथमवा पुरध्या।

वय शविष्ठ वार्य दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे॥८॥

अन्वय- इन्द्र ! अस्माकम् आ इहि। पुरध्या नः रथम् अव (रक्ष)। शविष्ठ ! वय दिवि त्वयि वार्य श्रवः दधीमहि दिवि (च) (त्वयि) स्तोत्र मनामहे।

अनुवाद- हे इन्द्र ! हमारी ओर आओ। शोभन वृद्धि से हमारे रथ की (रक्षा करो)। हे बलशालिन् ! हम प्रदीप्त तुममे वरणीय अन्न स्थापित करते है (और) प्रदीप्त (तुम्हारे लिये) स्तोत्र बनाते है।

सूक्त - (३६)

देवता- इन्द्र, *ऋषि*- प्रभुवसुराङ्गरस, **छन्द**- त्रिष्टुप्, ३ जगती।

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातु दामनो रयीणम्।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम्॥१॥

अन्वय- य वसूना दातु चिकितत्, रयीणा दामनः (अस्ति) सः इन्द्रः (अस्मद्यज्ञम्) आ गमत्। धन्वचर वसग न तृषाण चकमान (इन्द्र) दुग्धम् अशु पिबतु।

अनुवाद- जो धन देना जानता है, धन का दाता (है) वह इन्द्र (हमारे यज्ञ मे) आये। धनुषयुक्त, वन मे जाने वाले की भाँति तृषित, मस्त होता हुआ (इन्द्र) अभिषुत सोम का पान करे।

आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत्सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन् गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे॥२॥

अन्वय- हरिव! शूर । (इन्द्र !) पर्वतस्य पृष्ठे न शिप्रे ते हनू सोमः आ रूहत्। पुरुहूत । राजन् । (तृणादिभि· तृप्त·) अर्वत· न गीभि· त्वा अनु हिन्वन् विश्वे (वय) मदेम।

अनुवाद- हे अश्वयुक्त ! वीर ! (इन्द्र !) पर्वत के शिखर की भाँति सहारक तुम्हारे कपोल पर सोम आरोहण करे। हे बहुस्तुत ! हे राजन । (तृणादि से तृप्त हुये) अश्व की भाँति स्तुतियो द्वारा तुझे तृप्त करते हुये (हम) हर्षित हो।

चक्रं न वृत्त पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन्पुरुवसुः॥३॥

अन्वय- पुरुहूत ! अद्रिवः ! (इन्द्र !) वृत चक्र न मे मनः अमतेः भिया वेपते। सदावृध । पुरुवसु· । रथात् अधि (स्थित) त्वा कुवित् स्तोत्रेन जरिता नु स्तोषत्।

अनुवाद- हे बहुस्तुत । वज्रवान ! इन्द्र । गोल चक्र की भाँति मेरा मन दरिद्रता के भय से काँपता है। हे सर्वदा वर्धमान । प्रभूत धनवाले । रथ पर (स्थित) तुम्हारी बहुत (स्तोत्रो) से स्तोत । स्तुति करता है।

एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः।
प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेन.॥४॥

अन्वय- इन्द्र । एष· जरिता ग्रावा इव ते वाचम् इयर्ति। मघवन् ! हरिवः (इन्द्र !) बृहत् (फलम्) आशुषाण (त्व) सत्येन राय प्र यासि दक्षिणात् प्र (यासि) (अस्मान्) विवेन· मा कुरु।

अनुवाद- हे इन्द्र ! यह स्तोता प्रस्तर की भाँति तेरी स्तुति करता है। हे धनवान ! अश्वयुक्त (इन्द्र !) बहुत से (फल) प्रदान करने वाला (तू) दाहिने हाथ से धन देता है, दाहिने से (देता है) (हमे) विफलमनोरथ मत करो।

वृषो त्वा वृषणं वर्धतु द्यौर्वृषा वृषभ्या वहसे हरिभ्याम्।

स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन्भरे धा॥५॥

अन्वय- (इन्द्र) वृषा द्यौः वृषणं त्वा वर्धतु। वृषा (त्व) वृषभ्या हरिभ्या (यज्ञ) वहसे। सुशिप्र ! वृषक्रतो ! वज्रिन ! स वृषा वृषरथ (त्व) भरे नः वृषा धा।

अनुवाद- (इन्द्र !) वर्षक द्युलोक कामनासेचक तुम्हे बढाये। बलवान (तुम) बलवान अश्वो द्वारा (यज्ञ मे) लाये जाते हो ! हे सुशिप्र ! वर्षणकारी ! वज्रधर ! वह बलवान, बलवान रथ वाले (तुम) सङ्ग्राम मे हमे बल दो।

यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनीवान्त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट।

यूने समस्मै क्षितयो नमंता श्रुतरथाय मरुतो दुवोया॥६॥

अन्वय- मरुत ! वाजिनीवान! य (श्रुतरथः) सचमानौ रोहितौ वाजिनौ त्रिभिः शतैः (गवाम्) अदिष्ट। अस्मै यून श्रुतरथाय क्षितय दुवोया सम् नमन्ताम्।

अनुवाद- हे मरुतो ! अन्नवान जिस (श्रुतरथ) ने साथ चलने वाले लोहित वर्ण के दो अश्व, तीन सौ (गाये) दी। उस तरुण श्रुतरथ को प्रजाये सेवाभाव से नमस्कार करे।

सूक्त - (३७)

देवता- इन्द्र, ***ऋषि***- भौमोऽत्रि, ***छन्द***- त्रिष्टुप्।

स भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः।

तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इंद्राय सुनवामेत्याह॥१॥

अन्वय- घृतपृष्ठ स्वञ्चाः आजुहवानः (अग्निः) सूर्यस्य भानुना सम् यतते। यः 'इन्द्राय सुनवाम' इति आह तस्मै उषस अमृधा (सन्) वि उच्छन्।

अनुवाद- तेजस्वी ज्वालाओ वाला, शोभनगति वाला, भलीभाँति आहूत (अग्नि) सूर्य की किरणो से प्रतिस्पर्धा करता है। जो 'इन्द्र के लिये होम करो' यह कहता है उसके लिये उषा अहिंसित (होकर) प्रकाशित होती है।

समिद्धाग्निर्वनवत्स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते।

ग्रावाणो यस्यैषिरं वदत्ययदध्वर्युर्हविषाव सिंधुम्॥२॥

अन्वय- समिद्धाग्निः स्तीर्णबर्हिः (यजमान) वनवत् युक्तग्रावा सुतसोम· जराते। यस्य ग्रावाण इषिर वदन्ति (स) अध्वर्यु· हविषा सिन्धुम् अव (गच्छति)।

अनुवाद- अग्नि को समिद्ध करने वाला कुश ।बिछाने वाला (यजमान) सम्भजन करता है। प्रस्तर को सयुक्त करने वाला स्तुति करता है। जिसका प्रस्तर मधुर शब्द करता है (वह) अध्वर्यु हवि के साथ नदी मे अवगाहन (करता है)।

वधूरिय पतिमिच्छंत्यैति य ई वहाते महिषीमिषिराम्।

आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरु सहस्रा परि वर्तयाते॥३॥

अन्वय- इय वधू पतिम् इच्छन्ती एति य (अयम् इन्द्र·) ईम् इषिरा महिषी वहाते। अस्य (इन्द्रस्य) रथ (न) आ श्रवस्यात् आ घोषात् च (सः) पुरु सहस्रा (धनानि) परि (अस्मान्) वर्तयाते।

अनुवाद- यह पत्नी पति की इच्छा करती हुयी जाती है जो (यह इन्द्र) इस गमनशीला महिषी को वहन करता है। इस (इन्द्र) का रथ (हमारी) ओर अन्न लाता है और शब्द करता है (वह) अपरिमित (धन) चारो ओर से (हमे) प्राप्त कराये।

न स राजा व्यथते यस्मिन्निंद्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम्।

आ सत्वनैरजति हंति वृत्र क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन्॥४॥

अन्वय- यस्मिन् (यज्ञे) इन्द्रः गोसखाय तीव्र सोम पिबति सः राजा न व्यथते (स.) सत्वनैः आ अजति, वृत्र हन्ति, क्षिती क्षेति, सुभग. (सन्) (इन्द्रस्य) नाम पुष्यन्।

अनुवाद- जिसके (यज्ञ) मे इन्द्र दुग्धमिश्रित मधुर सोम पीता है वह राजा व्यथित नही होता (वह) प्रजाओ द्वारा सर्वत्र गमन करता है, शत्रु को मारता है, प्रजाओ की रक्षा करता है, सौभाग्य से युक्त (होकर) (इन्द्र के) स्तोत्र का पोषण करता है।

पुष्यात्क्षेमे अभि योगे भवात्युभे वृतौ सयती सं जयाति।

प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति य इंद्राय सुतसोमो ददाशत्॥५॥

अन्वय- यः इन्द्राय सुतसोमः ददाशत् (स·) सूर्ये प्रियः अग्ना प्रियः भवाति (बन्धून्) पुष्यत्, योगे (धनस्य) क्षेमे अभि भवति। वृतौ सयती उभे (अहोरात्र) सम् जयति।

अनुवाद- जो इन्द्र को अभिषुत सोम देता है (वह) सूर्य का प्रिय, अग्नि का प्रिय होता है। (बन्धुओ का) पोषण करता है। अप्राप्त (धन) की रक्षा मे समर्थ होता है वर्तमान नियत दोनो (दिनरात्रि) को जीतता है।

सूक्त - (३८)

देवता- इन्द्र, *ऋषि*- भौमोऽत्रि, *छन्द*- अनुष्टुप्।

उरोष्टं इन्द्र राधसो विभ्वीरातिः शतक्रतो। अधा नो विश्वचर्षणो द्युम्ना सुक्षत्र मंहय॥१॥

अन्वय- शतक्रतो ! इन्द्र ! उरोः ते राधसः रातिः विभ्वी (अस्ति) अध विश्वचर्षणे !सुक्षत्र ! (इन्द्र !) (त्वम्) नः द्युम्ना (धनानि) मंहय।

अनुवाद- हे शतक्रतो ! इन्द्र ! महान तुम्हारे धन का दान व्यापक (है) अतः हे सर्वदर्शिन्! सुधन ! (इन्द्र !) (तुम) हमे तेजस्वी (धन दो)।

यदीमिंद्र श्रवाय्यमिषं शविष्ठ दधिषे। पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम्॥२॥

अन्वय- शविष्ठ ! इन्द्र ! यत् (त्व) श्रवाय्यम् इष दधिषे। हिरण्यवर्ण ! दुस्तरं दीर्घश्रुत (तदन्न) पप्रथे।

अनुवाद- हे बलशालिन् ! इन्द्र ! जो (तुम) श्रवणीय अन्न धारण करते हो। हे हिरण्यवर्ण ! कठिनाई से प्राप्त होने योग्य प्रख्यात (वह अन्न) फैल रहा है।

शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः। उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः॥३॥

अन्वय- अद्रिवः ! (इन्द्र !) ये शुष्मासः मेहना केतसापः (मरुतः सन्ति) ते (त्वदीयः) (सन्ति)। उभा देवौ अभिष्टये दिवः च ग्मः च राजथ।

अनुवाद- हे वज्रधर ! (इन्द्र !) जो बलवान, महान प्रज्ञापक (मरुद्गण हैं) वे (तुम्हारे) (हैं)। दोनो देवता स्वेच्छानुसार द्युलोक और पृथिवीलोक पर शासन करते है।

उतो नो अस्य कस्य चिद्दक्षस्य तव वृत्रहन्।
अस्मभ्यं नृम्णमा भरास्मभ्यं नृमणस्यसे॥४॥

अन्वय- वृत्रहन् ! (वय) तव अस्य दक्षस्य (स्तुवन्ति) अस्मभ्यं नः कस्य चित् नृम्णम् आ भर। (यतः त्वम्) अस्मभ्य नृमनस्यसे।

अनुवाद- हे वृत्रहन्ता ! (हम) तुम्हारे इस बल की (स्तुति करते हैं) हमे किसी का भी धन लाकर दो (क्योकि तुम) हमे धनवान करना चाहते हो।

नू त आभिरभिष्टिभिस्तव शर्मञ्छतक्रतो।
इंद्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः॥५॥

अन्वय- शतक्रतो ! (अस्माकम्) अभि. ते अभिष्टिभि. वय सुगोपाः स्याम। शूर ! इन्द्र ! तव शर्मन् (वयम्) सुगोपाः स्याम।

अनुवाद- हे शतक्रतो ! (हमारे) प्रति तुम्हारी सहायता से हम शीघ्र समृद्ध हो। हे वीर ! तेरे सुख से (हम) सुरक्षित हो।

सूक्त - (३६)

देवता- इन्द्र, ***ऋषि***- भौमोऽत्रि, ***छन्द***- अनुष्टुप्, ५ पङ्क्ति।

यदिंद्र चित्र मेहनास्ति त्वादांतमद्रिवः। राधस्तन्नों विदद्वस उभयाहस्त्या भंर॥१॥

अन्वय- चित्र ! अद्रिव इन्द्र ! यत् मेहना, त्वादात राधः अस्ति। विद्वसो ! तत् न· उभयाहस्ति आ भर।

अनुवाद- हे चयनीय ! वज्रवान ! इन्द्र ! जो महान तुम्हारे द्वारा दिया जाने वाला धन है हे लब्धधने ! वह हमे दोनो हाथो से दो।

यन्मन्यंसे वरेंण्यमिंद्रं द्युक्ष तदा भंर। विद्याम तस्यं ते वयमकूंपारस्य दावनें॥२॥

अन्वय- इन्द्र ! यत् द्युक्ष त्व वरेण्य मन्यसे तत् नः आ भर ! वय ते तस्य अकूपारस्य (अन्नस्य) दावने (पात्रा·) विद्याम।

अनुवाद- हे इन्द्र ! जिस अन्न को तुम वरणीय मानते हो वह हमे प्रदान करो। हम तुम्हारे उस अकुत्सित (अन्न) के दान के (पात्र) हो।

यत्ते दित्सु प्रराध्य मनो अस्तिं श्रुतं बृहत्। तेनं दृळ्हा चिंदद्रिव आ वाजं दर्षि सातयें॥३॥

अन्वय- (इन्द्र !) ते यत् दित्सु प्रराध्य श्रुत बृहत् मनः अस्ति दृळ्हा चित् तेन (मनसा) (नः) सातये वाजम् आ दर्षि।

अनुवाद- (हे इन्द्र !) तुम्हारा जो दानेच्छु, स्तवनीय, विश्रुत महान मन है दृढ उस (मन) से (हमे) लाभ के लिये अन्न प्रदान करो।

मंहिंष्ठं वो मघोना राजांनं चर्षणीनाम्। इद्रमुप प्रशंस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरंः॥४॥

अन्वय- मघोना महिष्ठ, चर्षणीना राजानम् इन्द्र प्रशस्तये वः गिरः पूर्वीभिः (स्तुतीभि·) जुजुषे।

अनुवाद- धनवानो मे सर्वाधिक धनवान, मनुष्यो के राजा इन्द्र की तुम्हारे स्तोता पूर्व (स्तुतियो) द्वारा सेवा करते है।

अस्मा इत्काव्यं वचं उक्थमिंद्रांय शंस्यंम्।

तस्मां उ ब्रह्मवाहसे गिरों वर्धत्यत्रंयो गिरंः शुंभत्यत्रंयः॥५॥

अन्वय- अस्मै इत् इन्द्राय काव्य वचः उक्थ (च) शस्यम्। ब्रह्मवाहसे तस्मै (इन्द्राय) अत्रय· गिरः वर्धन्ति अत्रयः गिर शुम्भन्ति।

अनुवाद- इस इन्द्र के लिये काव्य, वाणी (और) स्तोत्र उच्चरित हुआ है। स्तोत्र वाहक उस (इन्द्र) को अत्रिगोत्रोत्पन्न स्तोत्रो से बढाते है, अत्रिगोत्रोत्पन्न स्तोत्रो से दीप्त करते है।

सूक्त - (४०)

देवता- १-४ इन्द्र, ५ सूर्य, ६-९ अत्रि, ***ऋषि***- भौमोऽत्रि, **छन्द**- १ - ३ उष्णिक्, ५, ९ अनुष्टुप्, ४, ६, ८, त्रिष्टुप्।

आ याह्यद्रिभिः सुत सोम सोमपते पिब। वृषन्निंद्र वृषभिर्वृत्रहतम॥१॥

अन्वय- वृषन् ! वृत्रहन्तम ! इन्द्र ! (त्वम्) (अस्मद्यज्ञ) आ याहि। वृषभि (मरुद्‌भिः सह) सोमपते ! अद्रिभिः सुत सोम पिब।

अनुवाद- हे बलवान ! वृत्रहन्ता ! इन्द्र ! (तुम) (हमारे यज्ञ मे) आओ। फलवर्षी (मरुतो के साथ) हे सोमपते ! प्रस्तर से अभिषुत सोम पियो।

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः। वृषन्निंद्र वृषभिर्वृत्रहंतम॥२॥

अन्वय- वृषन् ! वृत्रहन्तम ! इन्द्र ! वृषा ग्रावा वृषा मदः वृषा अय सुतः सोमः (अस्ति) (त्व) वृषभिः (मरुद्‌भिः सह) (त पिब)।

अनुवाद- हे बलवान ! वृत्रहन्ता ! इन्द्र ! अभिषव करने वाले प्रस्तर से अभिषुत, मादक यह अभिषुत सोम (है) (तुम) बलवान (मरुतो के साथ) (उसे पियो)।

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः। वृषन्निंद्र वृषभिर्वृत्रहतम॥३॥

अन्वय- वज्रिन् ! वृषन् ! वृत्रहन्तम ! इन्द्र ! वृषा (अह) वृषण त्वा चित्राभिः ऊतिभिः वृषभिः (मरुद्‌भिः सह) हुवे।

अनुवाद- हे वज्रिन् ! बलवान ! वृत्रहन्ता ! इन्द्र ! अभिलाषी (मै) बलवान तुम्हारा विचित्र रक्षा वाले, फलवर्षी (मरुतो के साथ) आह्वान करता हूँ।

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यंदिने सवने मत्सदिंद्रः॥४॥

अन्वय- ऋजीषी, वजी, वृषभः, तुराषाट् (शत्रूणां) शुष्मी, राजा, वृत्रहा, सोमपावा इन्द्रः हरिभ्याम् (रथे) युक्त्वा अर्वाङ् उप यासत् (आगत्य च) माध्यन्दिने सवने (सोमेन) मत्सत्।

अनुवाद- तीव्रगामी, वज्रवान, कामनासेचक शीघ्रगामी (शत्रु-) सहारक, शासक, वृत्रहन्ता, सोमपायी इन्द्र अश्वो को (रथ मे) युक्त करके हम लोगो के समीप आये (और आकर) माध्यन्दिन सवन मे (सोम द्वारा) मस्त हो।

यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः। अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः॥५॥

अन्वय- सूर्य ! यत् त्वा स्वार्भानुः असुरः तमसा अविध्यत् (तदा) यथा अक्षेत्रवित् मुग्धः (भवति) (तथैव विश्वा) भुवनानि अदीधयु।

अनुवाद- हे सूर्य ! जब तुम्हे स्वर्भानु असुर ने अन्धकार से आच्छन्न कर लिया था (तब) जिस प्रकार अपने स्थान को न जानने वाला मूढ (हो जाता है) (उसी प्रकार समस्त) लोक दिख रहा था।

स्वर्भानोरध यदिंद्र माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहन्।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविंददत्रिः॥६॥

अन्वय- इन्द्र ! अद्य यत् स्वर्भानो. दिवः (सूर्यस्य) अवः वर्तमानाः मायाः अवहन् (तदा) अपव्रतेन तमसा गूळ्ह सूर्यं तुरीयेण ब्रह्मणा अत्रिः अविन्दत्।

अनुवाद- हे इन्द्र ! इसके अनन्तर जब स्वर्भानु की दिव्य (सूर्य) के नीचे स्थित माया को नष्ट किया (तब) व्रतविधातक अन्धकार से परिच्छिन्न सूर्य को चार ऋचाओ से अत्रि ने प्रकाशित किया।

मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत्।
त्व मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा॥७॥

अन्वय- अत्रे ! तव सन्तम् इम मा द्रुग्ध (असुरः) इरस्या भियसा (वा) मा निगारीत् (त्व) वरुण· (च) तौ मा इह अवतम्। त्व मित्र सत्यराधा· राजा च असि।

अनुवाद- हे अत्रे ! तुम्हारे रहते इस मुझे द्रोही (असुर) भोजनच्छा (अथवा) भय के कारण न निगल ले। (तुम) (और) वरुण तुम दोनो मेरी यहाँ रक्षा करो। तुम मित्र, सत्यधनाश्व और पालक हो।

ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन् कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन्।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत्॥८॥

अन्वय- ब्रह्मा अत्रिः ग्राव्णः युयुजानः कीरिणा देवान् सर्पयन्, नमसा उपशिक्षन्, सूर्यस्य चक्षु· (मण्डल) दिवि आ अधात् स्वर्भानो (च) मायाः अप अघुक्षत्।

अनुवाद- ब्रह्मा अत्रि ने पत्थरो को सयुक्त करते हुये स्तोत्र से देवताओ की पूजा करते हुये, नमस्कार से प्रसन्न करते हुये सूर्य के चक्षु (मण्डल) को अन्तरिक्ष मे स्थापित किया (और) स्वर्भानु की माया को दूर किया।

य वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः। अत्रयस्तमन्वविदन्नह्यऽन्ये अशक्नुवन्॥९॥

अन्वय- य वै सूर्यं स्वर्भानु· असुर तमसा अविध्यत् तम् (सूर्यम्) अत्रय· अनु अविन्दन् अन्ये (जना·) (त) नहि अशक्नुवन्।

अनुवाद- जिस सूर्य को स्वर्भानु असुर ने अन्धकार से आच्छन्न किया उस (सूर्य) को अत्रियो ने प्राप्त किया अन्य (लोग) (उसे) नही प्राप्त कर सके।

सूक्त (४१)

देवता- विश्वेदेवा , ***ऋषि***- भौमोऽत्रि, ***छन्द***- जगती, विराट्, त्रिष्टुप्

को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान्।।१।।

अन्वय - मित्रावरुणौ ! कः नु वाम् ऋतयन् (शक्नुयाति)। (युवाम्) दिवः वा महः पार्थिवस्य वा ऋतस्य (अन्तरिक्ष्स्य) वा सदसि नः त्रासीथाम्। (हविः) दे यज्ञयते (यजमानाय) (युवा) पशुसः न (पुष्ट) वाजान् (प्रयच्छथ.)।

अनुवाद - हे मित्रावरुणौ ! कौन तुम्हारे यज्ञ की इच्छा करता हुआ (समर्थ नही होता है।) (तुम दोनो) द्युलोक महान पृथिवीलोक अथवा शाश्वत (अन्तरिक्ष) स्थान से हमारी रक्षा करो। (हवि) - दानी यज्ञ करने वाले (यजमान) को (तुम) पशु की भाँति (पुष्ट) अन्न (देते हो)।

ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषत।
नमोभिर्वा ये दधते सुवृक्ति स्तोम रुद्राय मीळ्हुषे सजोषाः।।२।।

अन्वय - ये मीळहुषे रुद्राय (सह) सजोषाः (स्तोत्र) दधते। ते मित्रः, वरुणः, अर्यमा, आयु, इन्द्र, ऋभुक्षाः, मरुतः नः सुवृक्ति स्तोम (हविः) वा नमोभिः जुषन्त।

अनुवाद - जो सुखदायक रुद्र के साथ प्रेमपूवर्क (स्तोत्र को) धारण करते है। वे मित्र, वरुण, अर्यमा, वायु, इन्द्र, ऋभुक्षगण, मरुत हमारे शोभन स्तोत्र अथवा (हवि को) नमस्कार पूर्वक सेवन करे।

आ वा येष्ठाश्विना हुवध्यै वातस्य पत्मन्रथ्यस्य पुष्टौ।
उत वा दिवो असुराय मन्म प्राधांसीव यज्यवे भरध्वम्।।३।।

अन्वय - अश्विना ! येष्ठा वा वातस्य (न) पत्मन् रथस्य पुष्टौ आ हुवध्यै उत वा (ऋत्विजः !) दिवे· असुराय यज्यवे (रुद्राय) अन्धांसि इव मन्म (स्तोत्रम्) प्र भरध्वम्।

अनुवाद - हे अश्विनौ ! नियन्त्रक तुम दोनो का वायु (की भाँति) वेगवान रथ के लिये आह्वान करता हूँ (और) (हे ऋत्विजो !) कान्तिवान, प्राणदाता, यजनीय (रुद्र) के लिये अन्न की भाँति मननीय (स्तोत्र) को सम्पादित करो।

प्र सक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजि न जग्मुराश्वश्वतमाः।।४।।

अन्वय - सक्षण, कण्वहोता, विश्वभोजा, दिव्य, त्रित (लोके व्यापक) दिव (सह) सजोषा वात, अग्नि, पूषा, भग अश्वतमा. (सन्त) आजि न (गन्तार.) प्रभृथे प्र जग्मु।

अनुवाद - सेवक, तेजस्वी, मेधावियो द्वारा आवाहित सर्वरक्षक, तीनो (लोको मे व्यापक) सूर्य (के साथ) प्रीतियुक्त होकर वायु, अग्नि, पूषा, भग, तीव्रगामी अश्वयुक्त (होकर) सग्राम मे (जाने वाले की) भाँति यज्ञ मे जाते है।

प्र वो रयि युक्ताश्वं राय एषेऽवसे दधीत धीः।
सुशेव एवैरौशिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुराणाम्॥५॥

अन्वय - मरुत ! युक्ताश्व रयि व प्र भरध्वम्। रायः एषे अवसे (च) (स्तोता) धी दधीत। (मरुत !) एवाः ये तुराणाम् (अश्वा सन्ति) एवै· औशिजस्य होता (अत्रि) सुशेव (भवतु)।

अनुवाद- हे मरुतो ! अश्वयुक्त धन हमे प्रदान करो। धन की प्राप्ति (तथा) रक्षा के लिये (स्तोता) स्तुति धारण करे। (हे मरुतो !) इस प्रकार के जो तीव्रगामी (अश्व है) उनसे उशिजपुत्र होता (अत्रि) सुखी (हो)।

प्र वो वायु रथयुज कृणुध्व प्र देव विप्रं पनितारमर्कैः।
इषुध्यवं ऋतसापः पुरंधीर्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः॥६॥

अन्वय - (ऋत्विजः !) प्र देव, विप्र, पनितार, वायु व अर्कैः रथयुज प्र कृणुध्वम्। इषुध्यव·, ऋतसाप, पुरन्धीः, वस्वी (देव) - पत्नीः अत्र (यज्ञे) नः धिये (निष्पत्तये) आ धुः।

अनुवाद - (हे ऋत्विजो !) कान्तिवान, मेधावी, स्तवनीय वायु को तुम स्तुतियो से रथयुक्त करो। गमनशीला, यज्ञग्रहणशीला, रूपयुक्त, प्रशसनीय (देव-) पत्नियाँ इस (यज्ञ) मे हमारे कर्म की (निष्पत्ति के लिये) आगमन करे।

उप व एषे वद्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवाश्चितयद्भिरर्कैः।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम्॥७॥

अन्वय- उषानक्ता ! शूषैः चितयद्भिः अर्कै. वन्द्येभिः (देवैः सह) (वयम्) व· (हवि) उप एषे। यह्वी. (यूय) विदुषी इव विश्व यज्ञ मर्त्याय आ वहत·।

अनुवाद - हे उषानक्ता ! सुखकर, ज्ञापक स्तोत्रो द्वारा वन्दनीय (देवो के साथ) (हम) तुम्हे हवि पहुँचाते है। महनीय (तुम) विदुषी की भाँति समस्त यज्ञ की ओर मनुष्य को लाती हो।

अभि वो अर्चे पोष्यावतो नॄन्वास्तोष्पतिं त्वष्टार रराणः।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभिर्वनस्पतीरोषधी राय एषे॥८॥

अन्वय - नून् पोष्यवत., वस्तो. पति, त्वष्टारम्, धन्या, सजोषा., धिषणा, वनस्पतीन्, ओषधी व. राय एषे (अह) नमोभि रराण अभि अर्चे।

अनुवाद - नेता, पोषक, सभी के स्वामी त्वष्टा को, धनदायक, आनन्ददायक वाणी को, वनस्पतियो तथा ओषधियो को तुम सबकी धन - प्राप्ति के लिये (मै) नमस्कार द्वारा आनन्दित करते हुये अर्चना करता हूँ।

तुजे नस्तने पर्वताः सतु स्वैतवो ये वसवो न वीराः।

पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शसं नर्यो अभिष्टौ॥६॥

अन्वय - वसव· न वीरा· ये पर्वताः (सन्ति) (ते) न तने तुजे स्वैतव· सन्तु। नः पनित· आप्त्य· यजत नर्य· (हित) (देवा·) अभिष्टौ न· शस वर्धात्।

अनुवाद - वसुओ की भाँति वीर जो मेघ (है) (वे) हमारे पुत्र की वृद्धि के लिये शोभनगमनशील हो। हमारे द्वारा स्तुत्य, ज्ञानी, यजनीय, मनुष्यो के (हितकारक) (देवता) यज्ञ मे हमारी स्तुति को बढ़ाये।

वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपा सुवृक्ति।

गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना॥१०॥

अन्वय - (वय) वृष्ण· भूम्यस्य गर्भ (स्थित) अपा नपात सुवृक्ति (स्तोत्रेण) अस्तोषि। त्रितः (व्यापकः) अग्निः (मयि) एतरि शूष (रश्मिभिः) न गृणीते (किन्तु) शोचिष्केशः (सन्) वना नि रिणीते।

अनुवाद - (हम) वर्षक भूमि के गर्भ (मे स्थित) अपा नपात की शोभन (स्तोत्रो) से स्तुति करते है। तीनो लोको मे (व्यापक) अग्नि (मेरे) गमनकाल मे सुखकर (ज्वालाओ) से हिंसित नही करता (किन्तु) प्रदीप्त ज्वाला-युक्त (होकर) वनो को नष्ट करता है।

कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय।

आप ओषधीरुत नोऽवंतु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः॥११॥

अन्वय - (वयमत्रय) महे रुद्रियाय (मरुद्गणय) कथा (स्तुतीः) ब्रवाम। राये चिकितुषे भगाय कत् (स्तुती· ब्रवाम)। आप , ओषधी , द्यौ, वना, वृक्षकेशाः गिरय· उत नः अवन्तु।

अनुवाद - (हम अत्रि) महान रुद्रपुत्र (मरुद्गण) के लिये ज्ञानवान भग के लिये किस प्रकार (स्तुति बोले)। धन को जानने वाले भग के लिये किस प्रकार (स्तुति बोले)। जल, वनस्पति, द्यौस्, वन, वृक्षरूप पर्वत भी हमारी रक्षा करे।

शृणोतु न ऊर्जा पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा।

शृण्वत्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रेः॥१२॥

अन्वय - ऊर्जा पतिः, नभ. तरीयान्, इषिर, परिज्मा (यः वायुः अस्ति) सः न गिर शृणोतु। पुर न शुभ्रा बबृहीाणस्य अद्रे परि स्रुच आपः (न गिरः) शृणवन्तु।

अनुवाद - बल का स्वामी, आकाश मे गमन करने वाला (जो वायु है) वह हमारी स्तुति सुने। नगर की भाँति शुभ्र, विशाल पर्वत के चारो ओर बहने वाला जल (हमारी स्तुति को) सुने।

विदा चिन्नु महातो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः।
वयश्चन सुभ्व१आव यंति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः॥१३॥

अन्वय - महान्त । (मरुतः !) नु चित् (नः स्तोत्र) विद। दस्माः ! वः एवाः ये वार्य (हविः) दधाना (स्तुतिम्) ब्रवाम। वयश्चन क्षुभा अनुयत मर्त वधस्नैः (परिहरन्तः) (मरुतः) सूभ्वः (सन्) (नः) आ अव यन्ति।

अनुवाद - हे महान्! (मरुत!) शीघ्र (हमारे स्तोत्र को) जानो। हे दर्शनीय ! तुम्हारे मार्ग को जानने वाले हम वरणीय (हवि) को धारण करते हुये (स्तुति) बोलते है। अश्वगन्ता, क्षुब्ध होकर आने वाले मनुष्य को शस्त्र से (मारकर) (मरुत) प्रवृद्ध (होकर) (हमारे) समीप आते है।

आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मापश्चाच्छा सुमखाय वोचम्।
वर्धंतां द्यावो गिरश्चंद्राग्रा उदा वर्धतामभिषाता अर्णाः॥१४॥

अन्वय - दैव्यानि पार्थिवानि जन्म अपः च अच्छ सुमखाय (मरुद्गणाय) (वय) (गिरः) आ वोचम्। (नः) गिरः चन्द्रग्रा (च) द्याव वर्धन्ताम्। (मरुद्भिः) अभिसाताः अर्णाः उदा वर्धन्ताम्।

अनुवाद - देवसम्बन्धी, पृथिवी-सम्बन्धी, जन्म और जललाभ के लिये शोभनयज्ञवाले (मरुद्गण) के लिये (हम) (स्तुति) कहते है। (हमारी) वाणी और आह्लाददायक द्युलोक वर्द्धमान हो। (मरुतो द्वारा परिपुष्ट नदियाँ जलपूर्ण हो।

पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरुत्री वा शक्रा या पायुभिश्च।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिभिर्ऋजुहस्त ऋजुवनिः॥१५॥

अन्वय - शक्रा पायुभि च (नः) वरुत्री वा या मे जरिमा (अस्ति) (सा) पदे पदे निधायि। सूरिभि ऋजुहस्ता, ऋजुवानि मही माता न स्मत् रसा भूमिः (नः) सिसक्तु।

अनुवाद - समर्थ और रक्षासाधनो से (हमारी) रक्षा करने वाली जो मेरी स्तुति (है) (वह) सर्वत्र व्याप्त है। मेधावियो द्वारा अनुकूल हस्त वाली, कल्याणदायक, विशाल निर्मात्री हमारे द्वारा स्तुत सारभूता (भूमि) (हमे) सीचे

कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ।
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः॥१६॥

अन्वय - सदानूनृ मरुतः (वय) नमसा कथा दशेम। एवया अच्छोक्तैः मरुत (कथा दशेम)। प्रश्रवसः (अहम्) अच्छोक्तैः मरुत (कथा दशेम)। अहिर्बुध्न्यः (देवः) नः रिषे मा धात् (सः) अस्माकम् उपमातिवानिः धात्।

अनुवाद - शोभनदानवाले मरुतो की (हम) नमस्कार द्वारा किस प्रकार परिचर्या करे। इसप्रकार वर्तमान कथन द्वारा (मरुतो की किस प्रकार परिचर्या करे)। प्रभूतअन्न-वाला (मै) वर्तमान कथन द्वारा मरुतो की (किस प्रकार परिचर्या करूँ)। अहिर्बुध्न्य (देवता) हमसे द्वेष न रखे। (वह) हमारे शत्रुओ का हन्ता हो।

इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो वनते मर्त्यो वः।
अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरा चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत॥१७॥

अन्वय - देवास. ! मर्त्यः प्रजायै वः इति नु चित् वनते। देवासः। मर्त्यः वः पशुमत्यै वनते। अत्र (यज्ञे) निऋति (देव) शिवा धासि मे अस्याः तन्वः जरा जग्रसीत।

अनुवाद - हे देवताओ ! मनुष्य सन्तान के लिये तुम्हारी इस प्रकार शीघ्र स्तुति करते है। हे देवताओ ! मनुष्य तुम्हारी पशुओ के लिये स्तुति करते है। इस (यज्ञ) मे निऋति (देवता) कल्याणकारी अन्न से मेरे इस शरीरे के बुढ़ापे को निगल ले।

ता वो देवाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसवः शसा गोः।
सा नः सुदानुर्मृळयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः॥१८॥

अन्वय - वसवः ! देवाः ! वः ता शसा गोः (वयम्) सुमतिम् ऊर्जयनतीम् इषम् अश्याम् सुदानुः सा देवी नः सुविताय मृळयन्ती द्रवन्ती (न.) प्रति गम्या।

अनुवाद - हे वासयिता ! देव ! तुम्हारी उस स्तवनीय गाय से (हम) सुमतिप्रद पोषक अन्न को प्राप्त करे। शोभनदानशीला वह देवी हमारे सुख के लिये हर्षित होती हुयी गतिशील होती हुयी (हमारे) पास आये।

अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः॥१९॥

अन्वय - यूथस्य माता उर्वशी इळा नदीभिः (सह) न. स्मत् वा अभि गृणातु। बृहाद्दिवा उर्वशी प्रभृथस्थ आयोः गृणाना (तेजसा) (च) अभि ऊर्णवाना (अस्ति)।

अनुवाद - गोसघ की माता उर्वशी (माध्यमिकी वाक्) इळा (भूमि) नदियो (के साथ) हमारी स्तुति को गृहण करे। प्रभूतदीप्तिवाली उर्वशी तेजस्वी यजमान की प्रशसा करने वाली (और) (तेज द्वारा) आच्छादित करने वाली (हैं)।

सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः॥२०॥

अन्वय - ऊर्जव्यस्य (राज्ञः) पुष्टेः (देवा) नः सिसक्तु।

अनुवाद - ऊर्जव्य (राजा) के पोषण के लिये (देवता) हमारा साथ दे।

सूक्त (४२)

देवता- विश्वेदेवा , ***ऋषि***- भौमोऽत्रि, ***छन्द***- त्रिष्टुप्, एकपदा विराट्।

प्र शतमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः।
पृषद्योनिः पंचहोता शृणोत्वतूर्तपथा असुरो मयोभुः॥१॥

अन्वय - (अस्माकम्) शतमा गीः (हविष्य) दीधती (सह) वरुणम्, मित्रम्, भगम्, अदिमि् नून प्र अश्याः। पृषद्योनि, पञ्चहोता, अतूर्तपन्थाः, असुरः मयोभु (वायुः) (स्तोत्रम्) शृणोतु।

अनुवाद - (हमारी) सुखकारी स्तुति (हविष्यरूप) कर्म (के साथ) वरुण, मित्र, भग, अदिति को निश्चित रूप से प्राप्त हो। विविध वर्णवाले (अन्तरिक्ष) मे निवास करने वाले, पञ्चवायु के साथ, अप्रतिहतगतिवाले, प्राणदायक, सुखप्रद (वायु) (स्तोत्र को) सुने।

प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात्सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम्।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु॥२॥

अन्वय - हृद्य सुशेव च मे स्तोमम् अदितिः सूनु (प्रतिगृहतः) माता न प्रति जगृभ्यात्। यत् ब्रह्मप्रियम्, देवहितम् यत् मयोभु अस्ति (तत् स्तोत्रम्) अहं मित्रे वरुणे (च) प्रापयामि।

अनुवाद - हृदयगम और सुखकर मेरे स्तोत्र को अदिति पुत्र को (ग्रहण करती हुयी) माता की भाँति ग्रहण करे। जो ब्रह्मप्रिय, देवग्राह्य जो सुखकर है (उस स्तोत्र) को मित्र और वरुण को प्रदान करता हूँ।

उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चंद्राणि देवः सविता सुवाति॥३॥

अन्वय - (ऋत्विजः !) (यूय) कवीना कवितमम् (सवितारम्) उदीरय। एनम् (देवम्) मध्वा घृतेन अभि उनत्त। सः देवः सविता न प्रयता, हितानि चन्द्राणि (च) वसूनि सुवाति।

अनुवाद - (हे ऋत्विजो !) (तुम) क्रान्तदर्शियो मे सर्वाधिक क्रान्तदर्शी (सविता) को उद्दीप्त करो। इस (देवता) को मधुर घृत से अभिसिञ्चित करो। वह देव सविता हमे प्रवर्द्धक, हितकर (और) आह्लादक धन प्रदान करता है।

समिंद्र णो मनंसा नेषि गोभिः स सूरिर्भिर्हरिवः स स्वस्ति।

सं ब्रह्मणा देवहिंत यदस्ति स देवानां सुमत्या यज्ञियांनाम्॥४॥

अन्वय - इन्द्र ! (त्वम्) स मनसा नः गोभिः स नेषि। हरिवः ! (त्वम्) सूरिभिः स्वस्ति (च) (नेषि)देवहिंत यत् अस्ति (तत्) ब्रह्मणा (नः) सम् (नेषि)। यज्ञियाना देवाना सुमत्या (नः) सम् (नेषि)।

अनुवाद - हे इन्द्र ! (तुम) शोभन मन से हमे गायो से सयुक्त करो। हे उत्तम अश्वयुक्त ! (तुम) विद्वानो (और) कल्याण से (हमे) सयुक्त (करो) देवहितकर जो है (उस) ज्ञान से (हमे) (सयुक्त करो) यज्ञार्ह देवताओ की सुमति मे (हमे सयुक्त) (करो)।

देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य संजितो धनानाम्।

ऋभुक्ष वाजं उत वा पुरंधिरवंतु नो अमृतासस्तुरासः॥५॥

अन्वय - देवः भगः, सविता, रायः (स्वामी) अशः, वृत्रस्य (हन्ता) धनाना (च) सजितः इन्द्रः, ऋभुक्षाः, वाजः, पुरन्धिः उत् वा (इति) अमृतासः (देवासः) (अस्मद्यज्ञम्) तुरासः (सन्तः) नः अवन्तु।

अनुवाद - दिव्य भग, सविता, धन के (स्वामी) त्वष्टा, वृत्र के (हन्ता) (और) धन के सयोजक इन्द्र, ऋभुगण, वाज तथा विभु (आदि) अमर (देवता) (हमारे यज्ञ मे) शीघ्रता से आगमन (करते हुये) हमारी रक्षा करे।

मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरजूर्यतः प्र ब्रवामा कृतानि।

न ते पूर्वे मघवन्नापरासो न वीर्यं१नूतनः कश्चनाप॥६॥

अन्वय - (वय) मरुत्वतः अप्रतीतस्य जिष्णोः अजुर्यतः (इन्द्रस्य) कृतानि प्र ब्रवाम। मघवन् ! (इन्द्र !) ते वीर्य न पूर्णे न नूतनः (पुरुषः) न अपरासः कश्चन आप।

अनुवाद - (हम) मरुतयुक्त, अप्रतिगत, जयशील, अजीर्णमान (इन्द्र) के कार्यो को भलीभाँति कहते है। हे दानी ! (इन्द्र !) तुम्हारे पराक्रम को न पहले न नवीन (पुरुष) ने न अन्य किसी ने प्राप्त किया है।

उप स्तुहि प्रथम रत्नधेय बृहस्पतिं सनितारं धनानाम्।

यः शंसते स्तुवते शंभविष्ठः पुरुवसुरागमज्जोहुवानम्॥७॥

अन्वय - य स्तुवते शभविष्ठः, जोहुवन पुरुवसुः आगमत् (त) प्रथम, रत्नधेयम् धनाना सनितार बृहस्पतिम् (अन्तरात्मन् !) स्तुहि।

अनुवाद- जो स्तवन करने वाले स्तोता को सुखप्रदान करने वाला, हवन करने वाले को प्रभूत धन देने वाले है (उस) प्रकृष्टतम, रत्न देने वाले, धन के सरक्षक बृहस्पति की (हे अन्तरात्मन्!) स्तुति करो।

तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीरा.।

ये अश्वदा उत वा संति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः॥८॥

अन्वय- बृहस्पते ! तव ऊतिभिः सचमानाः (मनुष्याः) अरिष्टाः मघवानः सुवीरा · (भविन्त)। ये (यजमाना·) अश्वदा उत वा गोदा· वस्त्रदा च सन्ति तेषु सुभगाः रायः (सम्भवन्ति)।

अनुवाद- हे बृहस्पते ! तुम्हारी रक्षा से युक्त (मनुष्य) अहिंसित धनवान एवम् उत्तम पुत्र युक्त (होते है)। जो (यजमान) अश्व देने वाले अथवा जो गाय देने वाले और वस्त्र देने वाले है उनमे उत्तम धन (सस्थापित हो)।

विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषा ये भुंजते अपृणंतो न उक्थैः।

अपव्रतान्प्रसवे वावृधानान्ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व॥९॥

अन्वय- (बृहस्पते !) ये नः उक्थैः (धनम्) अपृणन्तः (स्वयमेव) भुञ्जन्ते एषा वित्त विसर्माण कृणुहि। अपव्रतान् प्रसवे ववृधानान् ब्रह्मद्विष· (तान्) सूर्यात् यवयस्व।

अनुवाद- (हे बृहस्पते !) जो हम स्तोताओ को (धन) न प्रदान करते हुये (स्वय ही) सेवन करते है उनके धन को विसरणशील करो। व्रत न करने वाले मन्त्रद्वेषी (उन) को सूर्य से दूर करो।

य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात।

यो वः शंमीं शशमानस्य निंदात्तुच्छ्याकन्कामान्करते सिष्विदान॥१०॥

अन्वय- मरुतः ! यः देववीतौ रक्षसः ओहते यः वः शशमानस्य (अस्माकम्) शमी निन्दात् (आत्मान च) सिस्वदानः तुच्छान् कामान् करते तम् अचक्रेभिः (रथेन)·नि यात।

अनुवाद- हे मरुतो ! जो यज्ञ मे राक्षसो को बुलाता है, जो तुम्हारी स्तुति करते हुये (हमारी) स्तुति की निन्दा करता है (और स्वय को) क्लेश देता हुआ तुच्छ भोग करता है उसको चक्रहीन (रथ) से नष्ट कर दो।

तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य।

यक्ष्वा महे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य॥११॥

अन्वय- य स्विषु·, सुधन्वा (अस्ति) यः विश्वस्य भेषजस्य क्षयति तम् (रुद्रम्) (आत्मन् !) स्तुहि। महे सौमनसाय (आत्मन् !) असुर देव रुद्र नमोभिः यक्ष्व दुवस्य (च)।

अनुवाद- जो शोभन बाण शोभन - धनुष वाला (है) जो समस्त ओषधियो का स्वामी है उस (रुद्र) की (हे अन्तरात्मन् !) स्तुति करो। महान शोभनचित्त के लिये (हे आत्मन् !) प्राणदायक दिव्य रुद्र का नमस्कार द्वारा यजन करो (तथा) सेवा करो।

दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यतीर्वरिवस्युतु शुभ्राः॥१२॥

अन्वय- ये दमूनस अपस सुहस्ता (ऋभव) (सन्ति), वृष्ण. (इन्द्रस्य) पत्नी. विभ्वतष्टा सरस्वती (इति) नद्य उत शुभ्रा राका (देवी) दशस्यन्ती· (अस्मभ्यम्) वरिवस्यन्तु।

अनुवाद- जो दानशील, कर्मनिष्ठ, शोभन हाथो वाले (ऋभुगण) (हैं), वर्षक (इन्द्र) की पत्नी विभुकृत् सरस्वती (आदि) नदियाँ अथवा शुभ्र राका (देवियाँ) कामना प्रदान करती हुयी (हमें) धन प्रदान करे।

प्र सू महे सुशरणाय मेधा गिरं भरे नव्यसी जायमानाम्।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिद नः॥१३॥

अन्वय- य आहना (इन्द्र·) दुहितुः (पृथिव्या हिताय) रूपा वक्षणासु मिमानाः इदम् (जलम्) न अकरोत्। महे, सुशरणाय (तस्मै) (इन्द्राय) (अह) मेधा नव्यसी जायमाना गिर प्र भरे।

अनुवाद- जिस वर्षक (इन्द्र) ने कन्या (पृथिवी) के लिये विविधवर्णी नदियो को प्रकट करते हुये इस (जल) को हमे दिया। महान, शोभन शरणदाता (उस) (इन्द्र) को मै बुद्धिपूर्वक नवीन उत्पन्न वाणी प्रदान करता हूँ।

प्र सुष्टुतिः स्तनयंतं रुवंतमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः॥१४॥

अन्वय - य· अब्दिमान् उदीनमान् (पर्जन्य·) विद्युता (सह) रोदसी उक्षमाण. प्र इर्यति। स्तनयन्त, रुवन्त (मेघम्) जरित । (युष्माक) सुस्तुति· नून प्र अश्याः।

अनुवाद- जो जलदायी, जलयुक्त (मेघ) विद्युत (के साथ) द्युलोक एव पृथिवीलोक को सिञ्चित करते हुये गमन करता है। गर्जन करते हुये, शब्दमान (मेघ) के पास हे स्तोताओ (तुम्हारी) शोभन स्तुति शीघ्र पहुँचे।

एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः॥१५॥

अन्वय- (मया सम्पादिता) एषः स्तोम रुद्रस्य युवन्यून् सूनून् मारूता शर्ध· अच्छ उत् अश्या·। (मे मनः) काम· मा स्वस्ति राये हवते। (मन· !) प्रषदश्वान् (यज्ञम्) उप अयास (देवान्) स्तुहि।

अनुवाद- (मेरे द्वारा सम्पादित) यह स्तोत्र रुद्र के तरुण पुत्र मरुतो के बल के पास भलीभाँति पहुँचे। (मेरे मन की) कामना मुझे कल्याणकारी धन के प्रति प्रेरित करती है। (हे मन!) विविधवर्णी अश्वयुक्त (यज्ञ) की ओर आते हुये (देवताओ) की स्तुति करो।

प्रैष स्तोमः पृथिवीमंतरिक्ष वनस्पैंतीरोषधी राये अश्याः।

देवादेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात्॥१६॥

अन्वय- राये (मे) एष· स्तोम· पृथिवीम्, अन्तरिक्षम्, वनस्पतीन् ओषधी (च) प्र अश्या। देवोदेव मह्य सुहव भूतु। माता पृथिवी दुर्मतौ न मा धात्।

अनुवाद- धनार्थ (मेरा) यह स्तोत्र पृथिवी, अन्तरिक्ष, वनस्पतियो (एवम्) ओषधियो के पास पहुँचे। समस्त देवता मेरे लिये शोभन् आह्वान करने वाले हो। माता पृथिवी दुर्मति मे हमे न स्थापित करे।

उरौ देवा अनिबाधे स्याम॥१७॥

अन्वय- देवा ! (वयम्) अनिबाधे उरौ (सुखे) स्याम।

अनुवाद- हे देवता ! (हम) निरन्तर निर्विघ्न (सुख) मे रहे।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।

आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि॥१८॥

अन्वय- (वयम्) अश्विनोः नूतनेन मयोभुवा सुप्रनीती अवसा (च) सम् गमेम। अमृता ! (अश्विनौ !) (युवा) न रयिम् आ वहतम्, वीरान् आ (वहतम्) विश्वानि उत सौभगानि आ (वहतम्)।

अनुवाद- (हम) अश्विनौ की नूतन सुखकर कृपा (और) रक्षा से सयुक्त हो। हे अमर ! (अश्विनौ !) (तुम) हमे धन प्रदान करो, पुत्र (प्रदान करो) और समस्त सौभाग्य (प्रदान करो)।

सूक्त (४३)

देवता- विश्वेदेवाः , ***ऋषि***- भौमोऽत्रि, ***छन्द***- त्रिष्टुप्, १६ एकपदा विराट्

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धतीरुप नो यंतु मध्वा।

महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति॥१॥

अन्वय - तूर्ण्यर्था धेनव. मध्वा पयसा अमर्धन्तीः नः उप आ यन्तु। महः राये. विप्र जरिता मयोभव· बृहती सप्त (नद्य) जोहवीति॥

अनुवाद- द्रुतगामिनी नदियाँ मधुर जल के साथ अहिंसित होती हुयी हमारे समीप आये। महान धन के लिये मेधावी स्तोता कल्याणकारिणी विशाल सात (नदियो) का आह्वान करे।

आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे।

पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम्॥२॥

अन्वय- (अह) राये (च) अमृधे द्यावा पृथिवी आ वर्तध्यै। मधुवचा. सुहस्ता यशसौ पिता माता (द्यावापृथिव्यौ) भरे भरे न अविष्टाम्।

अनुवाद - (मै) धन के लिये शोभनस्तुति (तथा) पृथिवी लोक को आवर्तित करने की इच्छा करता हूँ। प्रियवचन बोलने वाले, शोभन हाथो वाले यशस्वी, पालक, निमात्री (द्यावा-पृथिवी) प्रत्येक सग्राम मे हमारी रक्षा करे।

अध्वर्यवश्चकृवासो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम्।

होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय॥३॥

अन्वय- अध्वर्यव ! (यूय) मधूनि (सोमाज्यादीनि) चक्रवासः चारूशुक्रं (च सोमम्) वायवे प्र भरत। देव! (वायो !) होता इव न (अभिषुतस्य) अस्य (सोमस्य) (त्व) प्रथमः पाहि। ते मदाय (वय) मध्वः (सोम) रश्मि।

अनुवाद- हे अध्वर्युओ ! (तुम) मधुर (सोमाज्यादि) बनाते हुए सुन्दर दीप्ति (उस सोम) को वायु प्रदान करो। हे देव ! (वायो !) होता की भैंति हमारे द्वारा (अभिषुत) इस (सोम) का (तुम) सर्वप्रथम पान करो। तुम्हारे हर्ष के लिये (हम) मादक सोम देते हैं।

दश क्षिपो युंजते बाहू आद्र सोमस्य या शेमितारा सुहस्ता।

मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठा चनिश्चद्दुदुहे शुक्रमशुः॥४॥

अन्वय- (सोमाभिषवे) (अध्वर्योः) दश-क्षिपः अद्रि युन्जन्ते। या सोमस्य शमितारा सुहस्ता बाहू (स्त·) (तौ) (अपि युञ्जेते) चनिश्चदत् गिरिस्थाम् अशुः शुक्र मध्वः (सोमम्) रस दुदुहे।

अनुवाद- (सोमाभिषव मे) (अध्वर्युओ की) दस उँगलियाँ प्रस्तर से सयुक्त होती हे। जो सोम को अभिषुत करने वाले शोभनहस्त युक्त भुजाये (है) (वे भी सयुक्त होती है)। शोभनहस्त वाले (अध्वर्यु) प्रसन्न होते हुए पर्वत स्थित व्याप्त, निर्मल, मधुर (सोम) रस का दोहन करते है।

असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय।

हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिद्र प्रिया कृणुहि हूयमान·॥५॥

अन्वय- (इन्द्र !) (सोम) जुजुषाणाय ते क्रत्वे, दक्षाय, बृहते मदाय सोम· आसवि। इन्द्र ! हूयमान (त्वम्) सुधुरा, प्रिया हरी रथे योगे अर्वाङ् कृणुहि।

अनुवाद- (हे इन्द्र !) (सोम्) पानेच्छु तुम्हारे पराक्रम, बल महान मद के लिए सोम अभिषुत किया जाता है। हे इन्द्र ! आह्वाहित होते हुए (तुम) शोभन धुरियुक्त प्रिय अश्वो को रथ मे सयुक्त कर हमारे अभिमुख करो।

आ नो महीमरमतिं सजोषा ग्ना देवीं नमसा रातहव्याम्।

मधोर्मदाय बृहतीमृतज्ञामाग्ने वह पथिभिर्देवयानैः॥६॥

अन्वय- महीम् अरमतिं, बृहतीम् , ऋतज्ञां नमसा रातहव्याम् ग्ना देवीम् अग्ने ! सजोषाः (त्वम्) मधोः (सोमस्य) मदाय देवयानैः पथिभिः आ वह।

अनुवाद- महती, सर्वगामिनी, प्रवृद्धा, ऋत को जानने वाली, नमस्कार द्वारा प्राप्त हव्य वाली गमनशीला देवियो को हे अग्ने ! प्रीति युक्त होकर (तुम) मधुर (सोम) के मद के लिए देवगामी मार्ग से ले आओ।

अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः।

पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि॥७॥

अन्वय- वपावन्तम् (पशुम्) न अग्निना तपन्तः प्रथयन्तः न यम् (यज्ञकुण्ड) विप्रा अध्वर्यव अञ्जन्ति। उपसि प्रेष्ठ पुत्र पितु न (तत्) धर्मः ऋतयन् अग्निम् आ असादि।

अनुवाद- प्रवृद्ध (पशु) की भाँति अग्नि द्वारा तप्त मानो विस्तृत हुये जिस (यज्ञकुण्ड) की मेधावी (अध्वर्यु) स्तुति करते है, गोद मे बैठे पुत्र के पिता की भाँति (वह) कुण्ड यज्ञकामना से अग्नि को धारण करता है।

अच्छा मही बृहती शंतमा गीर्दूतो न गंत्वश्विना हुवध्यै।

मयोभुवा सरथा यातमर्वाग्गंतं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम्॥८॥

अन्वय - अश्विना ! हुवध्यै मही बृहती शतमा (नः) गीः दूतः न (युवाम्) अच्छ गन्तु। गन्त (रथस्य। धुर नाभिम् आणिः न (महत्वपूर्णो) मयोभुवा सरथा युवाम्(निधिम्)सोमम्(अर्वाक् आ यातम्।

अनुवाद - हे अश्विनौ ! आह्वान के लिए महान, विशाल सुखदायक (हमारी) स्तुति दूत की भँति (तुम्हारे) समक्ष जाये। जाते हुए (रथ) की धुरी की नाभि की कील की भाँति (महत्वपूर्ण) सुखदायक, समान रथ वाले (तुम दोनो) निहित (सोम) के समक्ष आ जाओ।

प्र तव्यसो नमउक्तिं तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि।

या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन्॥९॥

अन्वय- या (पूषावायू) राधसा मतीना चोदितारा या वाजस्य त्मन् उत द्रविणोदौ (स्तः) तव्यसः तुरस्य पूषणः वायो उत अह नमोक्ति प्र अदिक्षि।

अनुवाद- जो (पूषावायू) धन के लिये बुद्धि को प्ररित करने वाले जो बल अथवा स्वय धनप्रदाता (हैं) बलवान, वेगवान पूषण और वायु के लिए मै नमस्कारयुक्त वाणी उच्चरित करता हूँ।

आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः।

यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गंत मरुतो विश्व ऊती॥१०॥

अन्वय- जातवेद ! (अग्ने !) हुवा· (त्वम्) (इन्द्रवरुणोयादि·) नामभिः, रूपेभिः विश्वान् (देवान् सह) आ वक्षि। मरुतः ! च विश्वे विश्वे (यूयम्) जरितु· सुस्तुति गिर· यज्ञम् उती (सह) आ गन्त।

अनुवाद- हे जातवेदस् ! (अग्ने!) आह्वाहित (तुम) (इन्द्रवरुणादि) नाम के विविध् वर्णी समस्त (देवताओ) को आह्वाहित करते हो। हे मरुतो ! समस्त (तुम) स्तोता की सुस्तुतियुक्त वाणी वाले यज्ञ मे रक्षा के (साथ) आओ।

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गंतु यज्ञम्।

हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु॥११॥

अन्वय- अजता सरस्वती दिवः बृहत. (च) पर्वतात् नः यज्ञम् आ गन्तु। घृताची (सा) देवी नः हव जुजुषाणा (घृतम्) उशती (नः) शग्मा वाच शृणोतु।

अनुवाद- यजनीया सरस्वती द्युलोक (एव) विशाल पर्वत से हमारे यज्ञ मे आये। घृतयुक्त (वह) देवी हमारे आह्वान से प्रसन्न होती हुयी (घृत) सिञ्चित करती हुयी हमारी हमारी वाणी को सुने।

आ वेधस नीलपृष्ठं बृहतं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम्।

सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम॥१२॥

अन्वय- (ऋत्विजः !) यूयम् वेधसम्, नीलपृष्ठम्, बृहन्तम्, बृहस्पतिं (यज्ञ) सदने आ सादयध्वम्। दमे सादयद्योनिम् आदीदिवासम्, हिरण्यवर्णम्, अरूष (तं बृहस्पतिम्) सपेम।

अनुवाद- (हे ऋत्विजो !) (तुम) विविधकर्त्ता, स्निग्धाङ्ग विशाल वृहस्पति को (यज्ञ-) ग्रह मे स्थापित करो, यज्ञग्रह मे स्थपित, सर्वतः दीप्तिवान, स्वर्णिम-वर्ण वाले, तेजस्वी (उस बृहस्पति) की सेवा करो।

आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः।

ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृंगो वृषभो वयोधाः॥१३॥

अन्वय- धर्णसि., बृहत् दिव ग्नाः (ज्वाला·) ओषधीः (न) वसान·, त्रिधातुशृङ्ग· (कामनानाम्) वृषभ·, वयोधा (अग्नि) हुवान· रराण विश्वेभि. ओमभिः आ गन्तु।

अनुवाद- धरक, प्रभूतदीप्ति वाला, गमनशील (ज्वालाओ वाला) ओषधिः (रूप) वस्त्र वाला, त्रिवर्णी ज्वालाओ वाला, (कामना) सेचक, अन्नदाता (अग्नि) आहूत होने पर आनदित होता हुआ समस्त रक्षणो के साथ आये।

मातुष्पदे परमे शुक्र आयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन्।

सुशेव्य नमसा रातहव्याः शिशुं मृजंत्यायवो न वासे॥१४॥

अन्वय- आयो. रास्पिरासः विपन्यवः मातुः (पृथिव्याः) शुक्रे परमे पदे (उत्तरवेद्याम्) अग्मन्। वासे सम्मार्जित· शिशु न आयव सुशेव्यम् (अग्निम्) नमसा मृजन्ति।

अनुवाद- मनुष्य के प्राप्तदान वाले स्तोता माता (प्रथिवी) के दीप्त परम स्थान (उत्तर वेदी) मे आये है। वस्त्र से (सम्मार्जित) शिशु की भँति मनुष्य सुखकर (अग्नि) को नमस्कार द्वारा सम्मार्जित करते है।

बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचंत।

देवोदेवः सुहवो भूतु मह्य मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात्॥१५॥

अन्वय- अग्ने ! धियाजुरः (अवाम्) मिथुनासः बृहत तुभ्य बृहत् वयः सचन्त। देवोदेव· (अग्निः) मह्य सुहवः भूतु। माता पृथिवी न दुर्मतौ मा धात्।

अनुवाद- हे अग्ने ! कर्म से जीर्ण (हम) युगल (पति-पत्नी) विशाल तुम्हे प्रचुर अन्न प्रदान करते है। देवताओ का देव (अग्नि) मेरे लिये सरलता से आह्वान योग्य बनें। माता पृथिवी हमे दुर्मति मे न लगाये।

उरौ देवा अनिबाधे स्याम॥१६॥

अन्वय- देवा ! (वयम्) उरौ अनिबाधे (सुखे) स्याम।

अनुवाद- हे देवताओ ! (हम) निरन्तर निर्विघ्न (सुख) मे रहे।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।

आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि॥१७॥

अन्वय- (वयम्) अश्विनोः नूतनेन मयोभुवा सुप्रनीति अवसा (च) सम् गमेम्। अमृता। (अश्विनौ !) (युवाम्) न रयिम् आ वहत, वीरान् आ (वहतम्) विश्वानि उत सौभगानि आ (वहतम्)।

अनुवाद- (हम) अश्विनो की नूतन सुखकर कृपा (और) रक्षा से सयुक्त हो। हे अमर। (अश्विनौ !) (तुम) हमे धन प्रदान करो, पुत्र (प्रदान करो) और समस्त सौभाग्य (प्रदान करो)।

सूक्त - (४४)

देवता- विश्वेदेवा, ***ऋषि***- काश्यपोऽवत्सार·, ***छन्द***- जगती, १४, १५, त्रिष्टुप्।

त प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठातातिं बर्हिषदं स्वर्विदम्।

प्रतीचीन वृजनं दोहसे गिराशु जयंतमनु यासु वर्धसे॥१॥

अन्वय- प्रत्नथा, पूर्वथा, इमथा, विश्वथा (स्तुतम्) ज्येष्ठतातिम्, बर्हसदम्, प्रतीचीनम्, बृजनम्, आशुम्, जयन्तम् तम् (इन्द्रम्) (हे अन्तरात्मन् !) यासु (सः) वर्धसे (तासु) गिरा दोहसे।

अनुवाद - प्रचीन, पूर्वज, वर्तमान सभी द्वारा (स्तुत) सबमे ज्येष्ठ, यज्ञस्थ, सुख के ज्ञाता, सनातन, बलवान, शीघ्रता से जीतने वाले उस (इन्द्र) की (हे अन्तरात्मन् !) जिससे (वह) बढे (उस) वाणी से कामना पूर्ण करो।

श्रिये सुदृशीरुपरस्य याः स्वर्विरोचमानः ककुभामचोदते।

सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते॥२॥

अन्वय- इन्द्र ! स्व· विरोचमानः (त्वं) अचोदते उपरस्य याः सुदृशीः (आपः सन्ति) (तासा) प्राणिना श्रिये (सर्वासा) ककुभाम् (प्रसरति)। सुक्रतो ! सुगोपाः (त्वम्) (प्राणिना) दभाय न असि। मायभि· परः ते नाम ऋते (लोके) आस।

अनुवाद- (हे इन्द्र !) द्युलोक मे दीप्त होते हुये (तुम) प्रेरक मेघ का जो कान्तियुक्त (जल है) (उसे) प्राणियो के कल्याण के लिए (समस्त) दिशाओ मे (प्रसृत करते हो)। हे शोभनकर्मा ! सुष्ठुरक्षक (तुम) (प्राणियो की) हिसा के लिए नही हो। माया से परे तुम्हारा नाम सत्य (लोक) मे विद्यमान है।

अत्यं हविः सचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरि :।

प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः॥३॥

अन्वय- सत् धातु, अरिष्टगातुः, सहोभरिः बर्हिः अनु प्रसर्स्राण, वृषा, अजरः, शिशु युवा विस्रुहाचमध्ये हितः होता सः (अग्नि) अत्य हविः सचते।

अनुवाद- सत्यधारक, अहिंसित गमन वाल. बलप्रदाता, यज्ञ से प्रसृत होने वाला, बलवान जरारहित, शिशु, युवा एव समस्त औषधियो के मध्य स्थित होता वह (अग्नि) सतत आने वाली हवि को प्राप्त करता है।

प्र वं एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्यं ऋतावृधः।

सुयतुंभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति॥४॥

अन्वय- व (आदित्यस्य) एते (रश्मय·) सुयुजः इष्टये (यज्ञे) यामन् नीचीः (गच्छन्ती) अमुष्मै (ऐश्वर्यम्) यम्यः ऋतवृधः (सन्ति)। क्रिविः (अयमादित्यः) सुयन्तुभि सर्वशासैः अभीशुभिः प्रवणे नामानि मुषायति।

अनुवाद- इस (आदित्य) की ये (किरणे) सुसयुक्त कामनापूर्ति के लिए यज्ञगामिनी, नीचे (जाने वाली) यज्ञकर्ता को (येश्वर्य) प्रदान करने वाली, यज्ञ को प्रवृद्ध करने वाली है। कर्ता (यह आदित्य) शोभन गमन वाली, सब पर शासन करने वाली किरणो से निम्न प्रदेश के जल को चुराता है।

संजर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे॥५॥

अन्वय- ऋजुगाथ ! (अग्ने !) (त्वम्) तरूभिः सजर्भुराणः, वयाकिन सुतेगृभ चित्तगर्भासु सुस्वारू (असि) (त्वम्) धारवाकेषु शोभसे। (अग्ने !) अध्वरे जीव. (त्वम्) पत्नी (ज्वालाः) अभि वर्धस्व।

अनुवाद- हे शोभनस्तुतिवाले ! (अग्ने !) (तुम) समिधा से प्रदीप्त होते हुए लतावर्ती सोम ग्रहण करते हुए हृदय रूपी गुहा मे विचरण। करने वाले हो। (तुम) स्तुति करने वालो मे शोभित होते हो। (हे अग्ने !) यज्ञ मे जीवनदाता (तुम) पत्नीरूप (ज्वालाओ) को प्रवृद्ध करो।

यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते स छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः॥६॥

अन्वय- (एषा वैश्वेदेवी) यादृक् ददृशे तादृक् एव उच्यसे। स्रिधया छायया (सह) अप्सु आ (स्वीय रूप) सम् दधिरे। (वैश्वेदेवी) अस्मभ्य महीम् उरुषां (रयिम्) उरू ज्रयः, बृहत् सुवीर सहः (च) अनुपच्युतम्।

अनुवाद- (यह वैश्वेदेवी) जिस प्रकार दिखती है उसी प्रकार ही कही जाती है। साधिका छाया (के साथ) जल मे (अपने रूप को) भलीभाँति धारण करती है। (वैश्वेदवी) हमे पूज्य, बहुदायक (धन) प्रभूत वेग, बहुत से शोभन पुत्र (और) बल प्रदान करे।

वेत्यग्रुर्जनिवान्वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः।
घ्रंसं रक्षंतं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वावसुः॥७॥

अन्वय- अग्रुः जनिवान्, कविः, सूर्यः, समर्यता मनसा स्पृधः (असुरान्) वै अतिवेति। घ्रस गय विश्वत रक्षन्त (सूर्य वय परिचरेम)। स्ववसुः (सः) अस्माक शर्म परि वनवत्।

अनुवाद- अग्रगामी, उत्पन्न करने वाल, क्रान्तदर्शी सूर्य समरेच्छुक मन से सग्राम में (असुरो का) अतिक्रमण करता है। दीप्त अन्तरिक्ष की सब ओर से रक्षा करने वाले (सूर्य की हम परिचर्या करे)। श्रेष्ठ धनयुक्त (वह) हमे सर्वत सुख प्रदान करे।

ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वर चरति यासु नाम ते।
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत्॥८॥

अन्वय- यासु ते नाम (अस्ति) (तैः स्तुत्यैः) अस्य यतुनस्य (सूर्यस्य) ज्यायासम् ऋषिस्वर चरित। (ऋष्यः) यादृश्मिन् धायि तम् अपस्यया विदत्। यः उ (कर्म) अर करत् सः स्वय (फलम्) वहते।

अनुवाद- जिसमे तुम्हारा नाम (है) (उस स्तुतियो द्वारा) इस गमनशील (सूर्य) की प्रवृद्ध ऋषि की वाणी सेवा करती है। (ऋषिगण) जो मन मे धारण करते है उसे कर्म से प्राप्त करते है। जो (कर्म) भलीभाँति करता है (वह) स्वय (फल) प्राप्त करता है।

समुद्रमासामव तथ्ये अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबंधनी॥६॥

अन्वय- आसा (स्तुतीनाम्) अग्रिमा (अस्मदीयास्तुतिः) समुद्रम् (पर्यन्तम) अव तस्थे। यस्मिन् (यज्ञे) (स्तोत्राणाम्) आयता (क्रयते) (तत्) सवन (सूर्यः) न रिष्यति। यत्र पूतबन्धनी मतिः विद्यते (एतावत्) अत्र (यज्ञगृहे) क्रवणस्य हार्दि (कामना) न रेजते।

अनुवाद- इन (स्तुतियो) मे अतिश्रेष्ठ हमारी स्तुति समुद्र (पर्यन्त) अवस्थित होती है। जिस (यज्ञ) मे (स्तोत्रो का) विस्तार (होता है) (उस) यज्ञगृह मे (सूर्य) हिसा नही करता। जहाँ सूर्य-द्योतक बुद्धि है (ऐसे) इस (यज्ञगृह) मे स्तोता की हार्दिक (कामना) विचलित नही होती।

स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः।
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठ वाजं विदुषा चिदर्ध्यम्॥१०॥

अन्वय- स हि (सविता सर्वैः स्तुत्यः अस्ति)। क्षत्रस्य, मनस्य, एवावदस्य, यजतस्य सध्रेः अवत्सारस्य रण्वाभि· चित्तिभिः शविष्ठ, वाज विदुषा चित् अर्ध्यम् (सवितार) स्पृणवाम।

अनुवाद- वह (सविता सबके द्वारा स्तुत्य है)। क्षत्र, मनस्, एवावद, यजत, सध्रि, अवत्सार की रमणीय स्तुतियो द्वारा बलवान, अन्नदायक विद्वानो द्वारा पूज्य (सविता) की कामना की जाती है।

श्येन आसामदितिः कक्ष्यो३मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः।
समन्यमन्यमर्थयंत्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमंति ते॥११॥

अन्वय- विश्वावारस्य, यजतस्य, मायिन· (ऋषीणाम्) आसा मद श्येनः अदितिः कक्ष्य.
(पूरक अस्ति)। (विश्वावारादयः ऋषयः) (सोमम्) एतवे अन्यमन्य सम् अर्थयन्ति। ते (च) विषाण परिपानम् (सोमम्) अन्ति विदु·।

अनुवाद- विश्वावार, यजत, मायि (ऋषियो) का सोम का मद गमनशील, अतिसमृद्ध, हृदय (पूरक है)। (विश्वावारादि ऋषि) (सोम) प्राप्ति के लिये परस्पर याचना करते है (और) वे विशेष मादक पेय (सोम) को समीप से जानते है।

सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीदबवाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा।

उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गण भजते सुप्रयावभिः॥१२॥

अन्वय- यत् ईम् (देव-) गण सुप्रयावभि· यजते (ते) सदापृणः यजत· बहुवृक्तः श्रुतवित् तर्य (ऋषय.) व· (देवैः) सचा द्विष· वि वधीत्। स (ऋषिः) वरा उभा (इहलोक परलोकौ) प्रति एति भाति च।

अनुवाद- जो इस (देव-) गण की उत्तम स्तुति से उपासना करते है (वे) सदापृण, यजत, बहुवृक्त, श्रुतवित्, तर्य, (ऋषि) तुम (देवो) के साथ द्वेषियो का वध करते है। वह (ऋषि) वरणीय दोनो (इहलोक - परलोक) मे गमन करता है और प्रकाशित होता है।

सुतंभरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदचनः।
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन्॥१३॥

अन्वय- यजमानस्य (अवत्सारस्य) (यज्ञे) सतुभरः सत्पतिः (भवति) सः विश्वासाम् धियाम् ऊध उदञ्चन (च) (अस्ति)। धेनु· (यज्ञाय) रसवत् पय· शिश्रिये भरत् (च)। अनुब्रवाणः (एन) अधि एति स्वपन् न।

अनुवाद- यजमान (अवत्सार) के (यज्ञ मे) सुतभर सत्पति (होता है)। वह समस्त कर्मो का स्रोत (और) प्रकट करने वाला है गाय (यज्ञ के लिये) रसयुक्त दुग्ध धारण करती है (और) वितरित करती है। स्तुति करने वाला (इसे) प्राप्त करता है सोता हुआ नही।

यो जागार तमृचः कामयंते यो जागार तमु सामानि यंति।
यो जागार तमय सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥१४॥

अन्वय- यः (देवः) जगार तम् ऋचः कामयन्ते। यः जगार त सामानि यन्ति। यः जगार तम् अय सोम· आह (अग्ने !) तव सख्ये अह न्योका अस्मि।

अनुवाद- जो (देवता) जागृत है उसकी ऋचाये कामना करती है। जो जागृत है उसे साम प्राप्त करते है। जो जाग्रत है उससे यह सोम कहता है- '(हे अग्ने !) तुम्हारी मित्रता के लिये मै नियतस्थान पर हूँ। '

अग्निर्जागार तमृचः कामयंतेऽग्निर्जागार तमु सामानि यति।
अग्निर्जागार तमय सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥१५॥

अन्वय- अग्निः जागार (अतः) ऋचः तम् कामयन्ते। अग्निः जगार (अत·) सामानि तम् आह तव सख्ये अह न्योका अस्मि।

अनुवाद- अग्नि जागृत होता है (अतः) ऋचाये उसकी कामना करती है। अग्नि जागृत होता है (अतः) साम उसे प्राप्त करते है। अग्नि जागृत होता है। यह सोम उससे कहता है - तुम्हारी मित्रता के लिये मै नियतस्थान पर हूँ।

सूक्त (४५)

देवता- विश्वेदेवा, ***ऋषि***- सदापृणात्रेय, ***छन्द***- त्रिष्टुप्

विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गु।
अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषीर्देव आवः॥१॥

मन्त्र (१) **अन्वय**- (अङ्गिरसा) उक्थै. विदाः (इन्द्रः) दिवः अद्रिं विस्यन् आयत्या उषसः अर्चिन गु। (तम) व्रजिनी· (निशा) अप अवृत। स्वः (सूर्य) उत् गात्। (स·) देवः मानुषी दुरः वि आवरित्याव·।

अनुवाद- (अङ्गिराओ की) स्तुतियो से ज्ञापित (इन्द्र) ने द्युलोक से वज्र फेका। आगमनकारिणी उषा की किरणे फैल गयी। (अन्धकार की) पुञ्जीभूत (रात्रि) दूर हो गयी। सरणशील (सूर्य) उदित हुआ। (उस) देवता ने मनुष्यो के द्वार को व्यावृत किया।

वि सूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद्गवां माता जानती गात्।
धन्वर्णसो नद्यः खादोअर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः॥२॥

अन्वय- अमति न सूर्यः श्रिय वि सात् गवा माता (कर्त्तव्यम्) जानती (उषा) उर्वात् (अन्तरिक्षात्) आ गात्। धन्वर्णस नद्य खादो अर्णा (वहन्ति) द्यौ· सुमिता स्थूणा इव दहृत।

अनुवाद- द्रव्य की भाँति सूर्य कान्ति को धारण करता है। किरणो की माता (कर्त्तव्य को) जानने वाली (उषा) विशाल अन्तरिक्ष से आती है। गमनशीला जलयुक्त नदियाँ किनारे तक भरकर (बहती है)। द्युलोक सुष्ठुस्थापित खम्भे की भाँति दृढ होता है।

अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय।
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौराविवासंतो दसयत भूम॥३॥

अन्वय- अस्मै पूर्व्याय उक्थाय महीना जनुषे पर्वतस्य गर्भ· (जलम्) वि जिहीत। पर्वत (वि जिहीत) द्यौ (वृष्टिम्) साधत आविवासन्त· (आङ्गिरस) (आत्मान कर्मभि·) भूम दसयन्त।

अनुवाद- यह पूर्व स्तोत्र से पृथिवी की उत्पादकता के लिए पर्वत गर्भस्थ (जल) गिरता है। मेघ चलायमान होता है (द्युलोक) (वृष्टि) करता है। सर्वत्र परिचरण करने वाले (आङ्गिरस) (अपने कर्म मे) महत् रूप से लग जाते है।

सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्वग्नी अवसे हुवध्यै।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासतो मरुतो यजंति॥४॥

उत्सं आसा परमे सधस्थं ऋतस्यं पथा सरमां विद्‌दगाः॥८॥

अन्वय- महिनायाः अस्याः (उषसः) व्युषि विश्वे अङ्गिरसः गोभिः सम् नवन्त। (तदा) परमे सधस्थे आसाम् (गवाम्) उत्स (स्राव अभवत्)। ऋतस्य च पथाः सरमा गाः विदत्।

अनुवाद- महनीय इस (उषा) के उदित होने पर जब समस्त अङ्गिरा गायो से सयुक्त हुए (तब) सहस्थानवर्ती इन (गायों) का (दुग्धस्राव हुआ) और सत्यपथवाली सरमा ने गायों को प्राप्त किया।

आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे।

रघुः श्येनः पतयदधो अच्छा युवा कविर्दीदयद्‌गोषु गच्छन्॥९॥

अन्वय- सप्ताश्व· सूर्य· (नः) आ यातु यत् (इदम्) उर्विया क्षत्रम् (सूर्यस्य) दीर्घयाथे (अस्ति)। श्येनः (इव) रघु· (गमन) (सूर्य) अन्ध· (हविः) अच्छ पतयत् युवा कविः (सूर्यः) गोषु गच्छन् दीदयत्।

अनुवाद- सप्ताश्व सूर्य (हमारे) समक्ष आये क्योंकि (यह) विशाल क्षेत्र (सूर्य के) दीर्घप्रवास के लिये (है)। श्येन की (भाँति) तीव्र (-गामी) (सूर्य) प्रदत्त (हवि) के अभिमुख आता है। तरूण क्रान्तदर्शिन् (सूर्य) किरणो के मध्य प्रकाशित होता है।

आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोऽयुक्त यद्‌वरितो वीतपृष्ठाः।

उद्‌न न नावमनयंत धीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन्॥१०॥

अन्वय- यत् वीतपृष्ठा. हरितः (रथम्) अयुक्त सूर्यः शुक्रम् अर्णः आ अरूहत् (तदा) उद्‌ना (स्थितम्) नावं न (सूर्यम्) धीरा अनयन्त। (स्तुतिम्) अशृण्वतीः आप. च अर्वाक् अतिष्ठन्।

अनुवाद- जब कान्तपृष्ठाश्वों को (रथ में) सयुक्तकर सूर्य दीप्त जल पर चढ़ा (तब) जल मे (स्थित) नाव की भाँति (सूर्य) को धैर्यशालियो ने निकाला और (स्तुति को) सुनता हुआ जल निम्नस्थ हो गया।

धियं वो अप्सु दंधिषे स्वर्षां ययातंरन्दश मासो नवंग्वाः।

अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यहंः॥११॥

अन्वय- (देवा !) यया नवग्वाः दश-मासः अतरन् वः अप्सु स्वर्षाम् (ताम्) धिय दधिषे। अया धिया (वयम्) देवगोपाः स्याम। अया धिया (वयम्) अहः अति ततुर्याम।

अनुवाद- (हे देवो !) जिसके द्वारा नवग्वो ने दस मास तक अनुष्ठान किया था। हम जल के लिये सर्वदात्री (उस) स्तुति को धारण करे। इस स्तुति से (हम) देवो द्वारा रक्षणीय हो जाये। इस स्तुति से (हम) पाप का अतिक्रमण करे।

सूक्त - (४६)

देवता- १-६ विश्वेदेवा:, ७, ८, देवपत्नय, *ऋषि*- प्रतिक्षत्रात्रेय, **छन्द**- जगती, २, ८, त्रिष्टुप्।

हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम्।
नास्या वश्मि विमुच नावृतं पुनर्विद्वान्पथः पुरएत ऋजु नेषति॥१॥

अन्वय- (शकटे युक्तः) हयः न विद्वान् (यज्ञात्मिका) धुरि स्वयम् अयुजि। (अहम्) प्रतरर्णाम् अवस्युम् ताम् (धुरम्) वहामि। अस्या (धुरः) विमुच न वश्मि न (एव) चुनः आवृतम् (वश्मि)। विद्वान् (देवः) पुरएत (सन्) ऋजुः पथः नेषति।

अनुवाद- (शकट मे युक्त) अश्व की भाँति विद्वान (यज्ञात्मिका) धुरि मे स्वय को नियोजित करता है। (मै) प्रतारयित्री रक्षयित्री उस (धुरा) को धारण करता हूँ॥ इस (धुरा) को छोडना नही चाहता न (ही) पुनः धारण (करना चाहता हूँ।)। विद्वान (देव) आगे जाते हुए सरल मार्ग से ले जाता है।

अग्न इंद्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यंत मारुतोत विष्णो।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषत॥२॥

अन्वय- अग्ने ! इन्द्र ! वरुण ! मित्र ! मरुत ! विष्णो ! देवो ! उत (नः) शर्धः प्र यन्त। नासत्या उभा (अश्विनौ) रुद्र ग्ना पूषा भगः सरस्वती (अस्मदीयम् स्तुतिम्) जुषन्त।

अनुवाद- हे अग्ने ! इन्द्र ! वरुण ! देवो ! (तुम सब) (हमें) बल प्रदान करो। सत्यभूत दोनों (अश्विनौ) रुद्र, देवपत्नियाँ, पूषा, भग, सरस्वती (हमारी स्तुति का) सेवन करें।

इंद्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये॥३॥

अन्वय- (अहम्) ऊतये इन्द्राग्नी, मित्रावरुणा, अदितिम्, स्वः, पृथिवीम्, द्याम्, मरुतः, पर्वतान्, अपः, विष्णुम्, पूषणम्, बृहस्पतिम् नु शस सवितारं (च) हुवे।

अनुवाद- (मै) रक्षा के लिए इन्द्राग्नी, मित्रावरुणौ, अदिति, आदित्य, पृथिवी, द्युलोक, पर्वत, जल, विष्णु, पूषन, ब्रह्मणस्पति एव प्रशसनीय सविता का आह्वान करता हूँ।

उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत्।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विभ्वानु मसते॥४॥

अन्वय- विष्णुः उत अस्रिधः वातः उत द्रविणोदाः सोमः न मयस्करत्। उत ऋभवः उत अश्विना उत त्वष्टा उत विभ्वा न राये अनु मसते।

अनुवाद- विष्णु और अहिंसित वायु ओर धनप्रदाता सोम हमे सुख प्रदान करे। ओर ऋभुगण और अश्विनो ओर त्वष्टा और विभु हमे धन प्रदान करने के लिए स्वीकृति दे।

उत त्यन्नो मारुतं शर्ध आ गमद्दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद्वरूथ्यं१वरुणो मित्रो अर्यमा॥५॥

अन्वय- दिविक्षयम् उत यजतं त्यत् मारूत शर्धः बर्हि आसदे नः (यज्ञे) आ गमत्। बृहस्पति पूषा, मित्र·, वरुण·, अर्यमा उत न· शर्म यमत्।

अनुवाद- द्युलोक मे यजनीय मरुतो का समूह बर्हि पर बैठने के लिए हमारे (यज्ञ) मे आये। बृहस्पति, पूषा, मित्र, वरुण ओर अर्यमा हमे सुख प्रदान करे।

उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्य१स्त्रामणे भुवन्।
भगो विभक्ता शवसावसा गमदुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम्॥६॥

अन्वय- सुशस्तय· त्ये पर्वतासः सुदीप्तयः उत नद्य· नः त्रामणे भुवन्। (धनानाम्) विभक्ता भग· शवसा अवसा आ गमत्। उरूव्याचा अदिति· मे हव श्रोतु।

अनुवाद- शोभनस्तुत्य ये पर्वत और सुदीप्त नदियाँ हमारी रक्षा के लिये हो। (धन) विभजक भग अन्न, रक्षा के साथ आये। बहुव्याप्त अदिति मेरा आह्वान सुने।

देवानां पत्नीरुशतीरवंतु नः प्रावंतु नस्तुजये वाजसातये।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत॥७॥

अन्वय- देवानां पत्नी (स्तुतिम्) उशतीः नः अवन्तु। तुजये वाजसातये न· प्र अवन्तु। या पार्थिवास याः अपि अपाम् व्रते (अन्तरिक्षे सन्ति) सुहवा ताः देवीः नः शर्म यच्छत्।

अनुवाद- देवताओ की पत्नियाँ (स्तुति की) कामना करती हुयी हमारी रक्षा करे। पुत्र एव अन्नप्राप्ति के लिये हमारी रक्षा करे। जो पृथिवी एव जल के स्थान (अन्तरिक्ष) पर (हैं) शोभनआह्वनीया वे देवियाँ हमे सुख प्रदान करे।

उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य१ग्नाय्यश्विनी राट्।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यंतु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम्॥८॥

अन्वय- ग्ना· देवपत्नीः इन्द्राणी अग्नायी राट् अश्विनी उत (नः) (हविः) व्यन्तु। रोदसी वरुणानी (न स्तुतिम्) आ शृणोतु। य जनीनाम् ऋतु. (तदाभिमानिनी) देवी (अस्ति) (सा) (नः हवि·) वयन्तु।

अनुवाद- देवियाँ, देवपत्नियाँ, इन्द्राणी, अग्निपत्नी और समर्थ अश्विनी (हमारी हवि का) भक्षण करे। द्युलोक एव पृथिवीलोक, वरुण-पत्नी (हमारी स्तुति को) भलीभाँति सुने। जो देवयजन की काल-(-अभिमानिनी) देवी (है) (वह) (हमारी हवि का) भक्षण करे।

सूक्त - (४७)

देवता- विश्वेदेवा , ***ऋषि***- प्रतिरथात्रेय, ***छन्द***- त्रिष्टुप्।

प्रयुंजती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयंती।
आविवासंती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना।।१।।

मन्त्र (१) **अन्वय**- मही माता (उषा) ब्रुवाणा दुहितुः (भूम्याः) बोधयन्ती, (प्राणिनः) (कर्मसु) प्रयुञ्जन्ती दिवः एति। युवति मनीषा (उषा) पितृभ्यः (देवैः सह) आ जोहुवाना (यज्ञ) सदने आ विवासन्ती।

अनुवाद- महती माता (उषा) स्तुत होती हुयी (पृथिवी) को जाग्रत करती हुयी (प्राणियो को) (कर्म मे) लगाती हुयी द्युलोक से आती है। तरूणी स्तुतिमती (उषा) पालक (देवो के साथ) सर्वतः आहूत होती हुयी (यज्ञ) गृह मे आगमन करती है।

अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम्।
अनतास उरवो विश्वतः सी परि द्यावापृथिवी यंति पंथाः।।२।।

अन्वय- अजिरास· पन्थाः (रश्मयः) तत् (प्रकाशरूपं) अपः ईयमानाः अमृतस्तय (सूर्यस्य) नाभि तस्थिवागसः अनन्तास· उरव· द्यावापृथिवी सीम् विश्वतः परि यन्ति।

अनुवाद- गमनशीला पथदर्शिका (किरणे) उस (प्रकाशरूपे) कर्म मे प्रेरित करती हुयी अमर (सूर्य) की नाभि मे स्थित होती हुयी अनन्त व्यापक द्युलोक एव पृथिवी के चारो ओर घूमती है।

उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनि पितुरा विवेश।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यंतौ।।३।।

अन्वय- (कामनानाम्) उक्षः (देवाना) समुद्र अरूषः सुपर्णः (सूर्यः) पितु (अन्तरिक्षस्य) पूर्वस्य योनि आ विवेश। पृश्नि अश्मा (सूर्य·) दिवः मध्ये निहितः (सन) चक्रमे रजसः (उभौ) अन्तौ पाति।

अनुवाद- (कामनाओ का) सेचक (देवो का) आह्ल्लादक दीप्तिवान गमनशील (सूर्य) पालक (अन्तरिक्ष) के पूर्व स्थान मे प्रविष्ट होता है। विविधवर्णी सर्वव्यापक (सूर्य) द्युलोक के मध्य मे स्थित (होकर) घूमता है (और) अन्तरिक्ष के (दोनो) पूर्वापर भागो की रक्षा करता है।

चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयतो दश गर्भं चरसे धापयते।

त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान्॥४॥

अन्वय- चत्वारः (ऋत्विजः) क्षोभयन्तः ईम् (सूर्यं) बिभ्रति। गर्भम् (इव उत्पादक) दश (दिश) चरसे धापयन्ते। अस्य (सूयस्य) त्रिधातवः परमाः गावः सद्यः दिवः अन्तान् परि चरन्ति।

अनुवाद- चार (ऋत्विज) कल्याण की इच्छा करते हुए इस (सूर्य) को धारण करते है। गर्भ (की भाँति उत्पादक) दश (दिशायें) चलने के लिए गमन करती है। इस (सूर्य) की त्रिविध उत्कृष्ट किरणे शीघ्र द्युलोक के अन्त मे परिभ्रमण करती है।

इदं वपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः।

द्वे यदीं बिभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या३सबन्धू॥५॥

अन्वय- जनाना इद वपुः निवचनम् (अस्ति)। यत् नद्य· चरन्ति आपः (च) तस्थु.। मातु· (अन्तरिक्षात्) इहेह अन्ये जाते ईम् (सूर्यम्) सबन्धू द्वे (अहोरात्रे) बिभृतः।

अनुवाद- हे लोगो! यह शरीर स्तुत्य (है)। इससे नदियाँ प्रवाहित होती है (और) जल स्थिर होता है। माता (अन्तरिक्ष) से यहाँ पृथक् उत्पन्न इस (सूर्य) को नियामक सबन्धु दो (दिनरात) धारण करते है।

वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति।

उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ॥६॥

अन्वय- यथा मातर. पुत्राय वस्त्रा वयन्ति (तथा) अस्मै (सूर्याय) धियः (यज्ञ-) अपांसि (च) वि तन्वते। वृषण (सूर्यस्य) उपप्रक्षे वध्व (रश्मयः) मोदमानाः (अस्मद्) अच्छ दिवः पथा (आ) यन्ति।

अनुवाद- जिस प्रकार माता पुत्र के लिए वस्त्र बुनती है (उसी प्रकार) इस (सूर्य) के लिए स्तुति (और) (यज्ञ-) कर्म विस्तारित होता है। बलवान (सूर्य) के सम्पर्क मे वधु (किरणे) हर्षित होती हुयी (हमारे) अभिमुख द्युलोक से (आती) है।

तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम्।

अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय॥७॥

अन्वय- मित्रावरुणा! (युवां) अस्मभ्यं शम् यो (च) (दा॰) अस्तु। अग्ने शस्तम् इदम् (सूक्तम्) तत् अस्तु। (वयम्) गाध प्रतिष्ठाम् उत् आशीमहि। (अहं) बृहते सदनाय दिवे (सूर्याय) नमः (करोमि)।

अनुवाद- हे मित्रावरुणौ! (तुम) हमे सुख और दुःखनिवृत्ति (देने वाले) होओ। हे अग्ने! स्तुत यह (सूक्त) तुम्हारे लिए है। (हम) सुस्थिति और प्रतिष्ठा को प्राप्त करे। (मैं) विशाल आश्रयभूत तेजस्वी (सूर्य) को नमस्कार (करता हूँ)।

सूक्त - (४८)

देवता- विश्वेदेवाः, **ऋषि**- प्रतिभान्वात्रेय, **छन्द**- जगती।

कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम्।

आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी॥१॥

अन्वय- वय स्वक्षत्राय स्वयशसे (च) महे प्रियाय धाम्ने कदु मनामहे। यत् मायिनी (इमा आग्नेयी शक्ति) अमेन्यस्य रजस वृणाना अभ्रे आ अपः वितनोति।

अनुवाद- हम अपने बल (एवं) अपने यश के लिये महान प्रिय विद्युत की कब स्तुति करेगे ? क्योंकि मायिनी (यह आग्नेयी शक्ति) अपरिमित अन्तरिक्ष को आच्छादित कर मेघ के ऊपर जल फैलाती है।

ता अत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः।

अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः॥२॥

अन्वय- ता॰ (उषसः) वीररक्षण वयुनम् (च) अत्नत। सामान्या वृतया (दीप्त्या) विश्व रज. आ (वृणोत्) अपराः (उषा) अपाची अप ईजते (तदा) देवयुः जनाः पूर्वाभिः (उषाभिः) अपः प्र तिरते।

अनुवाद- उन (उषा) ने वीररक्षण (एवं) प्रजा का विस्तार किया। एकरूप आवरक (दीप्ति) से सम्पूर्ण जगत् को (आवृत किया)। अन्य (उषा) पश्चिम की ओर जाती है (तब) देवकामी लोग पूर्व (उषा) के साथ कार्य करते है।

आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमा जिघर्ति मायिनि।

शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वे दमे संवर्तयंतो वि च वर्तयन्नहा॥३॥

अन्वय- यस्य (इन्द्रात्मक आदित्यस्य) शत (रश्मयः) समवर्तयन्तः स्वे दमे (आकाशे) प्रचरन् अहा च वि वर्तयन् (स) अहन्येभि अक्तुभिः ग्रावभिः (अभिषवैः निर्मितै) (सोमेन हर्षितः सन्) मायिनी (वृत्रे) वरिष्ठ वज्रम् आ जिघर्ति।

अनुवाद- जिस (इन्द्रात्मक आदित्य) की सौ (किरणे) समवर्तित होती हुयीं अपने घर (आकाश) मे फैलती हैं और दिन का विस्तार होता है (वह) दिन रात प्रस्तर के (अभिषव से निर्मित) (सोम से हर्षित होकर) मायावी (वृत्र) पर श्रेष्ठ वज्र फेकता है।

तामस्य रीति परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे॥४॥

अन्वय- परशोः इव (तीक्ष्णम्) अस्य (अग्नेः) तां रीतिम् (जानामि)। वर्षसः अस्य (अग्नेः) अनीक भुजे (सन्ति इति) प्रति अख्यम्। सचा (अयमग्निः) भारहूतये पितुमन्तम् इव क्षय रत्न विशे दधाति।

अनुवाद- परशु की भाँति (तीक्ष्ण) इस (अग्नि) के उस स्वभाव को (जानता हूँ) रूपवान इस (अग्नि) की किरणे कल्याण के लिये (हि यह) कहता हूँ। सहायक (यह अग्नि) आह्वाहित होने पर पिता की भाँति निवासप्रद रत्न लोगो को देता है।

स जिह्वया चतुरनीक ऋंजते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम्।
न तस्य विद्य पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम्॥५॥

अन्वय- चारु (तेज) वसानः वरुणः अरि यतन् सः (अग्निः) जिह्वया (ज्वालायै·) चतु· अनीकः (सन्) ऋञ्जते। यतः भग· सविता (अग्निः) वार्य धन दाति (अतः) वय तस्य पुरुषत्वता न विद्य।

अनुवाद- सुन्दर (तेज) को धारण करने वाला, आच्छादक, शत्रु को मारने वाला वह (अग्नि) जिह्वा (रूप ज्वालाओ) से चारो ओर प्रसृत ज्वाला वाला (होकर) अलङ्कृत होता है। चूँकि भजनीय प्रेरक (अग्नि) वरणीय धन देता है (अत) हम उसकी पुरुषत्वता नही जान पाते।

सूक्त - (४६)

देवता- विश्वेदेवाः, ***ऋषि***- प्रतिभान्वात्रेय, ***छन्द***- त्रिष्टुप्।

देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन्॥१॥

अन्वय- आयोः भगं रत्न विभजन्त, देवं सवितार वः अद्य आ ईषे। नरा ! पुरुभुजा ! अश्विना ! (अहम्) सखियन् वाम् दिवे दिवे चित् आ ववृत्याम्।

अनुवाद- मनुष्य को भजनीय रत्नदेने वाले, दिव्य सविता को तुम्हारे लिये आज लाता हूँ। हे नेता ! बहुभोक्ता ! अश्विनौ ! (मैं) मित्रता की इच्छा से तुम दोनो को प्रतिदिन अपनी ओर बुलाता हूँ।

प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य।

उप ब्रुवीत नमसा विजानञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजंतमायोः॥२॥

अन्वय- अन्तरात्मन् ! असुरस्य (निरासितु) (सवितारं) विद्वान सुक्तैः (त) देव सवितार दुवस्य। आयोः ज्येष्ठ रत्न विभजन्त (सवितारम्) विजानन् नमसा उप ब्रवीता।

अनुवाद- हे अन्तरात्मन् ! शत्रु- (निवारक) (सविता) को जानते हुये सूक्तो द्वारा (उस) देव सविता की परिचर्या करो। मनुष्य को श्रेष्ठ रत्न प्रदान करते हुये (सविता) को जानते हुये नमस्कार द्वारा स्तवन करो।

अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः।

इंद्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयंत दस्माः॥३॥

अन्वय- पूषा, भगः, अदितिः (अग्निः) वर्याणि अदत्रया (अन्नानि) (यजमानाय) दयते। इन्द्रः, विष्णुः, मित्रः, वरुण, अग्नि दस्मा (देवा) भद्रा अहानि जनयन्त।

अनुवाद- पोषक, भजनीय, अखण्ड (अग्नि) वरणीय खाने योग्य (अन्न) (यजमान को) प्रदान करता है। इन्द्र, विष्णु, मित्र, वरुण, अग्नि दर्शनीय (देव) शोभन दिन उत्पन्न करते हैं।

तन्नो अनर्वा सविता वरूथ तत्सिंधव इषयंतो अनु ग्मन्।

उप यद्वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः॥४॥

अन्वय- यत् अध्वरस्य होता (अहम्) उप वोचे (तेन) अनर्वा सविता (अस्मभ्यम्) (तत) वरुथ (धन दातु) इषयन्त. सिन्धवः (अपि) तत् (धनम्) अनु ग्मन्। (वयं) वाजरत्नाः रायः (च) पतयः स्याम।

अनुवाद- जिस कारण यज्ञ का होता (मैं) स्तुति करता हूँ (उससे) अतिरस्कृत सविता (हमे) (वह) वरणीय (धन प्रदान करे) गमनशीला नदियाँ (भी) उस (धन) का अनुगमन करे। (हम) अन्न, बल (और) धन के स्वामी हो।

प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दुर्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः।

अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम॥५॥

अन्वय- ये (यजमानाः) वसुभ्यः ईवत् नमः आ प्रदुः ये मित्रे वरुणे सूक्तवाच (भवन्ति) (देवा ! तान्) अभ्व धनम् अव एतु। (तान्) वरीयः (सुख) कृणुत। (वयम्) दिव पृथिव्योः अवसा मदेम।

अनुवाद- जो (यजमान) वसुओ को गमनशील अन्न प्रदान करते है, जो मित्रावरुणौ के लिये शोभन वचन वाले (होते है) (हे देवो ! उन्हे) प्रदीप्त धन प्राप्त हो। (उन्हे) श्रेष्ठ (सुख) मिले। (हम) द्यावापृथिवी की रक्षा मे हर्षित हो।

सूक्त - (५०)

देवता- विश्वेदेवा:, ***ऋषि***- स्वस्त्यात्रेय, ***छन्द***- अनुष्टुप्, ५ पङ्क्ति।

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्तो॑ वुरीत स॒ख्यम्। विश्वो॑ रा॒य इ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॑॥१॥

अन्वय- विश्वः मर्तः नेतुः देवस्य (सवितुः) सख्य वुरीत। विश्वः (मर्तः) पुष्यसे द्युम्न वृणीत राये (च) इषुध्यति।

अनुवाद- सभी मनुष्य नेता देव (सविता) के मित्रता की इच्छा करते हैं। समस्त (मनुष्य) पुष्टि के लिये तेज का वरण करते है (और) धन के स्वामी बनते हैं।

ते ते॑ देव ने॒तर्ये चे॒माँ अ॑नु॒शसे॑। ते रा॒या ते ह्या३पृचे॒ सचे॑महि स॒चथ्यैः॑॥२॥

अन्वय- नेतः ! देव ! ये (यजमानाः) ते ईमान् च (देवान्) अनुशसे (ते वय) ते (सन्ति) ते (यजमाना.) राया हि आपृचे सचथ्यै (च) सचेमहि।

अनुवाद- हे नेता ! देव ! जो (यजमान) तुम्हारी और अन्य (देवताओ) की उपासना करते है (वे हम) तुम्हारे (हैं)। वे (यजमान) धन ही प्राप्त करे। (और) सभी कामनाओ से युक्त हो।

अतो॑ न॒ आ नॄनति॑थीन॒तः पत्नी॑र्दशस्यत। आरे॒ विश्वं॑ प॒थेष्ठां॑ द्वि॒षो यु॑योतु॒ यूयु॑विः॥३॥

अन्वय- नः अतः (यज्ञे) नॄन् अतिथीन् (वत् पूज्यान् देवान्) आ दशस्यत। अतः (यज्ञे) (देवाना) पत्नी (दशस्यत्)। युयुविः (सः देव) विश्व पथेस्थानम् द्विषः आरे युयोतु।

अनुवाद- हमारे इस यज्ञ मे नेता अतिथि (-वत् पूज्य देवो) की परिचर्या होती है। इस (यज्ञ) मे (देवताअे की) पत्नी की (परिचर्या करो)। विघ्न-विनाशक (वह देवता) समस्त पथ मे वर्तमान शत्रुओ को पृथक् करे।

य॒त्र व॒ह्नि॑रभिहि॑तो दु॒द्रव॒द्द्रोण्यः॑ प॒शुः। नृ॒मणा॑ वी॒रप॒स्त्योऽर्णा धीरे॑व स॒निता॑॥४॥

अन्वय- यत्र (यज्ञे) वहिनः द्रोण्यः अभिहितः पशुः दुद्रवत् (तत्र यजमानः) नृमनाः वीरस्पत्यः अर्णा धीरा इव सनिता (भवति)।

अनुवाद- जिस (यज्ञ) मे वोढा यूपार्ह यूपाभिहित पशु जाता है (वहाँ यजमान) मनुष्य का मन वीर पुत्रयुक्त समृद्ध (एव) धीर की भाँति सभक्त (होता है)।

एष ते॑ देव ने॒ता र॒थस्प॒ति. श र॒यिः।

शं राये श स्वस्तये इषःस्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे॥५॥

अन्वय- नेतः! देव ! (सविता !) ते एषः (रथस्य) रथपतिः शम् रयि. (च) (दातव्य अस्ति)। शम् राये शम् स्वस्तये (च) वयम् इषः स्तुत· (सवितु·) मनामहे। देवस्तुत· (सवितु.) मनामहे।

अनुवाद- हे नेता ! देव! (सविता !) तुम्हारे इस (रथ) का रथपति कल्याण (और) धन (देनेवाला है)। कल्याणकारी धन (और) कल्याणकारी स्वस्ति के लिये (हम) बहुस्तुत (सविता) की स्तुति करते है। देवस्तुत (सविता) की स्तुति करते है।

सूक्त - (५१)

देवता- विश्वेदेवाः, ***ऋषि***- स्वस्त्यात्रेय, ***छन्द***- १-४ गायत्री, ५-१० उष्णिक्, ११-१३ जगती, १४, १५ अनुष्टुप्।

अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरा गहि। देवेभिर्हव्यदातये॥१॥

अन्वय- अग्ने ! सुतस्य पीतये विश्वैः ऊमेभिः देवेभिः (सह) हव्यदातये (यजमानाय) आ गहि।

अनुवाद- हे अग्ने ! सोम पान के लिये समस्त रक्षक देवताओ (के साथ) हव्यदाता (यजमान) के पास आओ।

ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम्। अग्नेः पिबत जिह्वया॥२॥

अन्वय- ऋतधीतयः ! (देवः !) (यूयम्) अध्वरम् आगत। सत्यधर्माणः ! (देवाः !) (यूयम्) अग्नेः जिह्वया (आज्यसोमादिक) पिबत।

अनुवाद- हे सत्यबुद्धि वाले ! (देवो !) (तुम) यज्ञ मे आओ। हे सत्यधर्मा ! (देवो !) (तुम) अग्नि की जिह्वा से (आज्यसोमादि का) पान करो।

विप्रेभिर्विप्र संत्य प्रातर्यावभिरा गहि। देवेभिः सोमपीतये॥३॥

अन्वय- सन्त्य ! विप्र ! (अग्ने !) (त्वम्) प्रातर्यावभिः विप्रेभिः देवैः (सह) सोमपीतये आ गहि।

अनुवाद- हे सेवायोग्य ! मेधावी ! (अग्ने !) तुम प्रातःकाल आने वाले मेधावी देवताओ (के साथ) सोमपान के लिये आओ।

अय सोमश्चमू सुतोऽमत्रे परि षिच्यते। प्रिय इंद्राय वायवे॥४॥

अन्वय- चमू सुतः अय सोमः अमत्रे परि सिच्यते। (सः च) इन्द्राय वायवे प्रिय अस्ति।

अनुवाद- कूटकर निचोड़ा गया यह सोम पात्र मे छाना जाता है (और वह) इन्द्र वायु को प्रिय है।

वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये। पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः॥५॥

अन्वय- वायो ! जुषाणः (त्वम्) (सोम्-) पीतये हव्यदातये (च यजमानाय) प्रय अभि आ यहि। सुतस्य च अन्धसः पिब।

अनुवाद- हे वायो ! प्रसन्न होते हुये (तुम) (सोम-) पान के लिये (और) हविप्रदाता (यजमान के लिये) अन्न की ओर आओ। और सोमरूप अन्न का पान करो।

इंद्रश्च वायवेषां सुताना पीतिमर्हथः। ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः॥६॥

अन्वय- इन्द्र ! वायो च (युवाम्) एषा सुताना (सोमरसानाम्) पीतिम् अर्हथः (तदर्थः) अरेपसौ (युवाम्) तान् (सोमरसान्) जुषेथाम् प्रयः अभि (च) (गच्छतम्)।

अनुवाद- हे इन्द्र ! और वायो ! (तुम) इस अभिषुत (सोमरस) के पान के योग्य हो (इसलिये) अहिंसिक (तुम) उस (सोमरस) का सेवन करो (और) अन्न की ओर (आओ)।

सुता इंद्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः। निम्नं न यंति सिंधवोऽभि प्रयः॥७॥

अन्वय- इन्द्राय वायवे (च) दध्याशिरः सोमासः सुताः। प्रयः (च) निम्न (गत) सिन्धवः न (युवाम्) अभि यन्ति।

अनुवाद- इन्द्र (और) वायु के लिये दधिमिश्रित सोम अभिषुत किया गया है। (और) अन्य निम्न (जाती हुयी) नदियो की भाँति (तुम दोनो) के पास जाता है।

सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः। आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण॥८॥

अन्वय- अग्ने ! अत्रिवत् (त्वम्) अश्विनाभ्याम् उषसा सजू विश्वेभिः (च) देवेभि. सजू आ यहि। सुते (च) (सोम-) यज्ञे रण।

अनुवाद- हे अग्ने ! अत्रिवत् (तुम) अश्विनौ उषा के साथ (और) समस्त देवताओ के साथ आओ।(और) अभिषुत (सोमयज्ञ) मे आनन्दित हो।

सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना। आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण॥९॥

अन्वय- अग्ने ! अत्रिवत् (त्वम्) मित्रावरुणाभ्या सजूः सोमेन विष्णुना सजूः आ यहि। सुते (च) सोमयागे रण।

अनुवाद- हे अग्ने ! अत्रिवत् (तुम) मित्रावरुणौ के साथ, सोम, विष्णु के साथ आओ (और) अभिषुत सोमयाग मे आनन्दित होओ।

सजूरादित्यैर्वसुभि सजूरिंद्रेण वायुना। आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण॥१०॥

अन्वय- अग्ने ! अत्रिवत् (त्वम्) आदित्यैः वसुभिः सजूः इन्द्रेण वायुना सजूः आ यहि। सुते (च) (सोमयागे) रण।

अनुवाद- हे अग्ने ! अत्रिवत् (तुम) आदित्य, वसुओ के साथ इन्द्र वायु के साथ आओ। (और) अभिषुत (सोमयोग) मे आनन्दित होओ।

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः।

स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना॥११॥

अन्वय- अश्विना नः स्वस्ति मिमीताम्। भगः देवीः अदितिः स्वस्ति (मिमीतम्)। अनर्वाणः असुरः पूषा स्वस्ति दधातु। सुचेतुना द्यावापृथिवी नः स्वस्ति (मिमीताम्)।

अनुवाद- अश्विनौ हमारा कल्याण करे। भग, देवी, अदिति कल्याण करे। अपराजित प्राणदाता पूषा कल्याण प्रदान करे। उत्तम ज्ञानयुक्त पृथिवी हमारा कल्याण (करे)।

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।

बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवतु नः॥१२॥

अन्वय- स्वस्तये (वयम्) वायुम् उप ब्रवामहे यः भुवनस्य पतिः (अस्ति) (तम्) सोम स्वस्ति (ब्रवामहे)। स्वस्तये (वयम्) सर्वगण (पतिम्) बृहस्पतिम् (स्तुमः)। आदित्यासः नः स्वस्तये भवन्तु।

अनुवाद- कल्याण के लिये (हम) वायु की स्तुति करते है। जो ससार का स्वामी (है) (उस) सोम की कल्याण के लिये (स्तुति करता हूँ)। कल्याण के लिये (हम) सर्वगण के (स्वामी) बृहस्पति की स्तुति करते है।

आदित्यगण हमारे कल्याण के लिए हो।

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।

देवा अवंत्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः॥१३॥

अन्वय- अद्य विश्वे देवाः नः स्वस्तये (आगच्छन्तु)। वैश्वानरः वसु अग्निः स्वस्तये (अवतु)। देवाः ऋभवः स्वस्तये नः अवन्तु। रुद्र स्वस्ति नः अहसः पातु।

अनुवाद- आज समस्त देवता हमारे कल्याण के लिए (आयें)। वैश्वानर निवासप्रद अग्नि कल्याण के लिए (रक्षा करे)। देव ऋभु कल्याण के लिए हमारी रक्षा करे। रुद्र कल्याण के लिये हमे पाप से बचाये।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।

स्वस्ति न इंद्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि॥१४॥

अन्वय- मित्रावरुणौ नः स्वस्ति (कुरूताम्) पथ्ये (-रक्षिके !) रेवति। (देवि !) (नः) स्वस्ति (कृधि)। इन्द्रः अग्निः च न स्वस्ति (कृधि)। अदितेः च नः स्वस्ति कृधि।

अनुवाद- हे मित्रावरुणौ ! हमारा कल्याण (करो)। हे पथ- (रक्षिके!) हे धनवति ! (देवी !) (हमारा) कल्याण (करो)। इन्द्र और अग्नि हमारा कल्याण (करे) और हे अदिते ! हमारा कल्याण करो।

स्वस्ति पथामनु चरेम सूर्याचद्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता जानता स गमेमहि॥१५॥

अन्वय- (वयम्) सूर्यचन्द्रमसौ इव स्वस्ति पन्थाम् अनु चरेम। पुनः ददता अहृता जानता (वयम्) सम् गमेमहि।

अनुवाद- (हम) सूर्य चन्द्रमा की भाँति कल्याणकारी मार्ग का अनुगमन करे। पुनः देते हुए, अहिंसित होते हुए जानते हुए (हम) साथ गमन करे।

सूक्त - (५२)

देवता- मरूद्गण, ***ऋषि***- श्यावाश्वात्रेय, ***छन्द***- अनुष्टुप्, ६, १६, १७, पङ्क्ति।

प्र श्यावाश्व धृष्णुयार्चा मरुद्भिर्ऋक्कभिः। ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदंति यज्ञियाः॥१॥

अन्वय- ये यज्ञिया· अनुस्वधम् अद्रोघ श्रवः मदन्ति तेभिः मरूद्भिः श्यावाश्वः (ऋषे !) धिष्णुया (त्व) प्र अर्च।

अनुवाद- जो यज्ञार्ह अपनी धारक शक्ति से युक्त होकर अहिसक अन्न से हर्षित होते है उन मरुतो की हे श्यावाश्व ! (ऋषे !) धैर्यशाली (तुम) अर्चना करो।

ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः संति धृष्णुया।
ते यामन्न धृषद्विनस्त्मना पांति शश्वतः॥२॥

अन्वय- धिष्णुया तेहि (मरुतः) स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति। ते आ यामन् धृषद्विनः (अस्मान्) शश्वतः त्मना पान्ति।

अनुवाद- धैर्यशाली वे ही (मरूद्गण) स्थिर बल के मित्र होते है और वे मार्ग मे विजयशील सामर्थ्य -युक्त (हमारे) पुत्रादि की स्वयम् रक्षा करते है।

ते स्यंद्रासो नोक्षणोऽति ष्कंदंति शर्वरीः। मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे॥३॥

अन्वय- स्पन्द्रासः उक्षणः न ते (मरुतः) शर्वरीः अति स्कन्दन्ति। अद्य (वयम्) मरुतां दिव क्षमा च (वर्तमानम्) मह· मन्महे।

अनुवाद- स्पन्दनशील और जल-सेचक वे (मरूद्गण) रात्रि का अतिक्रमणकर गमन करते है। आज (हम) मरुतो के दिन और रात्रि मे (वर्तमान) तेज की स्तुति करते है।

मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया। विश्वे ये मानुषा युगा पांति मर्त्यं रिषः॥४॥

अन्वय- ये विश्वे मानुषा युगा मर्त्यं रिष· पान्ति (तान्) वः मरूत्सु (वयम्) धृष्णुया स्तोम यज्ञ च दधीमहि।

अनुवाद- जो समस्त मानुषी काल मे मनुष्यो को हिसको से बचाते है (उन) तुम मरुतो के लिये (हम) धैर्यपूर्वक स्तोत्र और यज्ञ धारण करते है।

अर्हंतो ये सुदानवो नरो असामिशवसः। प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः॥५॥

अन्वय- ये अर्हन्तः सुदानवः आसामिशवसः दिव· नर· (सन्ति) यज्ञियेभ्य· (तेभ्यः) मरूद्भ्यः (होता !) यज्ञम् (हवि) प्र अर्च।

अनुवाद- जो पूज्य, शोभनदाता, अनल्पबलयुक्त, तेजस्वी नेता (हैं) यज्ञीय (उन) मरुतो की (हे होता !) यज्ञीय (हवि) से अर्चना करो।

आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत।

अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः॥६॥

अन्वय- (वृष्टे·) नर· (ते मरुतः) रूक्मैः (आभरणैः) आयुधैः (च) आ (रोचन्ते)। ऋष्व· (ते मरुतः) (मेघभेदनार्थम्) ऋष्टी असृक्षत। विद्युतः जज्झती इव एनान् मरुतः अनु अह। दिवः (मरुतः) भानुः त्मना अर्त।

अनुवाद- (वृष्टि के) नेता (वे मरूद्गण) आभरणो (एव) आयुधो से (शोभित होते है)। महान (उन मरूद्गणो) ने (मेघभेदन के लिये) भाला फेका। विद्युत शब्द करने वाली की भाँति उन मरुतो का अनुगमन करती है। तेजस्वी (मरुतो) की दीप्ति स्वयम् निकलती है।

ये वावृधंत पार्थिवा य उरावंतरिक्ष आ। वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः॥७॥

अन्वय- ये पार्थिवा ये उरौ अन्तरिक्षे आ (ये) वृजने वा नदीना महः दिवः सधस्थे वा ववृधन्त (ते मरुतः वृष्ट्यर्थम् ऋष्टी. असृक्षत्)।

अनुवाद- जो पृथिवी पर, जो विशाल अन्तरिक्ष मे, (जो) मैदान पर अथवा नदी में अथवा विशाल द्युलोक के सहस्थान मे बढ़ते हैं (उन मरुतो ने वृष्टि के लिये भाला फेका)।

शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम्। उत स्म ते शुभे नरः प्रस्यंद्रा युजत त्मना॥८॥

अन्वय- (स्तोतः !) (यूयम्) सत्यशवसम् ऋभ्वस मारूतं शर्धः उत् शस। नरा· स्पन्द्राः ते (मरुतः) शुभे उत् स्म त्मना युजत।

अनुवाद- (हे स्तोताओ !) (तुम) सत्यवेगवाले, अतिप्रवृद्ध मरुतो के बल की उत्कृष्ट रूप से स्तुति करो। नेता गमनशील वे (मरूद्गण) कल्याण के लिये भी स्वयम् को समायोजित करते है।

उत स्मते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुंध्यवः। उत पव्या रथानामद्रिं भिंदंत्योजसा॥९॥

अन्वय- उत स्म ते (मरुतः) परुष्णया (नद्या) (वर्तन्ते) शुन्ध्यवः (च) (स्व) ऊर्णाः (सर्वान्) वस्त। उत (ते) रथाना पव्या ओजसा (वा) अद्रि भिदन्ति।

अनुवाद- और वे (मरूद्गण) परुष्णी (नदी) मे स्थित रहते है। (और) शोधक (अपनी) दीप्ति से (सबको) आच्छादित करते है। और (वे) रथचक्र (अथवा) बल से पर्वत का भेदन करते है।

आपथयो विपथयोऽतस्पथा अनुपथाः। एतेभिर्मह्यंनामभिर्यज्ञ विष्टार ओहते॥१०॥

अन्वय- आपथयः, विपथयः, अन्तपथाः, अनुपथा· एतेभिः नामभि· विस्तारः (मरुत·) मह्यं यज्ञम् ओहते।

अनुवाद- अभिमुख मार्ग से गमन करने वाले, विभिन्न मार्गो से गमन करने वाले, अन्त· मार्ग से गमन करने वाले इन नामो से विस्तारित (मरूद्गण) मेरे लिये यज्ञ-वहन करते है।

अधा नरो न्योहतेऽधा नियुत ओहते।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या॥११॥

अन्वय- अद्य (वृष्ट्यादि-) नरः (मरुत·) नि (जगत्) ओहते। अद्य नियुतः (सन्) ओहते। अद्य परावताः ओहते इति चित्रा (तेषा) रूपाणि दर्श्या (भवन्ति)।

अनुवाद- आज (वृष्ट्यादि के) नेता (मरूद्गण) सम्पूर्ण (जगत) का वहन करते है। आज सम्मिलित (होकर) वहन करते है इस प्रकार नानाविधि (उनका) रूप दर्शनीय (होता है)।

छंदःस्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः
ते मे के चिन्नतायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे॥१२॥

अन्वय- छन्दः स्तुभः कुभन्यवः कीरिणः उत्सम् (तृषिताय गोतमाय) (मरुतान्) आ नृतुः। ते केचित् मे तायवः न (अदृश्याः) (केचित्) ऊमाः (केचित्) दृशि (केचित् च) त्विषे आसन।

अनुवाद- छन्द द्वारा स्तुति करने वाले, जलाकाक्षी स्तोता कूप मे (तृषित गौतम के लिये) (मरुतो को) लाये। उनमे कुछ मेरे लिये चोर की भॉति (अदृश्य) (कुछ) रक्षक, (कुछ) दृश्य (और कुछ) बल के लिये थे।

य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः संति वेधसः।
तमृषे मारुतं गण नमस्या रमया गिरा॥१३॥

अन्वय- ऋषे ! (श्यावाश्व !) ये ऋष्वाः ऋष्टि विद्युतः कवयः वेधसः सन्ति तम् मारूत गण रमय गिरा नमस्य।

अनुवाद- हे ऋषे ! (श्यावाश्व !) जो दर्शनीय आयुध से द्योतमान, मेधावी, विधाता है उन मरूदगण की रमणीय वाणी से परिचर्या करो।

अच्छ ऋषे मारुत गण दाना मित्र न योषणा।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत॥१४॥

अन्वय- ऋषे ! (त्वम्) मारूत गणम् अच्छ मित्र न दाना योषणा (च) (अभिगच्छ)। ओजसा धिष्णव· ! (मरूद्गण !) (अस्मदीयाभि·) धीभि· स्तुतः (यूयम्) दिवः वा (यज्ञम्) इषण्यत।

अनुवाद- हे ऋषे ! (तुम) मरूद्गणो के समक्ष आदित्य की भाँति दान (एव) स्तुति के द्वारा (जाओ)। बल द्वारा घर्षक ! (हे मरूद्गण !) (हमारी) वाणी द्वारा स्तुत (तुम) द्युलोक से (यज्ञ मे) आओ।

नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा। दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः॥१५॥

अन्वय- (स्तोता·) वक्षणा एषा (मरुताम्) नु मन्वानः (अन्यान्) देवान् अच्छ न (मनुते)। (स्तोता·) सूरिभि यामश्रुतेभि (फलस्य) अञ्जिभिः (मरूद्भ्य·) दाना (सन्) सचते।

अनुवाद- (स्तोता) वहन के लिये इन (मरुतो) की शीघ्र स्तुति करते हुये (अन्य) देवताओ की अभिप्राप्ति नही (चाहते)। (स्तोता) मेधावी, शीघ्रगमन के लिये विश्रुत (फल-) व्यञ्जक (मरुतो) के दान से युक्त (होकर) गमन करते है।

प्र ये मे बंध्वेषे गां वोचंत सूरयः पृश्निं वोचंत मातरम्।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचंत शिक्वसः॥१६॥

अन्वय- ये सूरय. (मरुतः) मे बन्धु एषे गाम् (नः) (मातरम्) वोचन्त पृश्नि (नः) मातर वोचन्त। अद्य इष्मिण रुद्र (न·) पितर वोचन्त (ते मरुतः) शिक्वसः (सन्ति)।

अनुवाद- जिन मेधावी (मरुतों) ने मेरे बन्धु- अन्वेषण मे गायो को (हमारी) माता कहा और गतिमान रुद्र को हमारा(पिता कहा (वे मरूद्गण) समर्थ (है)।

सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे॥१७॥

अन्वय- सप्त (सख्यकाः) शाकिनः (मरुतः) एकम् एका (गणः) में शता (गवाश्वयूथानि) ददुः। अधिश्रुतम् (तम्) गव्यम् राध· यमुनायाम् उत् मृजे अश्वं राधः (यमुनायाम्) नि मृजे।

अनुवाद- सप्त (सख्या) वाले, सामर्थ्यवान (मरुतो) के एक-एक (गण) ने मुझे (गवाश्व समूह) दिया। अभिश्रुत (उस) गोरूप धन को यमुना मे सम्मार्जित करता हूँ। अश्वरूप धन को (यमुना मे) सम्मार्जित करता हूँ।

सूक्त - (५३)

देवता- मरुत·, ***ऋषि***- श्यावाश्वात्रेय·, ***छन्द***- १, ५, १०, ११, १५,- ककुभ, २ बृहती, ३ अनुष्टूप्, ४ पुरुष्णिक, ६, ७, ६, १३, १४, १६, सतोबृहती, ८, १२, - गायत्री।

को वेद जानमेषा को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम्। यद्युयुज्रे किलास्यः॥१॥

अन्वय- क· एषा (मरुताम्) जान वेद? यत् (एते) किलास्य· (रथे) युयुज्रे (तदा) पुरा क· वा मरुता सम्नुषे आस?

अनुवाद- कौन इन (मरुतो) के जन्म को जानता है? जब (इन्होने) पृथिवी को (रथ मे) सयुक्त किया (तब) पहले कौन मरुतो के सुख मे रहता था।

ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः।

कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह॥२॥

अन्वय- रथेषु तस्थुष· एतान् (मरुतः) (विषये) कः आ शुश्राव ? (ते) कथा ययु. (इति) क· जानाति? कस्मै सुदासे (बन्धुभूता·) आपय वृष्टयः (मरुतः) इळाभिः सह अनु सस्रुः।

अनुवाद- रथ मे स्थित इन (मरुतो के विषय मे) किसने सुना है? (वे) कैसे गमन करते है (यह कौन जानता है?) किस शोभनदानी के लिये (बन्धु के समान) व्याप्त वर्षक (मरुत) रत्नो के साथ अवतीर्ण होगे ?

ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे। नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि॥३॥

अन्वय- ये द्युभि विभिः (अश्वैः) (सोमस्य) मदे उप आययुः ते (मरुत·) मे इति आहुः " ऋषे ! नरः मर्यः अरेपस इमान् (अस्मान्) पश्य स्तुहि (च)।"

अनुवाद- जो द्योतमान गतिमान (अश्वो) द्वारा (सोम के) मद के लिये एकत्र हुये उन (मरुतो) ने मुझसे कहा- " हे ऋषे । नेता मनुष्यो के लिये हितकारक दोषरहित इन (हमे) देखो (और) स्तुति करो।"

ये अंजिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु। श्राया रथेषु धन्वसु॥४॥

अन्वय- मरुतः! (युष्माक) ये स्वभानवः अञ्जिषु, वाशीषु, स्रक्षु ये (च) रुक्मेषु, खादिषु, (तान् सर्वान् वय स्तुम)।

अनुवाद- हे मरुतो! (तुम्हारी) जो स्वदीप्तियाँ आभरणो मे, आयुधों मे, मालाओ मे, (और) जो उरोभूषणो मे, कगनो मे, रथो मे तथा धनुषो मे स्थित (हैं) (उन सबकी हम स्तुति करते है)।

युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः। वृष्टी द्यावो यतीरिव॥५॥

अन्वय- जीरदानव मरुत! मदे (अहम्) वृष्टी यतीः द्यावः इव (दृश्यमाान्) युष्माक रथान् अनु दधे स्म।

अनुवाद- हे शीघ्रदानी मरुतो! हर्ष के लिये (मै) वृष्टि के लिये, गमनशील दीप्ति की भाँति (दृश्यमान) तुम्हारे रथो का अनुगमन करता हूँ।

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः।

वि पर्जन्यं सृजंति रोदसी अनु धन्वना यंति वृष्टयः॥६॥

अन्वय- नर सुदानवः (मरुतः) (हवि) ददाशुषेः (यजमानाय) यम् (अपा) कोशम् (अस्ति) (त मेघम्) दिव आ अचुच्यवु। (ते) रोदसी पर्जन्य वि सृजन्ति। वृष्टय (ते मरुतः) धन्वना (उदकेन सह) अनु यन्ति।

अनुवाद- नेता, शोभनदानी (मरुत) (हवि-) प्रदाता (यजमान) के लिये जो (जल का) कोश (है) (उस मेघ को) द्युलोक से गिराते है। (वे) द्युलोक एव पृथिवीलोक के लिये मेघ को विमुक्त करते है। वर्षक (वे मरुत) गतिशील (जल के साथ) गमन करते है।

ततृदानाः सिंधवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तंत एन्यः॥७॥

अन्वय- ततृदानाः (मेघान्) (विसर्जिताः) सिन्धवः क्षोदना (सह) धेनवः यथा रजः प्र सस्रु। यत् एन्य अध्वनः विमोचने अश्वा इव स्यान्नाः (भवन्ति) (तदा ताः) वि वर्तन्ते।

अनुवाद- निर्भिद्य (मेघ से निकली) नदियाँ जल के (साथ) धेनु की भाँति द्युलोक से निकलती है। जब नदियाँ मार्ग ढूँढ ने के लिए अश्व की भाँति तीव्रगामिनी होती है (तब वे) विविध प्रकार से सञ्चरण करती है।

आ यात मरुतो दिव अंतरिक्षादमादुत। माव स्थात परावतः॥८॥

अन्वय- मरुतः ! (यूय) दिवः आ परावतः अन्तरिक्षात् अमात् उत् (लोकात्) आ यात (अस्मान्) अव मा स्थात।

अनुवाद- हे मरुतोः ! (तुम) द्युलोक से, दूरवर्ती देश से, अन्तरिक्ष से अथवा हमारे (लोक) से आओ (हमसे) दूर मत स्थित होओ।

मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिंधुर्नि रीरमात्।
मा वः परि ष्ठात्सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत्सुम्नमस्तु वः॥९॥

अन्वय- (मरुतः !) अनितभा कुभा, क्रमु (इति) रसा वः मा (निरीरमत्)। सिन्धुः वः मा निरीरमत्। पुरीषिणी सरयु. वः मा परिस्थात्। व· सुम्नम् अस्मे अस्तु।

अनुवाद- (हे मरुतो !) अनितमा, कुभा, क्रमु (ये) नदियाँ तुम्हे न (रोके)। सिन्धु तुम्हे न रोके। प्रकृष्ट जलवाली सरयू तुम्हे न अवरूद्ध करे। तुम्हारा सुख हमारे लिये हो।

त वः शर्ध रथानां त्वेष गणं मारुत नव्यसीनाम्। अनु प्र यंति वृष्टय.॥१०॥

अन्वय- रथाना वः मारूत गण त नव्यसीना शर्ध त्वेष (च) (अह स्तौमि)। वृष्टयः (युष्मान्) (वृष्टिः) अनुप्रयन्ति।

अनुवाद- वेगवान तुम मरूद्गणो के उस नवीन बल (एव) दीप्ति का (मै स्तवन करता हूँ)। वर्षक (तुम्हारा) (वृष्टि) भलीभाँति अनुगमन करती है।

शर्धंशर्धं व एषा व्रातंव्रात गणंगणं सुशस्तिभिः। अनु क्रामेम धीतिभिः॥११॥

अन्वय- (मरुतः!) एषा वः शर्धं शर्धं व्रात व्रातम्, गणम् गणम् (वयम्) सुशस्तिभिः (हविष्यप्रदानादिलक्षणैः) च धीतिभि अनु क्रामेम।

अनुवाद- (हे मरुतो !) इन तुम्होरे प्रत्येक बल का, प्रत्येक समूह का, प्रत्येक गण का (हम) सुस्तुति (एव) (हविष्यादि प्रदान लक्षण) कर्मो के द्वारा अनुगमन करेगे।

कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः। एना यामेन मरुतः॥१२॥

अन्वय- अद्य मरुतः एना यामेन कस्मै सुजाताय रातहव्याम (यजमानाये) प्र ययुः।

अनुवाद- आज मरुत इस रथ से किस सुजन्मा हविप्रदाता (यजमान) की ओर जायेगे।

येने तोकाय तनयाय धान्यंबीजं वहध्वे अक्षितम्।

अस्मभ्य तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम्॥१३॥

अन्वय- (मरुतः!) येन (मनसा) (यूयम्) तोकाय तनयाय अक्षित धान्य बीज (च) वहध्वे (तेन मनसा) अस्मभ्य तत् (सर्वम्) धत्तन। यत् राध (वय) वः ईमहे (तत् अस्मभ्य धत्तन)। विश्वायुः सौभग(च अस्मभ्य धत्तन)।

अनुवाद- जिस (मन) से (तुम) पुत्र पौत्रादि के लिये अक्षुण्ण धान्य (और) बीज वहन करते हो (उस मन से) वह सब हमारे लिये धारण करो। जिस धन के लिये (हम) तुम्हारी स्तुति करते है (वह हमारे लिये धारण करो) समस्त आयु (एवम्) शोभन ऐश्वर्य (हमारे लिये धारण करो)।

अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः।

वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह॥१४॥

अन्वय- (मरुतः !) (वयम्) स्वस्तिभिः अवद्य हित्वा निदः तिरः (च) अरातीः अति स्याम। मरुत ! (युष्मत् प्रेरितासु) वृष्ट्वी (सतीषु वयम्) शम् (पापानां) योः आपः उस्रि (च) भेषज सह स्याम।

अनुवाद- (हे मरुतो!) (हम) कल्याण के द्वारा पाप का परित्याग करके निन्दक (और) गुप्त शत्रुओ का अतिक्रमण करे। हे मरुतो ! (तुम्हारे द्वारा प्रेरित) वृष्टि (होने पर) (हम) सुख, पापनिवारक जल और गोयुक्त औषधि एक साथ प्राप्त करे।

सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः। यं त्रायध्वे स्याम ते॥१५॥

अन्वय- समह ! नरः मरुत ! य (यूयम्) त्रायध्वे सः मर्त्यः सुदेवः सुवीरः (च) असति (एव) ते (वयम्) (युष्मदीय) स्याम।

अनुवाद- हे प्रशंसित । नेता मरुतो ! जिसकी (तुम) रक्षा करते हो वह मनुष्य सुदीप्त (एव) सुपुत्रयुक्त होता है (इस प्रकार के) वे (हम) तुम्होरे हो।

सतुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे।

यतः पूर्वां इव सखींरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः॥१६॥

अन्वय- (ऋषे !) स्तुवतः अस्य (यजमानस्य) यामनि भोजान् (मरुत·) स्तुहि। (अत्र मरुतः) यवसे गावः न रणन्। पूर्वान् सखीन् इव यतः (मरुतः) अनु ह्वय। (स्तुती·) कामिनः (मरुतः) गिरा गृणीहि।

अनुवाद- (हे ऋषे !) स्तुति करते हुये इस (यजमान) के यज्ञ मे दानी (मरुतो) की स्तुति करो। (यहाँ मरुत) जाती हुयी गायो की भाँति आनन्दित होते है। पूर्व सखा की भाँति गमनशील (मरुतो) का आह्वान करो। (स्तुति की) कमाना करने वाले मरुतो की वाणी द्वारा स्तुति करो।

सूक्त - (५४)

देवता- मरुतः, ***ऋषि***- श्यावाश्वात्रेय, ***छन्द***- जगती, १४ त्रिष्टुप्।

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते।

घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत॥१॥

अन्वय- स्वभानवे पर्वतच्युते मारूताय शर्धाय इमां वाच प्र वाचम्। धर्मस्तुभे, पृष्ठयज्यवने, द्युम्नश्रवसे दिवः आ (गच्छते) (मरुताय) महि। (हविर्लक्षणम्) नृम्णम् अर्चत।

अनुवाद- अपने तेज से पर्वत को विदीर्ण करने वाले मरुतो के बल के लिये यह वाणी प्रेषित करो। धर्मशोषक (रथादि के) पृष्ठ को जानने वाले, द्योतमान अन्न वाले, द्युलोक से आ (गमन) करने वाले(मरुतो) के लिये प्रभूत (हविर्लक्षण) अन्न प्रदान करो।

प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः।

सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरंत्यापोऽवना परिज्रयः॥२॥

अन्वय- मरुत· । तविषाः, उदन्यवः वयोवृध·, अश्वयुजाः, परिज्रयः वः (गणाः) प्र (भवन्ति)। विद्युता (च) सम् दधति। (तदानीम्) त्रितः(स्थानेषु) वाशति। परिज्रयः (च) आपः अवना स्वरिन्त।

अनुवाद - हे मरुतो ! दीप्त, जलाभिलाषी, अन्न-वर्धक, सर्वगमनशील तुम्हारे गण उत्पन्न होते है।(और) विद्युत के साथ सम्मिलित होते है (तब) तीनो (स्थनो) मे शब्दायित होते है।(और) जल भूमि पर गिरता है।

विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः।

अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः॥३॥

अन्वय- विद्युन्महसः, नरः, अश्मदिद्यवः, वातत्विषः, पर्वतच्युतः, मुहुः चित् स्तयत् अमा, रभसाः, उदोजसः मरुत (वृष्ट्यर्थ) (प्रादुर्भवन्ति)।

अनुवाद- द्युतिमान तेज वाले, नेता, आयुध वाले, प्राप्त दीप्ति वाले, पर्वतच्यावी, प्रभूत जल (देने) वाले, बज्रक्षेपक, एकत्र शब्द करने वाले, उद्गत बल वाले मरुत (वृष्टि के लिये उत्पन्न होते हैं)।

व्यक्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्यन्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः।

वि यदज्राँ अजथ नावईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ॥४॥

अन्वय- रुद्रा ! (मरुतः) अहानि अक्तन् वि अजथ। शिक्वस. ! अन्तरिक्ष वि (अजथ) रजासि वि (अजथ) धूतयः ! (समुद्रे स्थिताम्!) ईम! नाव· यथा यत् अज्रान वि (कम्पय) (शत्रुणा) दुर्गाणि वि (नाशय)। मरुतः ! अह न रिष्यथ।

अनुवाद- हे यद्रपुत्र ! (मरुतो !) दिन रात्रि को प्रवर्तित करो। हे समर्थ! अन्तरिक्ष को प्र (वर्तित करो)। द्यावापृथिवी को प्र (वर्तित करो)। हे कम्पक ! (समुद्र मे स्थित) इस नौका की भाँति इन मेघो को प्र (कम्पित करो)। (शत्रुओ के) दुर्गों का वि (नाश करो)। हे मरुतो ! हिसा न करो।

तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम्।

एता न यामे अगृभीतशेचिषोऽनश्वदां यन्ययातना गिरिम्॥५॥

अन्वय- मरुतः ! यत् अगृभीतशोचिषः वः अनश्वदा गिरम् नि अयातन (स्थ) (तदा) (व·) तत् वीर्यं यामे (देवानाम्) एता अश्वा न सूर्यः (च) योजन न दीर्घ ततान।

अनुवाद- हे मरुतो ! जब अहिंसित तेजवाले तुमने अश्व न देने वाले पवर्त को स्थिर किया (तब) (तुम्हारा) वह सामर्थ्य मार्गस्थ (देवताओ) के इन अश्वो की भाँति (और) सूर्य के तेज की भाँति दूर तक फैला।

अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णस मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः।

अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यतमनु नेषथ सुगम्॥६॥

अन्वय- (वृष्टेः) वेधस ! मरुतः ! (यूयं) शर्धः यत् अभ्राजि (तदा) (यूयम्) अर्णसम् कपना इव वृक्ष मोषथ। सजोषस ! चक्षु इव यन्त (यूयम्) न· सुगम् (मार्गम्) अरमतिम् अध स्म अनु नेषथ।

अनुवाद- (हे वृष्टि) धारक! मरुतो! (तुम्हारा) बल जब द्योतमान होता है (तब) (तुम) जलयुक्त काँपते से मेघ को ताडित करते हो। हे समानप्रीतिवाले! नेत्र की भाँति ले जाने वाले (तुम) हमे सुगम (मार्ग) से धन की ओर भी ले जाओ।

न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति।

नास्य राय उप दस्यंति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ॥७॥

अन्वय- मरुत ! यम् ऋषि वा राजानम् वा (यूयम्) (सत्कर्मसु) ससूदथ सः न जीयते न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति न अस्य राय· न ऊतयः उप दस्यन्ति।

अनुवाद- हे मरुतो ! जिस ऋषि या राजा को (तुम) (सत्कर्मों मे) प्रेरित करते हो वह न पराभूत होता है, न हिंसित होता है,

न नष्ट होता है, न पीडित होता है, न बाधित होता है, न इसका धन, न रक्षा नष्ट होती है।

नियुत्वंतो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कवंधिनः।

पिन्वंत्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युंदंति पृथिवीं मध्वो अंधसा॥८॥

अन्वय- नियुत्वत ग्रामजितः यथा नरः अर्यमणः न (दीप्ताः) मरुतः कवन्धिनः भवन्ति। यत् ते ईनास· भवन्ति (तदा) उत्सम् (उदकेन) पिन्वन्ति। अस्वरन् (च) मध्वः अन्धसा (उदकेन) पृथवीम् वि उन्दन्ति।

अनुवाद- नियुतसञ्ज्ञक अश्वो से युक्त, ग्रामजेता की भाँति नेता, अर्यमण की भाँति (दीप्त) मरुत जलयुक्त (होते है) जब ये अधिपति होते हैं (तब) मेघ को (जल से) भर देते है। और शब्द करते हुये मधुर सारभूत (जल) से पृथिवी को सिञ्चित करते हैं।

प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः।

प्रवत्वतीः पथ्या अंतरिक्ष्याः प्रवत्वंतः पर्वता जीरदानवः॥९॥

अन्वय- इय पृथिवी मरूद्भ्यः प्रवत्वती (भवति) द्यौः (मरुतानाम्) प्रयत्भ्यः द्यौः प्रवत्वती भवति। अन्तरिक्ष्या पथ्य (मरूद्भ्यः) प्रवत्वतीः (भवन्ति) जीरदानवः (मरूद्भ्यः) पर्वताः प्रवत्वन्तः (भवन्ति)।

अनुवाद- यह पृथिवी मरुतो के लिये विस्तीर्ण (होती है)। द्युलोक (मरुतो के लिये) विस्तृत होता है। अन्तरिक्ष के मार्ग (मरुतो के लिये) विस्तीर्ण (होते हैं)। अतिदानी (मरुतो) के लिये मेघ विस्तृत (होते हैं)।

यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः।

न वोऽश्वाः श्रथयताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ॥१०॥

अन्वय- समरस ! स्वर्णरः ! दिव· नर· ! मरुत· ! यत् सूर्ये उदिते (तदा) (यूय) (सोमेन) मदथ (तदा) व· सिस्रतः अश्वा न श्रथयन्त सद्य (च) (यूयम्) (देवयजनस्य) अस्य अध्वन पारम् अश्नुथ।

अनुवाद- हे बलशालिन् ! हे सर्वनेता ! हे द्युलोक के नेता ! मरुतो ! जब सूर्य उदित होता है (तब) तुम्हारे गमनशील अश्व परिश्रान्त नहीं होते।(ओर) शीघ्र ही (तुम) (देवयजन के) इस मार्ग के पार पहुँच जाते हो।

असेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः॥११॥

अन्वय- मरुत ! व· असेषु ऋष्टय· (भासन्ते) पत्सु खादय·, वक्ष सु रुक्मा, रथे शुभ्र (दीप्ति) गभस्तयो अग्निभ्राजस विद्युत शीर्षसु (च) वितताः हिरण्यायीः शिप्राः (भासन्ते)।

अनुवाद- हे मरुतो ! तुम्हारे कधो पर भाले (शोभित होते है), पैर मे कगन, वक्ष मे हार, रथ मे शुभ (दीप्ति) भुजाओ पर अग्निवत् चमकीले वज्र (और) शीर्ष पर विस्तृत स्वर्णमयी शिरस्त्राण (शोभित होते है)।

त नाकमर्यो अगृभीतशोचिष रुशत्पिप्पल मरुतो वि धूनुथ।
समच्यत वृजनातित्विषत यत्स्वरति घोष विततमृतायव·॥१२॥

अन्वय- मरुत ! अर्य (यूयम्) नाकम् अगभीतशोचिश रूशत् तम् पिप्पल वि धूनुथ। यत् (असुरा) वृजना सम अच्यन्त (सन्) अतित्विष (भवन्ति) (तदा) ऋतयवः (यूयम्) वितत घोष स्वरन्ति।

अनुवाद- हे मरुतो ! गमनशील (तुम) अन्तरिक्ष मे अहिसित तेजवाले कान्तियुक्त उस जल को चलायमान करो। जब (असुर) बल द्वारा एकत्र होकर अत्यन्त तेजस्वी (होते है) (तब) जलाकाक्षी (तुम) विस्तृत गर्जन करते हो।

युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो३वयस्वतः।
न यो युच्छति तिष्यो३यथा दिवो३स्मे रारत मरुतः सहस्रिणाम्॥१३॥

अन्वय- विचेतस· ! मरुत ! रथ्यः (वयम्) युष्मादत्तस्य वयस्वस्तः राय· (स्वमिनः) स्याम। दिव· (स्थ·) तिष्यः यथा (युष्माभिः दत्ता) या (रा) (अस्ति) (सः) न युच्छति। मरुतः ! अस्मे सहस्रिणाम् (रायैः)मरुत· ! अस्मे सहस्रिणाम् (रायै·) ररन्त।

अनुवाद- हे विवेचत ! मरुतो ! रथयुक्त (हम) तुम्हारे द्वारा दिये गये अन्न से युक्त ऐश्वर्य के (स्वामी) हो। द्युलोक मे (स्थित) सूर्य की भाँति (तुम्हारा दिया) (जो धान है) (वह) नष्ट नही होता। हे मरुतो हमे अपरिमित (धन) द्वारा आनन्दित करो।

यूय रयि मरुतः स्पार्हवीर यूयमृषिमवथ सामविप्रम्।
यूयमर्वत भरतया वाजं यूय धत्थ राजानं श्रुष्टिमतम्॥१४॥

अन्वय- मरुत ! यूयम् (न.) रयि स्पार्हवीरम् (च) (प्रयच्छ)। सामविप्रम् ऋषिम् अवथ। (मरुत·) यूय (देवान्) भरतया (श्यावाश्वाय) अर्वन्त वाज (च) धत्थ। यूय राजान श्रुष्टिमन्त (कुरु)।

अनुवाद- हे मरुतो ! तुम (हमे) धन (और) स्पृहणीय पुत्र प्रदान करो। साम को जानने वाले ऋषि कीरक्षा करो।(हे मरुतो !) तुम (देवताओ) को धारण करने वाले (श्यावाश्व) को अश्व (एव) धन दो। तुम राजा को सुखयुक्त (करो)।

तद्वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्वर्ण ततनाम नॄरभि।

इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः॥१५॥

अन्वय- सद्य ऊतय ! मरुत ! (वयम्) व. तत् द्रविण यामि येन (न) नॄन् स्व न अभि ततनाम। (मरुत !) (यूय) मे इद स वच हर्यत यस्य (वचस) तरसा (वयम्) शत हिमाः तरेम।

अनुवाद- हे शीघ्ररक्षक ! मरुतो ! (हम) तुम्हारे उस धन की याचना करते है जिससे (हमारे) पुत्रादि आदित्य की भाँति विस्तृत हो। (हे मरुतो !) (तुम) मेरे इस सुवचन की कामना करो जिस (वचन) के बल से (हम) सौ वर्ष पार कर ले।

सूक्त- (५५)

देवता- मरुत , ***ऋषि***- श्यावाश्वात्रेय, ***छन्द***- जगती, १० त्रिष्टुप्।

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः।

ईयंते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥१॥

अन्वय- प्रयज्यव, भ्राजत् ऋष्टयः, रूक्मवक्षस मरुत बृहत् वयःदधिरे। सुयमेभि आशुभिः अश्वैः (ते) ईयन्त। रथा (अपि) शुभ यात (मरुतान्) अनु अवत्स।

अनुवाद- प्रकृष्ट यष्टा, दीप्त भाले से युक्त, हारयुक्त वक्ष वाले मरुत प्रभूत अन्न धारण करते है। सुखपूर्वक ले जाने वाले तीव्रगामी अश्वो द्वारा (वे) गमन करते है। रथ (भी) कल्याण के लिये जाने वाले (मरुतो) का अनुगमन करते है।

स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महांत उर्विया वि राजथ।

उतातरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥२॥

अन्वय- (मरुत !) (यूय) यथा विद् (तथैव) तविषी स्वय दधिध्वे। महान्तः ! (मरुतः!) बृहत् उर्विया (सन्त) वि राजथ। अन्तरिक्षम् उत् ओजसा वि ममिरे। रथाः (अपि) शुभ यात (मरुतान्) अनु अवृत्सत।

अनुवाद- (हे मरुतो !) (तुम) जैसा जानते हो (वैसा ही) बल धारण करते हो। हे महान ! मरुतो(अत्यन्त विशाल (होते हुये) शोभायमान होओ। अन्तरिक्ष मे भी बल से व्याप्त होओ। रथ (भी) कल्याण के लिये जाने वाले (मरुतो) का अनुगमन करते है।

साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः।

विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥३॥

अन्वय- (मरुता) साक जाता· साक सुम्व (साकम्) उक्षिता. (भवन्ति)। श्रिये चित् (ते) प्रतरम् आ ववृधु। नर· (ते) विरोकिण सूर्यस्य रश्मयः इव (सर्वत्र गच्छन्ति)। रथाः (अपि) शुभ यात (मारुतान्) अनु अवृत्सत।

अनुवाद- (मरूद्गण) एक साथ उत्पन्न हुये एक साथ महान हुये (एक साथ) जलयुक्त (होते हैं)। कल्याण के लिये वे प्रकृष्ट रूप से सर्वत्र बढ़ते है। नेता (वे) प्रकाशमान सूर्य की किरणो की भाँति (सर्वत्र गमन करते है)। रथ (भी) कल्याण के निये जाने वाले (मरुतो) का अनुगमन करते है।

आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वन दिदृक्षेण्य सूर्यस्येव चक्षणम्।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥४॥

अन्वय- मरुन । व महित्विनम् आभूषेण्यम्। (व.) चक्षण सूर्यस्य इव दिदृक्षेण्यम्। अमृतत्वे उत् अस्मान् दधातन। रथा (अपि) शुभ यात मरुतान् अनु अवृत्सत।

अनुवाद- हे मरुतो । तुम्हारी महिमा स्तवनीय है। तुम्हारा रूप सूर्य की भाँति दर्शनीय है। मोक्ष मे भी हमारी सहायता करो रथ (भी) कल्याण के लिये जाने वाले (मरुतो) का अनुगमन करते है।

उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूय वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः।
न वो दस्ना उप दस्यति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥५॥

अन्वय- मरुत । यूयम् समुद्रत· (अन्तरिक्षात्) वृष्टिम् उत् ईरयथ। पुरीषिण· ! (उदक) वर्षयता। दस्ना । (मरुत !) व धेनव न उप दस्यन्ति। रथा· (अपि) शुभ यात (मरुतान्) अनु अवृत्सत।

अनुवाद- हे मरुतो ! तुम समुद्रवत् (अन्तरिक्ष) से वृष्टि को प्रेरित करो। हे प्रभूत जलवाले । (जल की) वर्षा करो। हे दर्शनीय । (मरुतो !) तुम्हारा मेघ शुष्क नही होता। रथ (भी) कल्याण के लिये जाने वाले (मरुतो) का अनुगमन करते है।

यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्व हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम्।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभ यातामनु रथाअवृत्सत॥६॥

अन्वय- मरुत । (यूयम्) यत् धूर्षु पृषती अश्वान् अयुग्ध्वं हिरण्यान् च उत्कान् प्रति अमुग्धवम् (तदा) विश्वा· इत् स्पृध वि अस्यथ। रथा (अपि) शुभ यात (मरुतान्) अनु अवृत्सत।

अनुवाद- हे मरुतो । (तुम) जब रथ मे चितकबरे अश्वो को युक्त करते हो (और) स्वर्णमय कवच को उतार देते हो (तब) समस्त सङ्ग्राम मे विजय प्राप्त करते हो। रथ (भी) कल्याण के लिये जाने वाले (मरुतो) का अनुगमन करते है।

न पर्वता न नद्यो वरत वो यत्राचिध्व मरुतो गच्छथेदु तत्।

उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥७॥

अन्वय- मरुत । न पर्वता न (एव) नद्यः व. वरन्त । (यूयम्) यत्र अचिध्व तत् इत् गच्छथ। (वृष्ट्यर्थम्) (यूयम्) द्यावापृथिवी उत परि याथन। रथा. (अपि) शुभ यात (मरुतान्) अनु अवृत्सत।

अनुवाद- हे मरुतो । न पर्वत न (ही) नदियाँ तुम्हे रोके। (तुम) जहाँ चाहते हो वहाँ जाते हो। (वृष्टि) के लिये, (तुम) द्युलोक एव पृथिवी मे भ्रमण करते हो। रथ (भी) कल्याण के लिये जाने वाले (मरुतो का) अनुगमन करते है।

यत्पूर्व्य मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते।

विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥८॥

अन्वय- वसव· । मरुत. यत् पूर्व्यम् यत् च नूतनम् (अनुतिष्ठम्) यत् उद्यते यत् च शस्यते (यूयम्) विश्वस्य तस्य नवेदस भवथ। रथ (अपि) शुभ यात (मरुतान्) अनु अवृत्सत।

अनुवाद- हे निवासप्रद । मरुतो ! जो पहले और जो नवीन (अनुष्ठित है) जो स्तुति की जाती है और जो उच्चरित होता है। (तुम) उस सबको जानने वाले हो। रथ (भी) कल्याण के लिये जाने वाले (मरुतो) का अनुगमन करते है।

मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यतन।

अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥९॥

अन्वय- मरुत ! न मृळत। अस्मभ्य मा वधिष्टन। (अस्मभ्य) बहुल शर्म वि यतन्त। (न·) स्तोत्रस्य सख्यस्य अधि गातन रथा (अपि) शुभ यात (मरुतान्) अनु अवृत्सत।

अनुवाद- हे मरुतो ! हमे सुखी करो। हमे मारो नही। (हमारे) प्रभूत सुख को व्यापक करो। (हमारे) स्तोत्र की मित्रता को जानो। रथ (भी) कल्याण के लिये जाने वाले (मरुतो) का अनुगमन करते है।

यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः।

जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥१०॥

अन्वय- मरुत । यूयम् अस्मान् वस्य· (स्वर्गम्) नयत। गृणना (यूयम्) (न·) अहतिभ्य नि· (नयत)। यजत्रा। (मरुत!) न हव्यदाति जुषध्वम्। वयम् (बहुविधाना) रयीणा पतय स्याम।

अनुवाद- हे मरुताो । तुम हमे निवासप्रद (स्वर्ग) मे ले आओ। स्तुत होते हुये (तुम) (हमे) पाप से दूर (ले जाओ)। हे यजनीय । (मरुतो) हमारे द्वारा प्रदत्त हवि से प्रसन्न होओ। हम (बहुविध) धन के स्वामी हो।

सूक्त - (५६)

देवता- मरुत , ***ऋषि***- श्यावाश्वात्रेय, ***छन्द***- बृहती, ३, ७, सतोबृहती।

अग्ने शर्धन्तमा गण पिष्ट रुक्मेभिरञ्जिभिः।

विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि॥१॥

अन्वय- अग्ने ! शर्धन्त (मरुताम्) गणम! आ हवे। (अहम्) अद्य रूक्मेभि· अञ्जिभि पिष्ट मरुता विश रोचनात् दिव अधि अव (अस्मदभिमुखम्) ह्वये।

अनुवाद- हे अग्ने । बलवान (मरुत-) गणो का आह्वान करो। (मै) आज चमकदार आभूषणो से युक्त मरूद्गणो को प्रकाशमान द्युलोक से (हमारी) ओर (आने का) आह्वान करता हूँ।

यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः।

ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्ध भीमसंदृशः॥२॥

अन्वय- (अग्ने । त्वम्) हृदा चित् यथा (मरुतः) मन्यसे तत् इत् आशस· (मरुत.) मे जग्मुः। ये (मरुतः) नेदिष्ठ ते हवनामि आ गमन्। भीमसदृशः तान् (हविष्येन) वर्ध।

अनुवाद- (हे अग्ने ! तुम) हृदय से जिस तरह (मरुतो) को मानते हो उसी तरह अहिसक (मरुत) मेरे लिये आये। जो (मरुत) समीपस्थ तुम्हारे आह्वान से आते है भयकरदर्शी उनको (हविष्य द्वारा) बढाओ।

मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा।

ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः॥३॥

अन्वय- पृथिवी इव मीळहुष्मती पराहता मदन्ती (मरूत्सेना) अस्मात् आ एति। मरुत· । वः अमः ऋक्ष. न (दीप्ता) गौ इव शिमीवान् भीमयु· द्रुघः च सन्ति।

अनुवाद- पृथिवी की भाँति प्रबल स्वामिका अप्रतिहत, हर्षित होती हुयी (मरुत्सेना) हमारी ओर आती है। मे मरुतो । तुम्हारे गण अग्नि की भाँति (दीप्त) गौ की भाँति कर्मवान् भयकर वृषभो से युक्त (एवम्) दुर्धर (हैं)।

नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः।

अश्मान चित्स्वर्य१पर्वत गिरि प्र च्यावयति यामभिः॥४॥

अन्वय- गव न दुर्धुर ये (मरुतः) (स्वकीयेन) ओजसा वृथा (शत्रून्) नि रिणन्ति। (ते) (स्वकीयेन) यामभि· अश्मान स्वर्य चित् पर्वत गिरि प्र च्यवयन्ति।

अनुवाद- अश्व की भाँति कठिनाई से हिस्य (मरुत) (अपने) बल से अनायास (शत्रुओ) को नष्ट करते हैं (वो) (अपने) गमन द्वारा व्याप्त, शब्दवान, जलयुक्त पर्वत को विचलित करते है।

उत्तिष्ठ नूनमेषा स्तोमैः समुक्षितानाम्। मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये॥५॥

अन्वय- (मरुत·!) (यूय) उत् तिष्ठ। नूनम् एषां स्तोमैः समुक्षिताना पुरुतमम् अपूर्व्यम् गवा सर्गम् इव (गणयुक्त) मरुता वय ह्वये,

अनुवाद- (हे मरुतो!) (तुम) उठो। निश्चय ही इन स्तोत्रो से वर्धित, समृद्ध, अपूर्व्य, गायो के सघ की भाँति (गणयुक्त) मरुतो का (हम) आह्वान करते है।

युंग्ध्वं ह्यरुषी रथे युंग्ध्वं रथेषु रोहितः।
युंग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे॥६॥

अन्वय- (मरुत !) (यूय) रथे अरूषाः (वडवाः) युड्ध्वम्। रथेषु रोहित· (अश्वः) युड्ध्वम्। धुरि बोलह्वे अजिरा हरी युड्ध्वम्। धुरि बोळ्हवे वहिष्ठा (अश्वौ) (युड्ध्वम्)।

अनुवाद- (हे मरुतो !) (तुम) रथ मे दीप्त (घोडियो) को युक्त करो। रथ मे लोहित (अश्व) को नियोजित करो। भार-वहन के लिये तीव्रगामी घोडे नियोजित करो। भारवहन के लिये वाहक (अश्व) (नियोजित करो)।

उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत॥७॥

अन्वय- मरुतः। वाजी, अरूषः, तुविस्वनिः, दर्शतः स्यः (अश्वः अस्ति) (तम्) इह (रथे) धायि स्म। (मरुत· !) रथेषु (युक्तम्) तम् (अश्वम्) प्र चोदत (येन) वः यामेषु (सः) चिर मा करत्।

अनुवाद- हे मरुतो ! वेगवान, कान्तिवान, ध्वनियुक्त, दर्शनीय वह (अश्व) (है) (उसे) यहाँ (रथ मे) नियोजित करो। (हे मरुतो !) रथ मे (युक्त) उस (अश्व) को प्ररित करो (जिससे) तुम्हारे मार्ग मे (वह) विलम्ब न करे।

रथ नु मारुतं वय श्रवस्युमा हुवामहे।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी॥८॥

अन्वय- वयम् (आत्रेय·) मारुत श्रवस्यु (त) रथ नु आ हुवामहे यस्मिन् सुरणानि बिभ्रती (रुद्रपत्नी) रोदसी मरूत्सु सचा आ तस्थे:

अनुवाद- हम (अत्रि) मरुतो के अन्नयुक्त (उस) रथ का आह्वान करते है जिस पर जल धारण करती हुयी (रुद्रपत्नी) रोदसी मरुनो के साथ बैठी है।

त वः शर्धं रथेशुभं त्वेष पनस्युमा हुवे।

यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी॥६॥

अन्वय- यस्मिन् सुजाता सुभगा (रुद्रपत्नी) मीळ्हुषी व मरुत्सु सचा महीयते। मरुत ! (वयम्) व रथे शुभ, त्वेष, पनस्यु (तम्) शर्धम् आ हुवे

अनुवाद- जिसमे सुजन्मा, ऐश्वर्ययुक्त (रुद्रपत्नी) मीळ्हुषी मरुतो के साथ पूजित होती है। हे मरुतो ! (हम) तुम्हारे रथ मे शोभन दीप्त, स्तुत्य (उस) गण का आह्वान करते है।

सूक्त - (५७)

देवता- मरुत , ***ऋषि***- श्यावाश्वात्रेय, **छन्द**- जगती, ७, ८, त्रिष्टुप्।

आ रुद्रास इद्रवंतः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गतन।

इय वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे॥१॥

अन्वय- इन्द्रवन्तः ! सजोषसः ! रुद्रासः ! (मरुत. !) सुविताय (यज्ञाय) (यूय) हिरण्यरथा· आगन्तन। अस्मत् इयम् मति व प्रति हर्यते। उदन्यवे तृष्णजे (गोतमाय) न (अस्मान्) दिव उत्सा (आनय)।

अनुवाद- हे इन्द्रानुचर ! समान प्रीति वाले ! रुद्रपुत्र ! (मरुतो !) शोभन (यज्ञ) के लिये (तुम) स्वर्णमयरथ मे आओ। हमारी यह सतुति तुम्हारी आकाक्षा करती है। जलाकाक्षी, प्यासे (गौतम) की भाँति (हमारे लिये) द्युलोक से जल लाओ।

वाशीमत ऋष्टिमंतो मनीषिण. सुधन्वान इषुमतो निषगिणः।

स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम्॥२॥

अन्वय- पृश्निमातर·! मरुतः ! (यूय) वशीमन्तः, ऋष्टिमन्तः, मनीषिण·, सुधन्वान·, इषुमन्तः, निषिङ्गिण., स्वाश्वाः, सुरथाः स्थ स्वायुधा (च) (भवथ) (एव विधा. यूय) शुभ याथन।

अनुवाद- हे पृश्निसज्ञक मातावाले ! मरुतो ! (तुम) कुठारयुक्त भाले से युक्त, मनीषी, शोभन धनुष वाले वाणयुक्त, तूणीर युक्त, शोभन अश्वयुक्त, शोभनरथ पर स्थित (एव) शोभन आयुध वाले (हो)। (इस प्रकार के तुम) कल्याण के लिये गमन करते हो

धूनुथ द्या पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया।

कोपयथ पृथिवी पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम्॥३॥

अन्वय- (मरुत !) (यूयम्) दाशुषे (यजमानाय) द्याम् पर्वतान् वसु (च) धूनुथ। वः यामनः भिया वना नि जिहते। पृश्निमातर ! उग्राः ! मरुतः ! यत् (यूयम्) पृषती. (अश्वाः) (रथे) अयुग्धवम् (तदा) (रथे) अयुग्धवम् (तदा) पृथिवीम् (अभिवृष्टया) कोपयथः

अनुवाद- (हे मरुतो !) (तुम) दानी (यजमान) के लिये द्युलोक से मेघ (और) धन प्रदान करते हो। तुम्हारे आगमन के भय से वन काँपते हैं। हे पृश्निमातर ! उग्र ! (मरुतो !) जब (तुम) पृषती (अश्व) (रथ मे) नियोजित करते हो (तब) पृथिवी को (वृष्टि से) क्षोभित करते हो।

वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः सुपेशसः।
पिशंगाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः॥४॥

अन्वय- मरुतः वातत्विषः वर्षनिर्णिजः यमाः इव सुसदृशः, सुपेशसः, पिशङ्गश्वाः, अरूणाश्वाः, अरेपसः (द्वेषीणाम्) प्रत्वक्षस (स्व-) महिना (च) द्यौः इव उरव सन्ति।

अनुवाद- मरुत सप्राप्तदीप्ति वाले, वृष्टि शोधक, युगल की भाँति समान दिखने वाले, शोभनरूप वाले, भूरे अश्व वाले, अरूण अश्व वाले, पाप रहित (द्वेषियो) का विनाश करने वाले (और) (अपनी) महिमर से द्युलोक की भाँति विशाल है.

पुरुद्रप्सा अंजिमतः सुदानवस्त्वेषसदृशो अनवभ्रराधसः।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृत नाम भेजिरे॥५॥

अन्वय- पुरुद्रप्साः, अञ्जिमन्तः, सुदानवः, त्वेषसदृशः, अनवभ्रराधसः, जनुषा सुजातास, अर्काः (मरुत) दिव. अमृत नाम भेजिरे.

अनुवाद- प्रभूत जल वाले, आभरणयुक्त, शोभनदानी, समान बल वाले, अक्षुण्ण धन वाले, जन्म से सुकुलोत्पन्न, पूज्य (मरुत) द्युलोक से अमृत जल प्राप्त करते है।

ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम्।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे॥६॥

अन्वय- मरुत ! व असयो. ऋष्टय व. बाह्वोः (शत्रूणाम्) अधि सह ओजः बल हितम्। वः शीर्षस नृम्णा (पट्टोषणीषानि) (निहितानि) व. रथेषु आयुधा (निहितानि) वः तनूषु विश्वा श्री अधि पिपिश्रे।

अनुवाद- हे मरुतो ! तुम्हारे कन्धो पर भाले, बाहुओ पर (शत्रुओ को) परास्त करने वाला ओजयुक्त बल स्थित है। तुम्हारे शीर्ष पर स्वर्णमयी (पगडी) (निहित है)। तुम्हारे रथो पर आयुध (निहित है)। तुम्हारे शरीर पर समस्त कान्ति अधिष्ठित है।

गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं चंद्रवद्राधो मरुतो ददा नः।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य॥७॥

अन्वय- मरुत ! (यूयम्) नः गोमत् अश्ववत् रथवत् सुवीर चन्द्रवत् राध. दद। रूद्रियासः ! (मरुतः!) न प्रशस्ति कृणुत। (वयम्) व दैव्यस्य अवस भक्षीय।

अनुवाद- हे मरुतो ! (तुम) हमे गोयुक्त, अश्वयुक्त, रथयुक्त, सुपुत्रयुक्त, हिरण्ययुक्त धन दो। हे रुद्रपुत्र ! (मरुतो !) हमे समृद्ध करो. (हम) तुम्हारी दिव्य रक्षा का भोग करे।

हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहदिगरयो बृहदुक्षमाणाः॥८॥

अन्वय- हये नर ! मरुतः ! न मृळत्। (यूयम्) तुविमघासः, अमृताः, ऋतज्ञाः, सत्यश्रुतः, कवयः, युवानः, बृहत् (हविभिः) उक्षमाणा (सन्ति)।

अनुवाद- हे नेता ! मरुतो ! हमे सुखी करो। (तुम) प्रभूतधनयुक्त, अमर, ऋत को जानने वाले, सत्य के लिये विख्यात, ज्ञानी, तरूण, अत्यन्त स्तुत्य, प्रभूत (हवि द्वारा) सेवित हो।

सूक्त - (५८)

देवता- मरूद्गण, **ऋषि**- श्यावाश्वात्रेय, **छन्द**- त्रिष्टुप्।

तमु नून तविषीमतमेषा स्तुषे गण मारुत नव्यसीनाम्।
य आश्वश्वा अमवद्वहत उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः॥१॥

अन्वय- आशु अश्वाः ये (मरुत) अमवत् (सन्) वहन्ते। अमृतस्य उत स्वराज ईशिरे। एषाम् नव्यसीना मारुतम् त तविषीमन्त गण स्तुषे।

अनुवाद- तीव्रगामी अश्व वाले जो (मरुत) बलयुक्त (होकर) गमन करते है और अमर अपनी दीप्ति से ईश्वर हो जाते है। इन स्तुत्य मरुतो के उस बलयुक्त गण की स्तुति करता हूँ।

त्वेष गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम्।

मयोभुवो ये अमिता महित्वा वंदस्व विप्र तुविराधसो नृन्॥२॥

अन्वय- विप्र । ये मयोभुव· महित्वा, अमिता·, तुविराधसः त्वेष, तवस, खादिहस्त, धुनिव्रत, मायिन, दातिवारम् (सन्ति) नृन (तान् मरुतान्) गण वन्दस्व।

अनुवाद- हे होता । जो सुखप्रदाता, महिमा से अपरिछिन्न, दीप्त, बलयुक्त, कगनयुक्त, हाथ वाले, कँपाने वाले, प्रज्ञायुक्त और धनदाता (हैं) (उन मरुतो के) गण की वन्दना करो।

आ वो यंतूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनति।

अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः॥३॥

अन्वय- (यजमाना· !) ये विश्वे वृष्टि जुनन्ति (ते) उदवाहास· मरुतः अद्य वः आ यन्तु। कवयः ! युवान ! मरुत । य अय समिद्ध· अग्नि· (अस्ति) एतम् जुषध्वम्।

अनुवाद- (हे यजमानो !) जो समस्त वृष्टि को प्रेरित करते है (वे) जलवाही मरुत आज तुम्हारे समीप आये। हे ज्ञानी । नरूण। मरुतो । जो यह समिद्ध अग्नि (है) इसका सेवन करो।

यूय राजानमिर्य जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः।

युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः॥४॥

अन्वय- यजत्रा. । (मरुतः !) यूय राजान जानाय (च) (शत्रुणा) इर्ययम् विभ्वतष्टम् (पुत्रम्) जनयत। मरुतः ! युष्मत् मुष्टिहा बाहुजूत· युष्मत् (एव च) सदश्व· सुवीरः (पुत्रः) एति।

अनुवाद- हे यजनीय (मरुतो !) तुम राजा और (यजमान) के लिये (शत्रु-) सहारक, कुशल कर्त्ता, (पुत्र) को उत्पन्न करने वाले हो। हे मारूतों ! तुमसे मुष्टि द्वारा शत्रुहन्ता, बहुप्रेरक (और) तुमसे (ही) अनेक अश्वो वाला शोभन पुत्र उत्पन्न होता है।

अरा इवेदचरमा अहेव प्रप्र जायते अकवा महोभिः।

पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः स मिमिक्षुः॥५॥

अन्वय- (रथस्य) अराः इव इत् अचरमाः, अहा इव अकवा. (मरुतः) महोभिः (तेजोभि) प्र जायन्ते। पृश्नेः पुत्रा· उपमास रभिष्ठा मरुत स्वया मत्या (वृष्ट्या) सम् मिमिक्षुः।

अनुवाद- (रथ की) कील की भाँति एक साथ उत्पन्न, दिन की भाँति, अवर्णनीय (मरुत) महान (तेज) से भलीभाँति उत्पन्न होते है। पृश्नि के पुत्र, समान वेगवान मरुत अपनी बुद्धि से (वृष्टि के) द्वारा सिञ्चन करते है।

यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः।

क्षोदंत आपो रिणते वनान्यवोस्रियो वृषभः क्रंदतु द्यौः॥६॥

अन्वय- मरुतः ! यत् (यूयम्) पृषतीभिः अश्वैः बीळपावेभिः रथेभिः अयासिष्ट (तदा) आपः क्षोदन्ते, वनामि ऋणन्ति। वृषभ द्यौ उसियः (पर्जन्यः) (वृष्ट्यर्थम्) अव क्रदन्तु।

अनुवाद- हे मरुतो ! जब (तुम) चितकबरे अश्वो (और) दृढनेमि वाले रथ से आते हो (तब) जल प्रवाहित होता है, वन नष्ट होते हैं। वर्षक तेजस्वी जलयुक्त (मेघ) (वृष्टि के लिये) शब्द करते है।

प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषा भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः।

वातान्ह्यश्वान्धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः॥७॥

अन्वय- एषा वामन् पृथिवी चित् प्रथिष्ट। (मरुतः) भर्ताइव (भर्यायाःवत् भूम्या) गर्भ स्वम् इत् शव धु। रुद्रियास ! यामन् (मरुतः) (यूय) व्रातान् हि अश्वान् (रथस्य) धुरि आयुयुज्रे। स्वेद (च) वर्ष चक्रिरे।

अनुवाद- इन (मरुतो) के गमन से पृथिवी उर्वती होती हे) (मरुत्) पति की भाँति (भार्यावत् पृथिवी) के गर्भ मे स्वस्थानीय जल स्थपित करते है। हे रुद्रपुत्र ! (मरुतो !) (तुम) गमनशील अश्वो को (रथ की) धुरि मे नियोजित करते हो (और) स्वेदभूत वृष्टि करते हो।

हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः।

सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः॥८॥

अन्वय- हये नरः ! मरुतः ! नः मृळत् (यूयम्) तुविमघासः, अमृताः, ऋतज्ञाः, सत्यश्रुतः, कवयः, युवानः, बृहत् गिरय, बृहत् (हविभि) उक्षमाणा. (सन्तु)।

अनुवाद- हे नेता मरुतो ! हमे सुखी करो (तुम) प्रभूतधनयुक्त, अमर, ऋत को जानने वाले, सत्य के लिये विख्यात, ज्ञानी तरूण, अत्यन्त स्तुत्य, प्रभूत (हवि द्वारा) सेवित (हो)।

सूक्त - (५६)

देवता- मरुत, **ऋषि**- श्यावाश्वात्रेय, **छन्द**- जगती, ८ त्रिष्टुप्।

प्र वः स्पळ्क्रन्त्सुवितायं दावनेऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे।

उक्षंते अश्वान्तरुषत आ रजोऽनु स्व भानुं श्रथयते अर्णवैः॥१॥

अन्वय- (मरुत !) सुविताय दावने (च) स्पट् वः प्र अक्रन्। (होतः !) दिवे (मरुताय) प्र अर्च। (आत्मन् !) (अहम्) पृथिव्यै ऋत भरे. (ते मरुतः) अश्वान् उक्षन्ते। रजः आ तरुषन्त। अर्णवै· (च) (सह) एव भानुम् अनु श्रथयन्ते।

अनुवाद- (हे मरुतो !) कल्याण के लिये (और) हविप्रदान करने के लिये होता तुम्हारा भलीभाँति स्तवन करते हैं। (हे होता !) दिव्य (मरुत) की अर्चना करो। (हे आत्मन्) (मैं) पृथिवी के लिये स्तोत्र सम्पादित करता हूँ। (वे मरुत्) वृष्टि करते है। अन्तरिक्ष मे सर्वत्र सञ्चरण करते है (और) मेघ (के साथ) अपने तेज को फैलाते हैं।

अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती।
दूरेदृशो ये चितयंत एमभिरतर्महे विदथे येतिरे नरः॥२॥

अन्वय- (यथा) (उदकमध्ये) यती(प्राणिभिः) पूर्णा नौः व्यथिः यती (तथैव) (तत्) (नौ.) न अमादेषा (मरुता) भियसा भूमि एजति। दूरेदृशः ये (मरुतः) (स्व) एमभिः चितयन्ते नरः (ते) विदथे महे (हविर्लक्षणाय) (द्यावापृथिव्योः) अन्ते येतिरे।

अनुवाद- (जैसे-) (जल के मध्य) जाती हुयीं (प्राणियो से) पूर्ण नौका व्यथित होती हुयी गमन करती है (वैसे ही) (इस नौका की) भाँति इन (मरुतो) के भय से पृथिवी काँपती है। दूर से दर्शनीय जो (मरुत) (अपने) गमन से जाते हैं नेता (वे) यज्ञ मे महती (हविभक्षण) के लिये (द्यावापृथिवी) के मध्य मे गमन करते है।

गवामिव श्रियसे शृंगमुत्तम सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने।
अत्या इव सुभ्व१श्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः॥३॥

अन्वय- (मरुत· ! यूय) श्रियसे गवा शृङ्गम् इव उत्तम् (आभूषण धारयथ) रजसः विसर्जने सूर्य. चक्षुः न (तेजः) (धारयथ) नर· ! (मरुतः !) (यूयम्) अत्याः इव सभ्वः चारव (च) स्थन (यूयं) मर्याः इव श्रियसे चेतथ।

अनुवाद- (हे मरुतो ! तुम) कान्ति के लिये गाय की सीग की भाँति उत्तम (आभूषण धारण करते हो।) प्रकाश फैलाने के लिये सूर्य की किरणो की भाँति (तेज धारण करते हो) हे नेता ! (मरुतो !) (तुम) अश्व की भाँति सुगमनशील (एव) दर्शनीय हो। (तुम) मनुष्यो की भाँति ऐश्वर्य के लिये सचेष्ट होओ।

को वो महांति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौस्या।
यूय ह भूमि किरण न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुविताय दावने॥४॥

अन्वय- मरुत ! महता व· महान्ति क· उदश्रवत् ? कः (व·) काव्या (उदश्रवत्) ? क ह (व) पौस्या (उदश्रवत्) ? यूय हि भूमि करण न रेजथ यत् यूय सुविताय दावने (वृष्टि) प्र भरध्वे।

अनुवाद - हे मरुतो ! महान तुम्हारी महानता को कौन प्राप्त कर सकता है ? कौन(तुम्हारे) स्तोत्रपाठ मे समर्थ है ? कौन (तुम्हारे) पुरुषत्व को प्राप्त कर सकता है ? तुम ही भूमि को किरण की भाँति कम्पित करते हो। जिससे तुम शोभन दान के लिए (वृष्टि) सम्पादित करते हो।

अश्वा इवेदरुषासः सबन्धवः शूरा इव प्रयुधः प्रोत युयुधुः।

मर्या इव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षु. प्र मिनंति वृष्टिभिः॥५॥

अन्वय- अश्वा· इव (शीघ्रगन्तारः) अरुषसः, सबन्धव· (एते मरुतः) प्रयुध शूराः इव प्र युयुधु·। सुवृध· मर्या इव नर (मरुत) ववृधु·। (ते) वृष्टिभि· सूर्यस्य चक्षु प्र मिनन्ति।

अनुवाद- अश्व की भाँति (शीघ्रगामी) दीप्त, सुबन्धुयुक्त (ये मरुत) यृद्ध करते हुये वीर की भाति युद्ध करते है। सुवृद्ध मनुष्य की भाँति नेता (मरुत) प्रवृद्ध होते हैं। (वे) वृष्टि द्वारा सूर्य के नेत्र (तेज) को हिसित (आवृत) करते है॥

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः।

सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन॥६॥

अन्वय- (मरुताना मध्ये कोऽपि) अज्येष्ठा, अकनिष्ठास, (शत्रूणाम्) उद्भिद अमध्यमासः (न अस्ति)। ते महसा (तेजसा) ववृधुः। जनुषा सुजातासः, पृश्निमातर· दिव मर्याः (हिताः) (मरुत·) न· अच्छ आ जिगातन।

अनुवाद- (मरुतो के मध्य कोइ भी) अज्येष्ठ, अकनिष्ठ (शत्रु) भेदक अमध्यम (नही है)। वे महान (तेज) से बढते है। जन्म से सुजन्मा, पृश्निमाता वाले, दिव्य, मनुष्यो के (हितकारी) (मरुत) हमारी ओर आगमन करे।

वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसान्तान्दिवो बृहतः सानुनस्परि।

अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः॥७॥

अन्वय- ये श्रेणीः (सन्त·) वयः न ओजसा दिवः अन्तान् बृहत· (च) (पर्वतस्य) सानुन परिपप्तु·। एषाम् अश्वास पर्वतस्य नमनून् (उदकान्) अचुच्यवु. यथा (मनुष्य · देवा·) उभयोः विदुः।

अनुवाद- जो पक्ति-युक्त (होकर) पक्षियो की भाँति बल से अन्तरिक्ष-पर्यन्त (और) विशाल (पर्वत) के शिखर को परिव्याप्त करते हैं। इनके अश्व पर्वत के शब्दयुक्त (जल) को गिराते है यह (मनुष्य और देव) दोनो जानते है।

मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतता।

आचुच्यवुर्दिव्य कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः॥८॥

अन्वय- द्यौ· अदितिः न· वीतये (वृष्टि) (नः वीतये) सम् यन्ताम्। ऋषे ! रुद्रस्य (पुत्राः) मरुतः (त्वया) गृणाना दिव्यम् एते (उदकस्य) कोशम् आ अचुच्यवु·।

अनुवाद- द्यावापृथिवी हमारे कल्याण के लिये (वृष्टि) करे। विचित्रप्रकाशदायिनी उषा (हमारे कल्याण के लिये) प्रयत्न करे. हे ऋषे ! रुद्र के (पुत्र) मरुत (तुम्हारे द्वारा) स्तुत होकर दिव्य इस (जल) का कोश गिरा रहे है।

सूक्त - (६०)

देवता- मरुतौऽग्नामरुतौ वा, ***ऋषि***- श्यावाश्वात्रेय, ***छन्द***- त्रिष्टुप्, ७, ८, जगती।

ईळे अग्नि स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो वि चयत्कृतं नः।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम्॥१॥

अन्वय- (अह श्यावाश्व) स्ववसम् अग्निम् नमोभि· इळे। इह (यज्ञे) प्रसृतः (त्वम्) नः कृत (स्तोत्रम्) विचयत्। रथै· इव (वयम्) वाजयद्भि· (स्तोत्रै·) (अभ्यहितम्) प्र भरे। (वयम्) प्रदक्षिणात् मरुता स्तोमम् ऋध्याम्।

अनुवाद- (मै श्यावाश्व) रक्षक अग्नि की स्तोत्र के द्वारा स्तुति करता हूँ। इस (यज्ञ) मे प्रसन्न (तुम) हमारे कहे (स्तोत्र) को जानो। रथ की भाँति (हम) अन्नेच्छायुक्त (स्तोत्रो) से अपना अभीष्ट सम्पादित करते है। (हम) प्रदक्षिणा से मरुतो के स्तोत्रो का विस्तार करे।

आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद्रेजते पर्वतश्चित्॥२॥

अन्वय- ये रुद्राः (पुत्राः) मरुतः (सन्ति) (ते) श्रुतासु पृषतीसु (अश्वयुक्तासु) सुखेषु रथासु आ तस्थुः। उग्राः (मरुत !) व भिया चित् नि जिहते। पृथिवी चित् रेजते पर्वतः चित् (रेजते)।

अनुवाद- जो रुद्र (पुत्र) मरुत (हैं) (वे) प्रसिद्ध चितकबरे (अश्वो से युक्त) सुखद रथ मे आकर बैठते है। हे उग्र ! (मरुतो !) तुम्हारे भय से वन काँपते है। पृथिवी भी काँपती है। पर्वत भी (काँपता है)।

पर्वताश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः।
यत्क्रीळथ मरुत ऋष्टिमत आप इव सध्र्यचो धवध्वे॥३॥

अन्वय- मरुत ! व स्वने महि वृद्ध पर्वत· चित् बिभय। दिव· रेजते सानु. चित् (रेजते) मरुत ! (यूय) यत् क्रीळथ (तदा) ऋष्टिमन्तः (यूय) आपः इव सध्यञ्च धवध्वे।

अनुवाद- हे मरुतो ! तुम्हारे गर्जन से अत्यन्त विशाल पर्वत भी भयभीत हो जाते है। अन्तरिक्ष काँप जाता है। विशाल प्रदेश भी (काँपता है)। हे मरुतो ! (तुम) जब क्रीडा करते हो (तब) भालायुक्त (तुम) जल की भाँति एक साथ दौडते हो।

वरा इवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे।

श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु॥४॥

अन्वय- रैवतास (विवाहयोग्याः) वराः (यथा) हिरण्यैः (आभरणैः) स्वधाभि (च) तन्वः अभि पिपिश्रे (तम् इव) श्रेयास तवस (मरुत) तनूषु श्रिये रथेषु सत्रा महांसि (तेजांसि) चक्रिरे।

अनुवाद- धनवान (विवाहयोग्य) वर जिस प्रकार सुवर्ण (आभूषणो) से (और) जल से शरीर को अलकृत करते हैं (उसकी तरह) श्रेष्ठ (और) बलवान (मरुत) शरीर की सुन्दरता के लिये रथ मे एक साथ महान (तेज) धारण करते हैं।

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।

युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥५॥

अन्वय- अज्ञज्येष्ठासः, अकनिष्ठासः भ्रातरः एते (मरुतः) सौभगाय सम् ववृधुः। युवा स्वपा एत्रा (मरुताम्) पिता रुद्र सुदुधा (च) (माता) पृश्नि मरूद्भ्यः सुदिना (अकुरूताम्)।

अनुवाद- न ज्येष्ठ न कनिष्ठ भाई ये (मरुत) सौभाग्य के लिये साथ बढ़ते है। तरुण शोभनकर्मा इन (मरुतो) के पिता रुद्र (और) सुदोग्ध्री (माता) पृश्नि मरुतो के लिये सुन्दर दिन (उत्पन्न करे)।

यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ।

अतो नो रुद्रा उत वा न्वस्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम॥६॥

अन्वय- सुभगास ! मरुत. ! यूय (यत्) उत्तमे यत् वा मध्यमे (यत्) वा अवमे दिवि स्थ। रुद्रा. अत (स्थानत्रयात्) न (आगच्छत्)। अग्ने ! उत वा नु यत् (वय) यजाम (तत्) हविषः (त्वम्) वित्तात्।

अनुवाद- हे सौभग्यशाली ! मरुतों ! (तुम) जो उत्तम जो मध्यम अथवा जो निम्न लोक मे स्थित हो। हे रुद्रपुत्रो! उन (तीन स्थान) से हमारे समीप (आओ)। हे अग्ने ! आज जो (हम) यजन करे उस हवि को (तुम) जानो।

अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः।

ते मंदसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते॥७॥

अन्वय- विश्वेदेवस. ! मरुतः ! (यूयम्) अग्नि (च) दिव उत्तरात् अधि स्नुभिः वहध्वे। मन्दसानाः धुनय रिशादस ते (यूयम्) सुन्वते यजमानाय वाम (धनम्) धत्त।

अनुवाद- हे सर्वज्ञ ! मरुतो ! (तुम) (और) अग्नि द्युलोक के उत्कृष्टतर ऊपर प्रदेश मे रहते हो। हर्षित होते हुये, शत्रुकम्पक, शत्रुहिसक वे (तुम) अभिषावक यजमान को वरणीय (धन) प्रदान करो।

अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मंदसानो गणश्रिभिः।

पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः॥८॥

अनुवाद- जो श्यावाश्व द्वारा स्तुत वीरतरन्ता के लिये भुजाये फैलाती है वह (देवी तरन्तमहिषी शशीयसी) हमे अश्वसमूह, पशुसमूह, गोसमूह, विभिन्न समूह प्रदान करेम्।

उत त्वा स्त्री शशीयसी पुसो भवति वस्यसी। अदेवत्रादराधसः॥६॥

अन्वय- अदेवत्रात् अराधस पुसः उत त्वा शशीयसी वरस्यी भवति।

अनुवाद- देवताओ की आराधना न करने वाले, दान न देने वाले पुरुष की अपेक्षा तुम शशीयसी श्रेष्ठ हो।

वि या जानाति जसुरि वि तृष्यंतं वि कामिनम्। देवत्रा कृणुते मनः॥७॥

अन्वय- या जसुरि वि जानाति (या) तृष्यन्त वि (जानाति) (या) (धनादि-) कामिन वि (जानाति) (सा देवी शशीयसी) (न) मन देवत्रा कृणुते।

अनुवाद- जो व्यथित को जानती है (जो) तृषित को (जानती है) (जो धनादि) कामी को (जानती है)। (वह देवी शशीयसी) (हमारे) मन को देवकामी करे।

उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः। स वैरदेय इत्समः॥८॥

अन्वय- उत घ (शशीयस्याः) नेमः पुमान (तरन्तः) अस्तुतः इति पणः (अहम्) ब्रुवे। स· (तरन्तः) वैरदेये (धन) समः दाति इन्

अनुवाद- ओर (शशीयसी के) अर्धाग पुरुष (तुरन्त) अस्तुत रहा यह स्तोता (मे) कहता हूँ। वह (तरन्त) दान मे प्राप्त (धन) को समान रूप से देता है।

उत मेऽरपद्युवतिर्ममदुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम्।
वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे॥९॥

अन्वय- उत युवतिः (शशीयसी) प्रति ममन्दुषी मे श्यावाश्वाय वर्तनिम् अरपत्। (तस्याः) रोहिता (अश्वौ) (मा) विप्राय दीर्घयशसे पुरुमीळ्हाय येमतुः।

अनुवाद- और युवति (शशीयसी) प्रसन्न होती हुयी मुझ श्यावाश्व के लिये मार्ग प्रशस्त करती है। (उसके) लोहित अश्व (मुझे) विप्र यशस्वी पुरुमीळ्ह के समक्ष ले जाते है।

यो मे धेनूना शत वैददश्विर्यथा ददत्। तरत इव मंहना॥१०॥

अन्वय- वैदत् अश्वि. यः (पुरुमीळ्ह) यथा मे शत धेनुना (धनम्) (ददत्) (तथा) इव तरन्त· (मे) महना (धनम्) ददत्।

अनुवाद- विददश्व पुत्र जिस (पुरुमीळ्ह) ने जिस प्रकार मुझे सौ गायो का (धन) (दिया) (उसी) प्रकार तरन्त ने (मुझे) महनीय (धन) दिया।

यई वहत आशुभिः पिबतो मदिर मधु। अत्र श्रवासि दधिरे॥११॥

अन्वय- ये ईम् (यज्ञे) आशुभिः अश्वै वहन्ते मधु मदिर (सोमरस) पिबन्त (ते मरुतः) अत्र श्रवासि दधिरे।

अनुवाद- जो इस (यज्ञ) मे तीव्रगामी अश्वो द्वारा लाये जाते है। मधुर मादक (सोमरस) का पान करते हुये (वे मरुत) यहाँ यश प्राप्त करते है।

येषा श्रियाधि रोदसी विभ्राजते रथेष्वा। दिवि रुक्मा इवोपरि॥१२॥

अन्वय- येषा श्रिया रोदसी अधि (इष्ठितः भवथ) (ते मरुत.) उपरि दिवि रूक्मः (आदित्यः) इव रथेषु आ विभ्राजन्ते।

अनुवाद- जिनकी कान्ति से द्यावापृथिवी (व्याप्त है) (वे मरुत) ऊपर द्युलोक मे प्रकाशित (आदित्य की) भाँति रथ पर द्योतमान होते है।

युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः। शुभंयावाप्रतिष्कुतः॥१३॥

अन्वय- स मारूत. गणः युवा, त्वेषरथः, अनेद्यः शुभयावा, अप्रतिस्कुतः (अस्ति)।

अनुवाद- वह मरुतो का गण युवा, दीप्त, रथयुक्त, अनिन्द्य, शुभगामी, अप्रतिहतगति (है)।

को वेद नूनमेषां यत्रा मदंति धूतयः। ऋतजाता अरेपसः॥१४॥

अन्वय- यत्र धूतयः ऋतजाताः अरेपस (मरुतः) मदन्ति एषा (मरुता) (तत् स्थाने) कः नून वेद ?

अनुवाद- जहाँ शत्रुकम्पक, सत्यरक्षक, निष्पाप (मरुत) हर्षित होते है। इन (मरुतो) के (उस स्थान) को कौन जानता है ?

यूय मर्त विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया। श्रोतारो यामहूतिषु॥१५॥

अन्वय- विपन्यवः ! (मरुत !) यूयम् इत्था (अनुग्रहयुक्तम्) धिया मर्त प्रणेतारः (तस्य) यामाहूतिषु श्रोतारः।

अनुवाद- हे स्तुतिकामी ! (मरुतो !) तुम इस (अनुग्रहयुक्त) बुद्धि से मनुष्य को प्रेरित करो (उसके) यज्ञाह्वान को सुनो।

ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चंद्रा रिशादसः। आ यज्ञियासो ववृत्तन॥१६॥

अन्वय- रिशादस ! यज्ञियासः ! (मरुत !) पुरुश्चन्द्राः ते (यूयम्) नः काम्या वसूनि आ ववृत्तन।

अनुवाद- हे शत्रुहिसक! पूज्य ! (मरुतो !) अत्यन्त आह्ल्लादक वे (तुम) हमे स्पृहणीय धन प्रदान करो।

एत मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह। गिरो देवि रथीरिव॥१७॥

अन्वय- उर्म्ये ! देवि ! एत मे स्तोम गिरः दार्भ्याय परा रथी इव (मरूद्भ्यः) वह।

अनुवाद- हे रात्रिदेवि ! इस मेरे स्तोत्र की वाणी को श्यावाश्व से दूर रथ की भाँति (मरुतो के लिये) ले जाओ।

उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ। न कामो अप वेति मे॥१८॥

अन्वय- (उर्म्ये !) सुतसोमे रथवीतौ मे इति वोचतात् (यत्) (तत्पुत्रीविषय) मे कामः न अपवेति।

अनुवाद- (हे रात्रिदेवि !) सोमयाग मे रथवीति से मेरा यह निवेदन करना (कि) (उसकी पुत्री विषयक) मेरी कामना कम नहीं हुयी है।

एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु। पर्वतेष्वपश्रितः॥१९॥

अन्वय- एष मघवा रथवीतिः गोमतीः अनु (तीरे) क्षेति (ते) पर्वतेषु अपश्रितः (सन्ति)।

अनुवाद- यह दानी रथवीति गोमती के (तट पर) निवास करते है। (उन्होने) पर्वत मे आश्रय (लिया है)।

सूक्त - (६२)

देवता- मित्रावरुणौ, ***ऋषि***- श्रुतविदात्रेय, ***छन्द***- त्रिष्टुप्।

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वा सूर्यस्य यत्र विमुचत्यश्वान्।

दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम्॥१॥

अन्वय- (मित्रावरुणौ !) यत्र (स्तोताः) सूर्यस्य अश्वान् विमुचन्ति यत्र दश शता (रश्मयः) सह तस्थुः। ऋतेन अपिहितम् ऋत देवाना वपुषा वाम् श्रेष्ठम् एक तत् (मण्डलम्) (वयम्) अपश्यम्।

अनुवाद- (हे मित्रावरुणौ !) जहाँ (स्तोता) सूर्य के अश्व को मुक्त करते है। जहाँ हजारो (रश्मियाँ) एक साथ स्थित है जल से ढँके सत्यभूत देवताओ में तेजोमय तुम्हारे श्रेष्ठ अद्वितीय उस (मण्डल) को (हमने) देखा है।

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुहे।

विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त॥२॥

अन्वय- मित्रावरुणा ! वाम् तत् महित्व सु (प्रशस्तम्)। त्येन ईर्मा (आदित्यः) अहभि तस्थुषीः (अपः) दुदुहे (युवाम्) स्वसरस्य (आदित्यस्य) धेनाः पिन्वथः। वा (रथस्य) पविः अनु आ वर्तते।

अनुवाद- हे मित्रावरुणौ ! तुम दोनों का वह महत्व अत्यन्त (प्रशसनीय) है। (जिससे) सततगामी (आदित्य) दैनिक गति से स्थावर (जल) का दोहन करता है। तुम दोनी के (रथ का) अद्वितीय चक्र क्रम से परिभ्रमण करता है।

अधारयत पृथिवीमुत द्या मित्रराजाना वरुणा महोभिः।

वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजत जीरदानू॥३॥

अन्वय राजाना ! मित्रावरुणा ! (युवाम्) महोभिः पृथिवी द्याम् उत् अधारयतम्। औषधी वर्धयतम्। गाः पिन्वतम्। जीरदानू! (युवाम्) वृष्टिम् अव सृजतम्।

अनुवाद- हे तेजस्वी । मित्रावरुणौ ! (तुमने) तेज से पृथिवी और द्युलोक को धारण किया। ओषधि को बढाया। गाय आदि को पुष्ट किया। हे शीघ्रदानी । (तुम दोनो) वर्षा को नीचे प्रेरित करते हो।

आ वामश्वासः सुयुजो वहंतु यतरश्मय उप यंत्वर्वाक्।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिंधवः प्रदिवि क्षरंति॥४॥

अन्वय- (मित्रावरुणा !) सुयुजः अश्वासः वाम् आ वहन्तु। यतरश्मयः (अश्वाः) अर्वाक् उप यन्तु। घृतस्य निर्णिक् वाम् अनु वर्तते। (युवरोनुग्रहात्) प्रदिवि सिन्धवः उप क्षरन्ति।

अनुवाद- (हे मित्रावरुणौ !) सुनियोजित अश्व तुम्हारा वहन करे। रस्सी खींचे जाने पर (अश्व) हमरी ओर आये। जल का रूप तुम्हारा अनुवर्तन करता है। (तुम्हारे अनुग्रह से) द्युलोक से नदियाँ बहती है।

अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वी बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा।
नमस्वंता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वंतः॥५॥

अन्वय- धृतदक्षा ! मित्र । वरुण ! (युवाम्) श्रुताम् अमतिम् अनु वर्धात्। यजुषा (मन्त्रैः) (रक्षितम्) बर्हिः इव उर्वीम् रक्षमाणा नमस्वन्ता (युवाम्) गर्ते अधि (स्थितौ) इळासु अन्तः आसाथे।

अनुवाद- हे बलधारक । मित्र ! वरुण ! (तुम) विश्रुत रूप को बढाते हो। यजुष् के (मन्त्रो द्वारा रक्षित) यज्ञ की भाँति पृथिवी की रक्षा करते हुये अन्नयुक्त (तुम दोनो) रथ पर (बैठकर) यज्ञ के मध्य बैठते हो।

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वतः।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ॥६॥

अन्वय- (मित्रा !) वरुणा ! अक्रविहस्ता (युवाम्) यम् (यजमानम्) इळासु अन्तः त्रासाथे (तस्मै) सुकृते (यजमानाय) परस्पा (भवथ)। राजाना अहृणीयमाना (युवाम्) द्वौ सह क्षत्र सहस्रस्थूण (च) (गृह) बिभृथ।

अनुवाद- (हे मित्र !) वरुण ! दानीहस्तयुक्त (तुम) जिस (यजमान) की यज्ञ के मध्य रक्षा करते हो (उस) सुकर्ता (यजमान) के पालक (होओ)। दीप्तिवान क्रोध न करते हुए (तुम) दोनो साथ मे धन (और) सहस्रस्तम्भयुक्त (घर) को धारण करते हो।

हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्य१श्वाजनीव।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य॥७॥

अन्वय- (मित्रावरुणयोः) (रथः) हिरण्यनिर्णिक् (अस्ति) अस्य स्थूणा अयः (सन्ति) (तादृशः रथः) अश्वाजनी इव दिवि विभ्राजते। (वयम्) तिल्विले भद्रे क्षेत्रे निमिता मध्वः (सोमरसम्) अधिगर्त्यस्य वा सनेम।

अनुवाद- (मित्रावरुण का) (रथ) हिरण्यरूप (है) इसके स्तम्भादिहिरण्यमय (है) (ऐसा रथ) व्यापक मेघ की भाँति अन्तरिक्ष मे शोभित होता है। (हम) यज्ञ के कल्याणकर क्षेत्र मे स्थित मधुर (सोमरस) को रथ के ऊपर स्थापित करे।

हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयःस्थूणमुदिता सूर्यस्य।

आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च॥८॥

अन्वय- मित्र ! वरूण। ! (युवाम्) उषसः व्युष्टौ सूर्यस्य उदिता हिरण्यरूपम् अय· स्थूण गर्तम् आ रोहथ· अतः अदिति दिति च चक्षाते।

अनुवाद- हे मित्र ! वरुण ! (तुम) उषा के आगमन (एव) सूर्य के उदित होने पर स्वर्णरूप स्वर्णमयी कीलो से युक्त रथ पर आरोहण करते हो। इससे अदिति और दिति को देखते हो।

यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा।

तेन नो मित्रावरुणाववविष्टं सिषासतो जिगीवांसः स्याम॥९॥

अन्वय- सुदानू ! भुवनस्य गोपा ! मित्रावरुणौ ! (युवाम्) यत् बहिष्ठ नातिविधे अच्छिद्र (सुखम् अस्ति) तत् शर्म (धारयथ); तेन नः अविष्टम्। (वयम्) सिसान्तः जिगीवास (च) स्याम।

अनुवाद- हे शोभनदानी ! विश्वरक्षक ! मित्रावरुणौ ! (तुम) जो व्याघातरहित, अच्छिन्न बहुतम (सुख है) वह सुख (धारण करो) उससे हमारी रक्षा करो। (हम) धनेच्छुक (और) जयेच्छु हो।

सूक्त - (६३)

देवता- मित्रावरुणौ, ***ऋषि***- अर्चनानात्रेय, ***छन्द***- जगती।

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि।

यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः॥१॥

अन्वय- ऋतस्य गोपौ ! मित्रावरुणा ! सत्यधर्माणा (युवाम्) परमे व्योमनि रथम् अधि तिष्ठथः। अत्र (यज्ञे) युव यम् अवथ तस्मै (यजमानाय) दिवः मधुमत् वृष्टि· पिन्वते।

अनुवाद- हे सत्यरक्षक ! मित्रावरुणौ ! सत्यधर्म वाले (तुम) निरतिशय आकाश मे रथ पर बैठते हो। इस (यज्ञ) मे (तुम) जिसकी रक्षा करते हो उस (यज्ञमान) के लिये द्युलोक से मधुर (जल) वृष्टि करते हो।

सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुण विदथे स्वर्दृशा।

वृष्टिं वा राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरति तन्यवः॥२॥

अन्वय- मित्रावरुणा । स्वर्दृश सम्राजौ (युवाम्) (अस्मद्) विदथे अस्य भुवनस्य राजथ। (वयम्) वाम् वृष्टि राध अमृतत्त्वम् (च) ईमहे। (युवयो) तन्यव (रश्मय.) द्यावापृथिवी वि चरन्ति।

अनुवाद- हे मित्रावरुणौ ! स्वर्गदृष्टा सुदीप्त (तुम) (हमारे) यज्ञ मे इस लोक का शासन करते हो। (हम) तुमसे वृष्टिरूप धन (एव) अमृतत्त्व की प्रार्थना करते है। (तुम्हारे द्वारा) विस्तारित (रश्मियाँ) द्यावापृथिवी मे विचरण करती है।

सम्राजो उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रव द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया॥३॥

अन्वय- मित्रावरुणा । सम्राजौ उग्रा वृषभा दिवः पती पृथिव्याः (पती) विचर्षणी (युवाम्) चित्रेभि.। अभ्रैः (सह) रवम् उप तिष्ठथः। (युवाम्) (स्व-) असुरस्य मायया द्याम् वर्षयथ।

अनुवाद- हे मित्रावरुणौ ! सुशोभित उग्र, बलवान, द्युलोक के स्वामी, पृथिवी के (स्वामी) सर्वदृष्टा (तुम) चित्रित मेघो (के साथ) गर्जना करते हुये रहते हो। (तुम) (अपने) बल के सामर्थ्य से द्युलोक से वृष्टि करो।

माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम्।
तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमत ईरते॥४॥

अन्वय- मित्रावरुणा ! वाम् माया ज्योतिः सूर्यः दिवि श्रिता (अस्ति)। (तस्य) आयुध चित्र (किरण) (सर्वत्र) चरति। तम् (सूर्यम्) (युवाम्)अभ्रेण वृष्ट्या (च) गूहथः। (तदा) पर्जन्य ! (त्वत्तः) मधुमन्तः (जलस्य) द्रप्साः ईरते।

अनुवाद- हे मित्रावरुणौ ! तुम्हारे सामर्थ्य से दीप्त सूर्य द्युलोक मे स्थित (है)। (उसकी) आयुधरूप सुन्दर (किरणे) (सर्वत्र) विचरण करती है। उस (सूर्य) को (तुम) मेघ (और) वृष्टि द्वारा छिपा देते हो (तब) हे पर्जन्य ! (तुमसे) मधुर (जल) की धाराये बहती है।

रथं युंजते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु।
रजांसि चित्रा वि चरंति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम्॥५॥

अन्वय- मित्रावरुणा ! शूरः न मरुतः शुभं सुख रथम् (अश्वैः) युञ्जते गविष्टिषु (च) तन्यवः (मरुतः) चित्रा रजासि विचरन्ति। सम्राजा ! (मित्रावरुणौ !) (युवा मरुतः च) दिव पयसा नः उक्षतम्।

अनुवाद- हे मित्रावरुणौ ! वीर की भाँति मरुत कल्याण के लिये सुखकर रथ को (अश्वो से) सयुक्त करते है (और) वृष्टि के निमित्त व्यापक (मरूद्गण) विचित्र लोको मे विचरण करते है। हे सुशोभित । (मित्रावरुणौ !) (तुम और मरूद्गण) द्युलोक के जल से हमे सिञ्चित करो।

वाचं सु मित्रावरुणाविरावती पर्जन्यश्चित्रा वदति त्विषीमतीम्।

अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्या वर्षयतमरुणामरेपसम्॥६॥

अन्वय- मित्रावरुणौ । (युवरोरनुग्रहात्) पर्जन्य सु इरावती चित्रा त्विषिमती वाच वदति। मरुत मायया अभ्रा सु वसत। (युवा मरूद्भि सह) अरुणाम् अरेपस द्याम् वर्षयतम्।

अनुवाद- हे मित्रावरुणौ ! (तुम्हारे अनुग्रह से) मेघ शोभन अन्न प्रदायक विचित्र दीप्त शब्द (गर्जन) करता है। मरूद्गण सामर्थ्य से मेघ को सु आच्छादित करते है। (तुम मरूद्गणो के साथ) अरुणवर्ण निष्पाप द्युलोक से वृष्टि करो।

धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया।

ऋतेन विश्व भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्य रथम्॥७॥

अन्वय- विपश्चिता । मित्रावरुणा । (युवाम्!) असुरस्य (मेघस्य) मायया (वृष्ट्यादिरूपेण च) धर्मणा व्रता रक्षेथे। ऋतेन विश्व भवुन वि राजथ। (यूयम्) चित्र्य, रथ सूर्य दिवि धत्थः।

अनुवाद- हे विद्वान ! मित्रावरुणौ । (तुम) बलशाली (मेघ) के सामर्थ्य (और वृष्ट्यादिरूप) धर्म से यज्ञ की रक्षा करते हो। सत्य से समस्त लोगो को सुशोभित करते हो। (तुम) पूज्य, वेगवान सूर्य को द्युलोक मे धारण करो।

सूक्त - (६४)

देवता- मित्रावरुणौ, ***ऋषि***- अर्चनानसात्रेय, ***छन्द***- अनुष्टुप्, ६ पक्ति।

वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे। परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम्॥१॥

अन्वय- व्रजा इव बाहवोः परि जगन्वासा स्वर्णर रिशादस मित्र वरुण वः (वयम्) ऋचा हवामहे।

अनुवाद- गोयूथ के समान बल से चारो ओर गमन करने वाले, स्वर्ग के नेता, शत्रुहिसक मित्र वरुण तुम दोनो का (हम) मन्त्र द्वारा आह्वान करते है।

ता बाहवा सुचेतुना प्र यंतमस्मा अर्चते। शेव हि जार्य वा विश्वासु क्षासु जोगुवे॥२॥

अन्वय- (मित्रावरुणौ ।) सुचेतुना ता (युवा) बाहवा अर्चते अस्मै प्र यन्तम्। हि वाम् जार्य शेव विश्वासु क्षासु जोगुवे।

अनुवाद- (हे मित्रावरुणौ !) सुप्रज्ञापक उन (अपने) बाहुओ को स्तुति करने वाले मेरे लिये फैलाओ। क्योकि तुम्हारा स्तवनीय सुख समस्त स्थान मे व्याप्त है।

यन्नूनमश्या गतिं मित्रस्य यायां पथा। अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे॥३॥

अन्वय- यत् (वयम्) नुन गतिम् अश्याम् (तदा) मित्रस्य (प्रदर्शित) पथा यायाम्। अहिसानस्य प्रियस्य अस्य (मित्रम्य) शर्मणि (न) सश्चिरे।

अनुवाद- जब हम इस समय गति प्राप्त करे (तब) मित्र के (प्रदर्शित) मार्ग से गमन करे। अहिसक, प्रिय इस (मित्र) का सुख (हमे) प्राप्त हो।

युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा। यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे॥४॥

अन्वय- मित्रावरुणा ! युवाभ्या (प्रदत्तम्) उपमम् (अहम्) ऋचा धेयाम्। यत् ह च (धनेन) मघोना स्तोतॄणा क्षये स्पूर्धसे।

अनुवाद- हे मित्रावरुणौ ! तुम्हारे द्वारा (प्रदत्त) धन (मैं) स्तुति से धारण करता हूँ। और जिस (धन) से धनी स्तोताओ के घर मे स्पर्धा होगी।

आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ। स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे॥५॥

अन्वय- मित्र ! वरुण ! च (युवाम्) स्वे वृधसे मघोना सखीना नः सधस्थे सुदीतिभि· आ (गच्छतम्)।

अनुवाद- हे मित्र ! और वरुण ! (तुम) अपनी वृद्धि के लिये धनी सखा हमारे यज्ञ मे सुदीप्ति से (आओ)।

युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः। उरु णो वाजसातये कृत राये स्वस्तये॥६॥

अन्वय- वरुणा ! युवम् येषु (यज्ञेषु) न· उरू बृहत् च क्षत्र बिभृथः (तस्य उपयोगः) न· वाजसातये राये स्वतस्तये च कृतम्।

अनुवाद- हे मित्रावरुणौ ! तुम जिस (यज्ञ) मे हमे विशाल और बडा बल धारण करवाते हो। (उसका उपयोग) हमारे अन्नलाभ, धन एव कल्याण के लिये करो।

उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि।
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम्॥७॥

अन्वय- नरा ! (मित्रावरुणा !) रूशद्गावि अर्चनानस बिभ्रतौ यजता (युवाम्) उच्छन्त्या (च) देवक्षत्रे मे सुत सोम (पातु) हस्तिभि पट्टभिः (च) न (अश्वैः) आ धावतम्।

अनुवाद- हे नेता ! (मित्रावरुणौ !) अर्चनानस को धारण करते हुये यजनीय (तुम) उषा काल मे किरणो के दीप्त होने पर देवयजन मे मेरे द्वारा अभिषुत सोम का (पान करने के लिये) हाथ (और) पैर के समान (अश्वो) द्वारा दौडकर आओ।

सूक्त - (६५)

देवता- मित्रावरुणौ, **ऋषि**- रातहव्यात्रेय, **छन्द**- अनुष्टुप्, ६ पंक्ति।

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः। वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः॥१॥

अन्वय- यः (स्तोता) (मित्रावरुणयोः स्तुति) चिकेत सः सक्रतुः (अस्ति)। यस्य गिर दर्शतः वरुण मित्र वा वनते स देवत्रा न ब्रवीतु।

अनुवाद- जो (स्तोता) (मित्रावरुण की स्तुति को) जानता है वह शोभनकर्मा (है) जिसकी स्तुति दर्शनीय वरुण और मित्र ग्रहण करते है वह देवताओ के मध्य हमे उपदेश दे।

ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा।

ता सत्पतीऋतावृधं ऋतावाना जनेजने॥२॥

अन्वय- ता हि (मित्रावरुणा) श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा (स्तः) ता सत्पती ऋतवृधा जने जने ऋतावना (स्तः)।

अनुवाद- वे ही (मित्रावरुण) प्रशस्त तेजस्वी, ईश्वर, दूर से सुने जाने वाले (है)। वे सत्पती, यज्ञवर्धक, प्रत्येक लोगो मे सत्य फैलाने वाले है।

ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा।

स्वश्वासः सु चेतुना वाजाँ अभि प्र दावने॥३॥

अन्वय- (मित्रावरुणौ !) ता पूर्वो युवाम् इयानः (अह) अवसे सचा उप ब्रुवे। स्वश्वासः (वयमात्रेय.) वाजान् दावने सुचेतुना (वाम्) अभि प्र (स्तुम.)।

अनुवाद- (हे मित्रावरुणौ !) इन पूर्व तुम्हारी गमनशील (मै) रक्षा के लिय एक साथ स्तुति करता हूँ। अश्वयुक्त (हम अत्रि) अन्नदान के लिये सुमति (तुम्हारी) (स्तुति करते है)।

मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातु वनते।

मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः॥४॥

अन्वय- मित्रः अहो चित् आत् उरू क्षयाय गातु वनते। प्रतूर्वत विधत· मित्रस्य सुमति. हि अस्ति।

अनुवाद- मित्र पापी को भी विशाल घर का उपाय प्रदान करते है। हिसक परिचारक के लिये मित्र की शोभनबुद्धि है।

वय मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे। अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुणाशेषसः॥५॥

अन्वय- वयम् मित्रस्य सप्रथस्तमे अवसि स्याम। (मित्र· !) त्वा ऊतयः अनेहसः (वयम्) वरुणशेषसः सत्रा (निवसाम)।

अनुवाद- हम मित्र के सर्वव्यापी सरक्षण मे हो। (हे मित्र !) तुम्हारे द्वारा रक्षित निष्पाप (हम) वरुण के पुत्रस्वरूप होकर साथ (रहे)।

युव मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः।

मा मघोनः परि ख्यत मो अस्माकमृषीणा गोपीथे न उरुष्यतम्॥६॥

अन्वय- मित्रा ! युवम् इमम् (मा) जन (प्रति) यतथः। (मा) सम् च नयथः। मघोनः (अस्मान् युवा) मा परिख्ययतम्। अस्माकम् ऋषीणा मा (परिख्यतम्) गोपीतये (याज्ञे) न· उरुष्यतम्।

अनुवाद- हे मित्रावरुणौ ! तुम इस (मुझ) स्तोता के (समक्ष) आते हो और (मुझे) भली भाँति ले जाते हो। धनवान (हमारा) (तुम) परित्याग न करना। हमारे पुत्रो का (परित्याग) न (करना)। सुतसोम (याग) मे हमारी रक्षा करना।

सूक्त - (६६)

देवता- मित्रावरुणौ, ***ऋषि***- रातहव्यात्रेय, ***छन्द***- अनुष्टुप्।

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा। वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे॥१॥

अन्वय- (स्तुति) चिकितान ! मर्त ! (यूय) सक्रतू रिशादसा देवौ (मित्रावरुणौ) आ (ह्वय)। ऋतपेशसे (च) प्रयसे महे वरुणाय (हविः) दधीत।

अनुवाद- हे (स्तुति) जानने वाले ! मनुष्यो ! (तुम) सुज्ञानी शत्रुहिसक देवो (मित्रावरुणौ) का आह्वान (करो)। (और) जलरूप, हवियुक्त, महान वरुण के लिये (हवि) धारण करो।

ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्य१ माशते। अध व्रतेव मानुष स्व१र्ण धायि दर्शतम्॥२॥

अन्वय- (मित्रावरुणौ !) ता हि अविह्रुतम् असुर्य क्षत्रं सम्यक् अशाते। अध व्रता मानुषम् इव स्व· न (वा) दर्शत (तत्) (बल) (यज्ञे) धायि।

अनुवाद- (हे मित्रावरुणौ !) तुम्हारा अहिस्य असुर विघातक बल सम्यक् व्याप्त होता है। इसलिये कर्मठ मनुष्य की भँति (अथवा) सूर्य के समान दर्शनीय (उस) (बल को) (यज्ञ मे) धारणा करो।

ता वामेषे रथानामुर्वी गव्यूतिमेषाम्। रातहव्यस्य सुष्टुति दधृक्स्तोमैर्मनामहे॥३॥

अन्वय- (मित्रावरुणौ !) ता (प्रसिद्धौ) वाम् रथानाम् एषे गव्यूतिम् उर्वीम् (कुरूतम)। रातहव्यस्य सुस्तुतिं दधक् (युवयो·) (अहम्) स्तोमैं· मनामहे।

अनुवाद- (हे मित्रावरुणौ !) वह (प्रसिद्ध) तुम रथ के जाने के लिये मार्ग को व्यापक (करो)। रातहव्य की सुस्तुति धारण करने वाले (तुम्हारी) (मैं) स्तोत्रो द्वारा स्तुति करता हूँ।

अधा हि काव्या युव दक्षस्य पूर्भिरद्भुता। नि केतुना जनाना चिकेथे पूतदक्षसा॥४॥

अन्वय- अद्भुता ! पूतदक्षसा ! (मित्रावरुणा !) दक्षस्य (मम) पूर्भि काव्या (युवाम्) (स्व) केतुना जानाना (स्तोत्रम्) अघ हि नि चिकेथे।

अनुवाद- हे अद्भुत ! शुद्धबलयुक्त ! (मित्रावरुणौ !) प्रवृद्ध (मेरी) स्तुतियो द्वारा स्तुत्य (तुम) (अपनी) बुद्धि से लोगो के (स्तोत्र को) भी भलीभाँति जानो।

तदृत पृथिवि बृहच्छ्रवएष ऋषीणाम्। ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरंति यामभिः॥५॥

अन्वय- पृथिवि ! ऋषीणा श्रव· एषे तत् बृहत् ऋत (त्वयि अस्ति)। ज्रयसानौ (मित्रावरुणौ) (स्व) यामभिः पृथु (तत् जलम्) अरम् अति क्षरन्ति।

अनुवाद- हे पृथिवि ! ऋषियो को अन्न प्रदान करने के लिये वह विशाल जल (तुझमे है)। वेगवान (मित्रावरूण) (अपने) कर्म से व्यापक (उस जल) की भलीभाँति वर्षा करते है।

आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः। व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये॥६॥

अन्वय- ईयचक्षसा ! मित्रा ! वयम् सूरय. च वाम् यत् आ (ह्वयामः) (वयम्) व्यचिष्ठे बहुपाय्ये स्वराज्ये यतेमहि।

अनुवाद- हे दूरदर्शी ! मित्रावरुणौ ! हम और स्तोता तुम्हारा आह्वान (करते हैं)। हम अतिविस्तृत बहुगामी अपने राज्य मे गमन करे।

सूक्त - (६७)

देवता- मित्रावरुणौ, ***ऋषि***- यजतात्रेय, ***छन्द***- अनुष्टुप्।

बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत्।
वरुण मित्रार्यमनवर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे॥१॥

अन्वय- अर्यमन् ! आदित्या ! देवा ! मित्र ! वरुण! (युवाम!) इत्था बट्, निष्कृत, यजतम् बृहत् वर्षिष्ठ क्षत्रम् अशाथे।

अनुवाद- हे शत्रुनियामक ! अदिति पुत्र ! देव ! मित्र ! वरुण ! (तुम) इस समय सत्य, अबाध्य, यजनीय अति प्रवृद्धतम बल को प्राप्त करते हो।

आ यद्योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः। धर्तारा चर्षणीना यतं सुम्नं रिशादसा॥२॥

अन्वय- रिशादसा ! मित्र ! वरुण ! चर्षणीना धर्तारा (युवाम्) यत् हिरण्यय योनिम् आसादथ (तदा) (युवाम्) (अस्मभ्यम्) सुम्न यन्तम्।

अनुवाद- हे शत्रुहिसक ! मित्र ! वरुण ! मनुष्यो के धारक (तुम) जब स्वर्णिम यज्ञभूमि मे आकर बैठते हो (तब) (तुम)

(हमे) सुख प्रदान करते हो।

विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा। व्रता पदेव सश्चिरे पाति मर्त्यं रिषः॥३॥

अन्वय- विश्ववेदसः मित्र वरुणः अर्यमा विश्वे हि (देवा) (अस्मदीयानि) व्रता पदा इव सश्चिरे। रिष च मर्त्यम् पान्ति।

अनुवाद- सर्वविद् मित्र, वरुण, अर्यमा सभी (देव) हमारे कर्म मे पैर की भाँति सलग्न होते है। और शत्रुओ से मनुष्य की रक्षा करते है।

ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने।

सुनीथासः सुदानवोऽंहोश्चिदुरुचक्रयः॥४॥

अन्वय- ते हि सत्याः, ऋतस्पृशः जने जने ऋतवानः सुनीथासः सुदानवः अहोः चित् (स्तोतुः) उरूचक्रयः (सन्ति)।

अनुवाद- वे सत्यरूप, जलवर्षी, लोगो मे यज्ञ कराने वाले, शोभनमार्गी, शोभनदानी, पापी स्तोता को भी प्रभूतदाता (है)।

को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम्। तत्सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः॥५॥

अन्वय- मित्र ! वरुण ! कः नु वाम् वा अस्तुतः। तनूनाम् (अस्माकम्) तत् मतिः वाम् आ सु एषते। अत्रिभ्य मतिः (वाम्) आ एषते।

अनुवाद- हे मित्र ! वरुण ! कौन तुममे से स्तुत नही होता ? अल्पमति (हमारी) स्तुति तुम तक पहुँचती है। अत्रियो की स्तुति (तुम) तक पहुँचती है।

सूक्त - (६८)

देवता- मित्रावरुणौ, ***ऋषि***- यजतात्रेय, ***छन्द***- गायत्री।

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा। महिक्षत्रावृत बृहत्॥१॥

अन्वय- मदीया (ऋत्विजः !) वः मित्राय वरुणाय (च) विपा गिरा प्र गायत। महिक्षत्रौ ! (मित्रावरुणौ !) (युवा) बृहत् ऋतम् (आगच्छतम्)।

अनुवाद- हे मेरे (ऋत्विक् !) तुम मित्र (और) वरुण के लिये व्याप्त वाणी से गायन करो। हे प्रभूतबलशाली ! (मित्रावरुणौ !) (तुम) विशाल यज्ञ मे (आओ)।

सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च। देवा देवेषु प्रशस्ता॥२॥

अन्वय- या मित्र वरुणः च उभा सम्राजा घृतयोनी देवा देवेषु च प्रशस्ता (स्तः) (मदीया ऋत्विज ! वः तान् स्तुम)।

अनुवाद- जो मित्र और वरुण दोनो सबके स्वामी जलोत्पादक, दिव्य और देवताओ मे सुस्तुत (हैं) (हे मेरे ऋत्विजो । तुम उनकी स्तुति करो)।

ता नः शक्त पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य। महि वां क्षत्र देवेषु॥३॥

अन्वय- ता (देवौ) न· पार्थिवस्य दिव्यस्य (च) महः रायः दातु शक्त· (स्तः) (देवौः!) वाम् महि क्षत्र देवेषु (प्रसिद्धमस्ति)।

अनुवाद- वे दोनो (देवता) हमे पार्थिव (और) दिव्य प्रभूत धन (देने मे) समर्थ (हैं) (हे देवो !) तुम्हारा महान बल देवताओ मे (प्रसिद्ध है)।

ऋतमृतेन सपंतेषिर दक्षमाशाते। अद्रुहा देवौ वर्धेते॥४॥

अन्वय- (ता देवा) ऋतेन सपन्ता इषिर दक्षम् ऋतम् अशाते। अद्रुहा देवौ वर्धेते।

अनुवाद - (वे देव) जल के स्पर्श से दीप्त प्रवृद्ध यज्ञ को व्याप्त करते है। द्रोह न करने वाले देवता प्रवृद्ध होते है।

वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः बृहते गर्तमाशाते॥५॥

अन्वय- वृष्टिद्यावा रीत्यापा पेषस्पती (मित्रावरुणौ) दानुमत्याः (यागार्थ) बृहन्त गर्तम् आशाते।

अनुवाद - द्युलोक मे वर्षक, जल को मुक्त करने वाले, अन्न के स्वामी (मित्रावरुणौ) दानी मन से (यज्ञ के लिये) विशाल रथ पर आते है।

सूक्त - (६६)

देवता- मित्रावरुणौ, ***ऋषि***- उरूचक्रिरात्रेय, ***छन्द***- त्रिष्टुप्।

त्री रोचना वरुण त्रीँरुत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि।

वावृधानावमतिं क्षत्रियस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम्॥१॥

अन्वय- मित्र ! वरुण ! क्षत्रियस्य अमति ववृधानौ व्रतं (च यजमानम्) अजुर्य रक्षमाणौ (युवाम्) रोचना त्री (भूलोकान्) त्रीन् द्यून् त्रीणि उत रजांसि धारयथः।

अनुवाद- हे मित्र । हे वरुण ! क्षत्रिय के रूप को बढाने वाले, कर्त्ता (यजमान) की निरन्तर रक्षा करने वाले (तुम) तेजस्वी तीन (भूलोक) तीन द्युलोक और तीन अन्तरिक्ष को धारण करते हो।

इरावतीर्वरुण धेनवो वा मधुमद्वां सिंधवो मित्र दुह्रे।

त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणा धिषणानां रेतोधा वि द्युमंतः॥२॥

अन्वय- मित्र । वरुण । वाम् (आज्ञया) धेनव. इरावतीः (भविन्त) वाम् (आज्ञया) सिन्धव· मधुमत् (उदक) दुह्रे।

वृषभास. रेतोधा द्युमन्त. त्रय (अग्निवाटवादित्याः) तिसृणा धिषणाना (पृथिव्यन्तरिक्षद्युलोकानाम्) वि तस्थु।

अनुवाद- हे मित्र । वरुण । तुम्हारी (आज्ञा) से गाये दुग्धवती (होती है) तुम्हारी (आज्ञा) से नदियाँ मधुर (जल) का दोहन करती है। बलवान जलधारक दीप्तिवान तीनो (अग्नि, वायु आदित्य) तीनो स्थानो (पृथिवी अन्तरिक्ष द्युलोक) मे स्थित होते है।

प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य।
राये मित्रावरुण सर्वतातेळे तोकाय तनयाय शं योः॥३॥

अन्वय- प्रात· (काले) सूर्यस्य उदिता माध्यन्दिने (सवने) (अहम्) देवीम् अदिति जोहवामि। मित्रावरुणा । (वयम्) राये तोकाय तनयाय शम् योः सर्वताता (वाम्) ईळे।

अनुवाद- प्रातः (काल) मे सूर्य के उदित होने पर माध्यन्दिन (सवन) मे (मैं) देवी अदिति का आह्वान करता हूँ। हे मित्रावरुणौ । (हम) धन पुत्र पौत्रो के सुख प्राप्ति के लिये यज्ञ मे (तुम्हारी) स्तुति करते है।

या धर्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य।
न वां देवा अमृता आ मिनंति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि॥४॥

अन्वय- या आदित्या (मित्रावरुणा स्तः) (तौ) रोचनस्य रजसः दिव्या पार्थिवस्य उत धर्तारा। मित्रावरुणा । वाम् ध्रुवाणि व्रनानि अमृता देवा न आ मिनन्ति।

अनुवाद- जो अदितिपुत्र (मित्रावरुण है) (वे) दीप्तिवान अन्तरिक्ष और दिव्य पृथिवी को धारण करने वाले है। हे मित्रावरुणौ । तुम्हारे स्थिर नियम को अमर देवता नष्ट नही करते।

सूक्त - (७०)

देवता- मित्रावरुणौ, ***ऋषि***- उरूचक्रिरात्रेय, ***छन्द***- गायत्री।

पुरुरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण। मित्र वंसि वां सुमतिम्॥१॥

अन्वय- मित्र । वरुण ! वाम् अव नून पुरुरुणा चित् हि अस्ति। (वयम्) वाम् सुमति वासि।

अनुवाद- हे मित्र । वरुण ! तुम दोनो की रक्षा निश्चय ही अत्यन्त व्यापक है। (हम) तुम्हारी सुमति को प्राप्त करे।

ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धायसे। वयं ते रुद्रा स्याम॥२॥

अन्वय- अद्रुह्वाणा । (मित्रावरुणौ ।) (वयम्) ता वाम् (स्तुम) (वयम्) धायसे इषम् अश्याम। रुद्रा । वय ते स्याम।

अनुवाद- हे अद्रोही ! (मित्रावरुणौ!) (हम) उन तुम्हारी (स्तुति करते है) (हम) भोजन के लिये अन्न प्राप्त करे। हे रुद्रो । हम तुम्हारे हो।

पात नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथा सुत्रात्रा। तुर्याम दस्यून्तनूभिः॥३॥

अन्वय- रुद्रा ! (मित्रावरुणौ !) पायुभिः न. पातम्। सुत्राता (अस्मान्) त्रायेथाम्। (वयम्) उत् तनूभि दस्यून् तुर्याम।

अनुवाद- हे रुद्रपुत्र ! (मित्रावरुणौ !) रक्षासाधनो द्वारा हमारी रक्षा करो। शोभन रक्षा द्वारा (हमारा) पालन करो। (हम) पुत्रो द्वारा शत्रुओ की हिसा करे।

मा कस्याद्भुतक्रतू यक्ष भुजेमा तनूभिः। मा शेषसा मा तनसा॥४॥

अन्वय- अद्भुतक्रतू ! (मित्रावरुणौ !) (वयम्) तनूभिः कस्य (अन्यस्य) यक्ष (धनम्) मा भुजेम। शेषसा सह (वय कस्य अन्यस्य धनम्) मा (भुजेम)। तनसा सह (वय कस्य अन्यस्य धन) मा भुजेम।

अनुवाद- हे अद्भुतकर्म करने वाले मित्रावरुणौ (हम) अपने शरीर द्वारा किसी (अन्य के धन का उपभोग) न (करे) पुत्रो के साथ (हम किसी अन्य के धन का उपभोग) नही (करे)। पौत्रादि के साथ (हम किसी अन्य के धन का उपभोग) नही करे।

सूक्त - (७१)

देवता- मित्रावरुणो, ***ऋषि***- बाहुवृक्तात्रेय, ***छन्द***- गायत्री।

आ नो गत रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा। उपेमं चारुमध्वरम्॥१॥

अन्वय- रिशायदसा ! मित्र ! वरुण ! (शत्रूणा) बर्हणा (युवाम्) नः इम चारुम् अध्वरम् उप आ गन्तम्।

अनुवाद- हे शत्रुहिसक ! मित्र ! वरुण! (शत्रु-) नाशक (तुम) हमारे इस रमणीय यज्ञ मे आओ।

विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः। ईशाना पिप्यत धियः॥२॥

अन्वय- प्रचेतसा ! मित्र ! वरुण ! (युवाम्) विश्वस्य हि राजथः। ईशाना ! (युवाम!) (नः) धिय (फलैः) पिप्यतम्।

अनुवाद- हे प्रकृष्टज्ञानी ! मित्र वरुण ! (तुम) सबके स्वामी हो। हे ईश्वर ! (तुम) (हमारे) कर्म को (फल द्वारा) तृप्त करो।

उप नः सुतमा गत वरुण मित्र दाशुषः। अस्य सोमस्य पीतये॥३॥

अन्वय- मित्र ! वरुण ! (युवा) नः सुतं (सोमम्) उप आगतम्। दाशुषः (मम) अस्य सोमस्य पीतये (आगतम्)।

अनुवाद हे मित्र ! हे वरुण ! हमारे द्वारा अभिषुत (सोम) के पास आओ। दानी (मेरे) इस सोम के पान के लिये (आओ)।

सूक्त - (७२)

देवता- मित्रावरुणौ, ***ऋषि***- बाहुवृक्तात्रेय, ***छन्द***- उष्णिक्।

आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत्। नि बर्हिषि सदत सोमपीतये॥१॥

अन्वय- अत्रिवत् वयम् (आत्रेयः) गीर्भिः मित्रे वरुणे जुहुमः। (मित्रावरुणौ !) (युवाम्) सोमपीतये बर्हिषि नि सदतम्।

अनुवाद- अत्रि की भाँति हम (आत्रेय) स्तुतियो द्वारा मित्र वरुण का आह्वान करते है। (हे मित्रावरुणौ !) (तुम) सोमपान के लिये कुश के ऊपर बैठो।

व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना। नि बर्हिषि सदत सोमपीतये॥२॥

अन्वय- (मित्रावरुणौ ! युवाम्) (जगतः) धर्मणा व्रतेन ध्रुवक्षेमः स्थः (अतः) यातयज्जनाः (वाम् स्तूयन्ते) (मित्रावरुणौ ! युवाम्) सोमपीतये बर्हिषि नि सदतम्।

अनुवाद- (हे मित्रावरुणौ ! तुम) (ससार को) धारण करने वाले कर्म से च्युत न होते हुये स्थिर रहते हो। (अतः) ऋत्विज (तुम्हारी) स्तुति करते है। (हे मित्रावरुणौ ! तुम) सोमपान के लिये कुश के ऊपर बैठो।

मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये। नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये॥३॥

अन्वय- मित्रः ! वरुण ! च नः यज्ञम् इष्टये (सोमम्) जुषेताम्। (मित्रावरुणौ ! युवाम्) सोमपीतये बर्हिषि नि सदताम्।

अनुवाद- हे मित्र ! और वरुण ! हमारे यज्ञ के अभीष्ट के लिये (सोम का) सेवन करो। (हे मित्रावरुणौ ! तुम) सोमपान के लिये कुश के ऊपर बैठो।

सूक्त - (७३)

देवता- अश्विनौ, ***ऋषि***- पौरात्रेय, ***छन्द***- अनुष्टुप्।

यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना। यद्वा पुरु पुरुभुजा यदंतरिक्ष आ गतम्॥१॥

अन्वय- पुरुभुजा ! अश्विना ! यत् (युवाम्) अद्य परावति (द्युलोके) स्थः यत् (युवाम्) अर्वावति (स्थः) यत् वा पुरु (प्रदेशे) (स्थः) यत् अन्तरिक्षे (स्थः) (तेभ्यः) आ गतम्।

अनुवाद- हे बहुभोक्ता ! अश्विनौ ! यद्यपि (तुम) आज दूरवर्ती (द्युलोक) मे हो। यद्यपि (तुम) गमनशक्य प्रदेश मे (हो) अथवा बहुव्याप्त (प्रदेश) मे हो। यद्यपि अन्तरिक्ष मे (हो) (वहाँ से) आओ।

इह त्या पुरुभूतमा पुरु दंसांसि बिभ्रता। वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे॥२॥

अन्वय- परूभूतमा पुरु दसांसि बिभ्रता वरस्या (अश्विनौ) यामि। अधिग्रू तुविष्टामा त्या (अश्विनौ) इह (यज्ञे) (हवीना) भुजे (अहम्) (हुवे)।

अनुवाद- बहुतो को धारण करने वाले बहुत कर्मो को धारण करने वाले वरणीय (अश्विनौ) के पास आता हूँ। अप्रनिहतगति वाले उन (अश्विनौ) का यहाँ (यज्ञ मे) (हवियो के) उपभोग के लिये (मैं) आह्वान करता हूँ।

ईमान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः। पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः॥३॥

अन्वय- (अश्विनौ ! युवाम्) वपुषे रथस्य अन्यत् वपु चक्रम् ईर्मा यमेथु। अन्या (चक्रेण) नाहुषा युगा मह्ना रजासि (च) परि दीयथ।

अनुवाद- (हे अश्विनौ ! तुम) शोभा के लिये रथ के एक तेजवान चक्र के रूप को नियामित करते हो। अन्य (चक्र) से मनुष्यो के काल (एव) विशाल अन्तरिक्ष को व्याप्त करते हो।

तदू षु वामेना कृते विश्वा यद्वामनुष्टवे। नाना जातावरेपसा समस्मे बंधुमेयथुः॥४॥

अन्वय- विश्वा ! (अश्विनौ !) यत् (स्तोत्रेण) (अहम्) वाम् अनुस्तवे एना (पौरस्य) तदु (स्तोत्र) वाम् सु कृतम् (भवतु)। नाना जातौ अरेपसा (अश्विनौ) अस्मे बन्धुम् (धनम्) सम् आ ईयथुः।

अनुवाद- हे व्यापक (अश्विनौ !) जिस (स्तोत्र) से (मैं) (तुम्हारा) स्तवन करता हूँ इस (पौर) का वह (स्तोत्र) तुम्हारे लिये भलीभाति सम्पादित हो। पृथक् उत्पन्न निष्पाप (अश्विनौ) मेरे लिये बन्धुरूप (धन) भलीभाँति ले आये।

आ यद्वां सूर्या रथं तिष्ठद्रघुष्यदं सदा। परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः॥५॥

अन्वय- (अश्विनौ!) यत् वा सदा रघुष्यद रथ सूर्या आ तिष्ठत् (तदा) (शत्रूणाम्) आतप· घृणा अरुषाः वय· वाम् परि वरन्ते।

अनुवाद- (हे अश्विनौ !) जब तुम्हारे लिये सर्वदा तीव्रगामी रथ पर सूर्या आकर बैठती है (तब) (शत्रुओ को) परितप्त करने वाले तेजस्वी अरूणवर्ण अश्व तुम्हे घेर लेते है।

युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा। घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति॥६॥

अन्वय- नरा ! (अश्विनौ !) यत् अत्रिः सुम्नेन चेतसा युवोः चिकेतति (तदा) नासत्या ! वाम् अस्ना धर्मम् अरेपसम् (अग्नि) भुरण्यति।

अनुवाद- हे नेता ! (अश्विनौ !) जब अत्रि ने आदरयुक्त मन्त्र से तुम्हे जाना (तब) हे नासत्य ! तुम्हारे स्तोत्र द्वारा दीप्त निष्पाप (अग्नि) को प्राप्त किया।

उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु संतनिः। यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नरावर्वर्तति॥७॥

अन्वय- (अश्विना !) यत् वाम् उग्र. ककुहः यायि सतनि (रथस्य शब्द.) यामेषु शृण्वे (तदा) नरा ! अश्विना ! वाम् दसोभि अत्रि आववर्तति।

अनुवाद- (हे अश्विनौ !) जब तुम्हारा उग्र, महान गन्ता, सततगामी (रथ का शब्द) यज्ञ मे सुनायी पड़ता है (तब) हे नेता ! अश्विनौ ! तुम्हारे कर्मो द्वारा अत्रि परावर्तित होते हैं।

मध्वे ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी।
यत्समुद्राति पर्षथ. पक्वाः पृक्षो भरत वाम्॥८॥

अन्वय- मधूयुवा ! रुद्रा (अश्विनौ !) (नः) मध्वः सु पिप्युषी (युवाम्) सिसक्ति। यत् (युवाम्) समुद्रा (अन्तरिक्षाणि) अति पर्षथ (तदा) पक्वा पृक्ष वाम् भरन्त।

अनुवाद- हे मधुर सोम के मिश्रयिता ! रुद्र ! (अश्विनौ!) हमारी मधुर सुस्तुति का (तुम) सेवन करते हो। जब (तुम) व्यापक (अन्तरिक्ष) का अतिक्रमण करते हो (तब) पका हुआ अन्न तुम्हारा पोषण करता है।

सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा।
ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा॥९॥

अन्वय- अश्विना ! (पुराविद) युवा मयोभुवा आहुः इत् वै सत्यम् (अस्ति)। ता (युवाम्) यामहूतमा यामन् आ यामन् मृळयत्तमा (भवतम्)।

अनुवाद- हे अश्विनौ ! (प्राचीनपण्डित) तुम्हे सुखप्रदाता कहते थे यह निश्चय ही सत्य (है)। वह (तुम) आने के लिये आह्वाहित होने पर यज्ञ मे आगमन करते हुये अतिसुखप्रदाता (होओ)।

इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सतु शंतमा। या तक्षाम रथाँ इवावोचाम बृहन्नमः॥१०॥

अन्वय- रथान् इव या (स्तुतिः) (अस्माभिः) तक्षाम (सा) बृहत् नम. (वयम्) अवोचम। इमा ब्रह्माणि अश्विभ्या वर्धना शतमा (च) सन्तु।

अनुवाद- शिल्पी की भाँति जो (स्तुति) (हमारे द्वारा) बनायी गयी है (वह) व्यापक स्तुति (हम) बोलते हैं। ये स्तोत्र अश्विनौ के लिये वर्धक (एव) सुखकर हो।

सूक्त - (७४)

देवता- अश्विनौ, ***ऋषि***- पौरात्रेय, ***छन्द***- अनुष्टुप्, ८ निचृत।

कूष्ठोदेवावश्विनाद्या दिवो मनावसू। तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति॥१॥

अन्वय- मनावसू ! वृषण्वसू ! देवौ ! अश्विना ! (युवाम्) दिवः अद्य कूस्थः तत् (स्तोत्र) श्रवथ (येन) अत्रि वाम् आ विवासति।

अनुवाद- हे स्तुतिरूप धन वाले। हे वर्षा रूप धन वाले। देव ! अश्विनौ ! (तुम) द्युलोक से आज पृथिवी पर स्थित होकर वह (स्तोत्र) सुनो (जिससे) अत्रि तुम्हारी परिचार्या करते है।

कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीना सचा॥२॥

अन्वय- नासत्या ! देवा ! (अश्विना !) कुह त्या (तिष्ठत) ? श्रुता दिवि (त्या) नु कुह (निवसत) ? कस्मिन् जने (त्या) आ यतथ ? क वाम् नदीना सचा (स्यात्) ?

अनुवाद- हे नासत्य ! देव ! (अश्विनौ!) तुम कहाँ (स्थित हो) ? विश्रुत द्युलोक मे (तुम) आज कहाँ निवास (कर रहे हो) ? किस यजमान के पास (तुम) आये हो ? कौन तुम्हारी स्तुति मे सहायक (है)?

कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युजाथे रथम्।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वय वामुश्मसीष्टये॥३॥

अन्वय- (अश्विना!) कम् (यजमान प्रति) याथ? कम् ह (प्रति) गच्छथ ? कम् अच्छ रथम् (अश्वै) युञ्जाथे ? कस्य ब्रह्माणि रण्यथः ? वयम् वाम् इष्टये उश्मसि।

अनुवाद- (हे अश्विनौ !) किस (यजमान के पास) जाते हो ? किसके पास गमन करते हो ? किसके अभिप्राय से रथ को (अश्वो से) युक्त करते हो ? किसके स्तोत्रो से आनन्दित होते हो ? हम तुम्हारे आगमन की कामना करते है।

पौरं चिद्ध्युदप्रुत पौर पौराय जिन्वथः। यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे॥४॥

अन्वय- पौर (-सम्बन्धिनौ ! अश्विनौ !) (युवाम्) उदप्रुतु पौर पौराय जिन्वथ। दुह पदे (अरण्ये) सिहम् इव (गर्जन्तम्) इम् (मेघम्) गृभीततातये (पौराय) यत् (युवा) (जिन्वथ)।

अनुवाद- हे पौर (-सम्बन्धी ! अश्विनौ !) (तुम) जलप्लावक मेघ को पौर के लिये प्रेरित करो। द्रोह के स्थान (अरण्य) मे सिह की भाँति (गरजते हुये) इस (मेघ) को गृहीत (यज्ञ) से घिरे (पुरु) के लिये वो (तुम) (प्ररित करो)।

प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुंचथः। युवा यदीं कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः॥५॥

अन्वय- (अश्विनौ !) (युवा) जुजुरुष वव्रि (रूपम्) च्यवानात् अत्क न प्र मुञ्चथ. यदि पुनः युवा कृथ. (तदा) (स) वध्व (स्त्रिय) (न) काम (रूपम्) ऋण्वे।

अनुवाद- (हे अश्विनौ !) (तुमने) जीर्ण हेय (रूप) को च्यवन से कवच की भाँति अलगकर जब पुन युवा किया (तब) (उसने) सुरूपा (स्त्री की भाँति) कमनीय (रूप) प्राप्त किया।

अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां सदृशि श्रिये।

नू श्रुत म आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू॥६॥

अन्वय- (अश्विनौ!) इह (यज्ञे) वाम् स्तोता (पौर) हि अस्ति। श्रिये (वयम्) वाम् सदृशि स्मसि। मे (आह्वानम्) नु श्रुतम्। वाजिनीवसू ! (श्रुत्वा) अवोभि· आ गतम्।

अनुवाद- (हे अश्विनौ !) इस (यज्ञ) मे तुम्हारा स्तोता (पौर) निश्चय ही है। समृद्धि के लिये (हम) तुम्हारे समीप रहे। मेरे (आह्वान) को आज सुना। हे अन्न के स्वामी ! (सुनकर) रक्षा साधनो के साथ आओ।

को वामद्य पुरुणामा वन्वे मर्त्यानाम्। को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू॥७॥

अन्वय- विप्रवाहसा! वाजिनीवसू ! (अश्विनौ!) पुरुणा मर्त्याणा कः वाम् अद्य आ वन्वे ? कः विप्र (वाम् आ वन्वे ?) क यज्ञै (वाम् आ वन्वे ?)।

अनुवाद- हे विप्रो द्वारा आह्वनीय ! हे अन्नयुक्त धन वाले ! (अश्विनौ !) बहुत से मनुष्यो मे कौन तुम्हारी भलीभाति परिचर्या करेगा ? कौन मेधावी (तुम्हारी परिचर्या करेगा ?) कौन यज्ञो द्वारा (तुम्हारी परिचर्या करेगा ?)।

आ वां रथो रथाना येष्ठो यात्वश्विना। पुरु चिदस्मयुस्तिर आंगूषो मर्त्येष्वा॥८॥

अन्वय- अश्विना !(इतरदेवाना) रथाना येष्ठः वाम् रथः पुरुचित् (शत्रूणा) तिरः अस्मयुः मर्त्येषु आङ्गूषा (युवाम्) आ यात्।

अनुवाद- हे अश्विनौ ! (अन्य देवो के) रथो मे तीव्रगामी तुम्हारा रथ बहुत (शत्रुओ के) हिसक, हमारे आकाक्षी, मनुष्यो मे स्तुत्य (तुम्हे) लाता है।

शमू षु वां मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम्॥६॥

अन्वय- मधुयुवा ! (अश्विना !) वाम् चकृतिः (स्तोत्रम्) अस्माक सु शम् अस्तु। विचेतसा ! (अश्विना !) (युवाम्) श्येना इव विभि· (अश्वैः) अर्वाचीना (आ) दीयतम्।

अनुवाद- हे मधुयुक्त (अश्विनौ !) तुम्हारे लिये बार-बार बनाया (स्तोत्र) हमारे लिये अत्यन्त सुखकर हो। हे विशिष्टज्ञानी॥ (अश्विनौ !) तुम बाज की भाँति गमनशील (अश्वो) द्वारा हमारी ओर आओ।

अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिम हवम्।
वस्वीरू षु वां भुजः पृंचंति सु वां पृचः॥१०॥

अन्वय- अश्विना ! (युवाम्) यत् ह कर्हि चित् (स्थितवन्तौ भवतः) (मे) इम हव शुश्रूयताम्। वाम् सु प्रच· (कामयमानः) वस्वी (हवि) भुज वाम् सु पृञ्चन्ति।

अनुवाद- हे अश्विनौ ! (तुम) जहाँ कही भी (स्थित हो) (मेरे) इस आह्वान को सुनो। तुम्हारे सम्पर्क की (कामना करने वाला) प्रशस्त (हविर्लक्षण) धन तुम्हे भलीभाँति प्राप्त हो।

सूक्त- (७५)

देवता- अश्विनौ, ***ऋषि***- अवस्युरात्रेय, ***छन्द***- पङ्क्ति।

प्रति प्रियतमं रथ वृषण वसुवाहनम्।

स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुत हवम्॥१॥

अन्वय- अश्विनौ ! वाम् स्तोता ऋषि : (अवस्युः) (वाम्) प्रति प्रियतम वृषण वसुवाहन रथ प्रति स्तोमेन भूषति। मध्वी ! (अश्विनौ !) मम हव श्रुतम्।

अनुवाद- हे अश्विनौ ! तुम्हारे स्तोता ऋषि (अवस्यु) (तुम्हारे) अतिप्रिय, फलवर्षक, धनवाहक रथ को स्तोत्र के द्वारा अलङ्कृत करता है। हे मधुरतायुक्त ! (अश्विनौ !) मेरे आह्वान को सुना।

अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना।

दस्ना हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिंधुवाहसा माध्वी मम श्रुत हवम्॥२॥

अन्वय- दस्ना ! हिरण्यवर्तनी ! सुषुम्ना ! सिन्धुवाहसा ! अश्विना। विश्वाः (यजमानान्) अति तिर· (कृत्वा) (युवाम्) अहम् (प्रति) सना आयातम्। मध्वी ! अश्विनौ ! मम हव श्रुतम्।

अनुवाद- हे शत्रुपीडक ! सुवर्णरथवाले ! हे शोभनधन वाले ! हे नदियो के प्रावाहक ! अश्विनौ ! समस्त (यजमानो) का तिरस्कार (करके) (तुम) मेरे (प्रति) सदा आओ। हे मधुयुक्त ! (अश्विनौ !) मेरे आह्वान को सुनो।

आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम्।

रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुत हवम्॥३॥

अन्वय- रुद्रा ! हिरण्यवर्तनी ! (यज्ञ) जुषाणा ! वाजिनीवसू! रत्नानि बिभ्रतौ ! अश्विना। युवम् नः आ गच्छतम्। मध्वी ! अश्विना ! मम हवम् श्रुतम्।

अनुवाद- हे शत्रुरोदक ! हिरण्यरथ वाले ! हे (यज्ञ मे) आनन्दित होने वाले ! अश्वयुक्त धन वाले ! रत्नधारक ! अश्विनौ ! तुम हमारी ओर आओ ! हे मधुयुक्त (अश्विनौ !) मेरे आह्वान को सुनो।

सुष्टुभो वा वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता।

उत वा ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुत हवम्॥४॥

अन्वय- वृषण्वसू ! अश्विना ! सुष्टुभः (मम) वाणीची रथे (स्थितौ) वाम् आहिता। उत ककुहः मृगः वापुष (यजमान) वाम् पृक्ष कृणोति। मध्वी (अश्विना !) मम हवम् श्रुतम्।

अनुवाद- हे धनवर्षक ! अश्विनौ ! सुस्तोता (मेरी) वाणीरूप स्तुति रथ मे (स्थित) तुम्हारे लिये की गयी है और महान सुदर्शन (यजमान) तुम्हे अन्न देता है। हे मधुयुक्त! (अश्विनौ !) मेरे आह्वान को सुनो।

बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता।

विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम्॥५॥

अन्वय- अश्विना! बोधिन्मनसा रथ्या इषिरा, हवनश्रुता (युवाम्) अद्वयाविन च्यवान विभिः नियाथः। मध्वी ! (अश्विनौ !) मम हव श्रुतम्।

अनुवाद- हे अश्विनौ ! बुद्धियुक्त मनवाले, रथयुक्त, दीप्त आह्वान को सुनने वाले (तुम) मायारहित च्यवन के पास अश्वो द्वारा ले जाते हो। हे मधुयुक्त ! (अश्विनौ) मेरे आह्वान को सुनो।

आ वो नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः।

वयो वहंतु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुत हवम्॥६॥

अन्वय- नरा ! अश्विना ! वाम् मनोयुजः प्रुषितप्सवः वयः अश्वासः (सोम-) पीतये सुम्नेभि सह आ वहन्तु। मध्वी ! (अश्विनौ !) मम हव श्रुतम्।

अनुवाद- हे नेता ! अश्विनौ ! तुम्हे मन के समान वेगवान, विचित्ररूप वाले, शीघ्रगामी अश्व (सोम-) पान के लिये सुख के साथ लाये। हे मधुयुक्त ! (अश्विनौ !) मेरे आह्वान को सुनो।

अश्विनावेह गच्छत नासत्या मा वि वेनतम्।

तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या मध्वी मम श्रुत हवम्॥७॥

अन्वय- अश्विनौ ! (युवाम्) इह (यज्ञे) आ गच्छतम्। नासत्या ! विनेत मा (भवतम्) अदाभ्या ! अर्यया (युवाम्) हिरः चित् (प्रदेशात्) (अस्माक) वर्तिः परि यातम्। मध्वी ! (अश्विना !) मम हवम् श्रुतम्।

अनुवाद- हे अश्विनौ ! (तुम) यहाँ (यज्ञ मे) आओ। हे नासत्यौ ! प्रतिकूल न (होओ)। हे अहिंस्य ! स्वामी (तुम) अन्तर्हित (प्रदेश) से (हमारे) घर आओ। हे मधुयुक्त (अश्विनौ !) मेरे आह्वान को सुनो।

अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती।

अवस्युमश्विना युव गृणतमुप भूषथो माध्वी मम श्रुत हवम्॥८॥

अन्वय- अदाभ्या ! शुभः पती! अश्विना । अस्मिन् यज्ञे युव गृणन्त जरितार (मम) अवस्युम् उप भूषथः। मध्वी । (अश्विनौ !) मम हवम् श्रुतम्।

अनुवाद- हे अहिंस्य ! जलाधिपति । अश्विनौ । इस यज्ञ मे तुम स्तुति करते हुये स्तोता (मुझ) अवस्यु को अनुगृहीत करो। हे मधुयुक्त ! (अश्विनौ) मेरे आह्वान को सुनो।

अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्त्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम्॥६॥

अन्वय- उषा (व्युष्टि) अभूत्। ऋत्वियः रूशतपशुः अग्निः (वेद्याम्) आ आधायि। वृषण्वसू । दस्त्रौ ! वाम् आमर्त्य रथ (अश्वै) अयोजि। मध्वी। (अश्विनौ !) मम हव श्रुतम्।

अनुवाद- उषा (उदित) हो गयी है। कालानुसार दीप्त ज्वाला वाला अग्नि (वेदी पर) सस्थापित हुआ है। हे धनप्रदाता । शत्रुसहारक । तुम्हारा अक्षय्य रथ (अश्वो से) युक्त हो गया है। हे मधुयुक्त ! (अश्विनौ !) मेरे आह्वान को सुनो।

सूक्त- (७६)

देवता- अश्विनौ, ***ऋषि***- भौमोऽत्रि, ***छन्द***- त्रिष्टुप्।

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः।
अर्वाञ्चा नून रथ्येह यात पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ॥१॥

अन्वय- उषसाम् अनीकम् अग्निः आ भाति। विप्राणा (स्तोतृणाम्) देवयाः वाचः अस्थुः। रथ्या । अश्विना । युवाम् अर्वाञ्च धर्म पीपिवासम् इह (यज्ञे) अच्छ नून यातम्।

अनुवाद- उषाकाल मे ज्वालायुक्त अग्नि प्रदीप्त होता है। मेधावी (स्तोताओ) की देवकामी वाणी उच्चरित होती है। हे रथयुक्त अश्विनौ । तुम हमारी ओर प्रदीप्त परिवृद्ध इस (यज्ञ) मे निश्चित रूप से आओ।

न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शंभविष्ठा॥२॥

अन्वय- अश्विना । गमिष्ठा उपस्तुता (युवाम्) इह सस्कृत (यज्ञम्) अन्ति नून न प्र मिमीत.। तौ (अश्विनौ) दिवा अभिपित्वे अवर्ति प्रति अवसा आगमिष्ठा दाशुषे (च) यजमानाय शभविष्ठा (स्तः)॥

अनुवाद- हे अश्विनौ ! गमनशील, सुस्तत (तुम) यहाँ सुसस्कृत (यज्ञ) के समीप निश्चय ही हिसा नही करो। वे (अश्विनौ) दिन के प्रारम्भ मे अन्नरहित के पास रक्षा के साथ आने वाले (और) दानी यजमान को सुख प्रदान करने वाले (है)।

उता यात सगवे प्रातरन्हो मध्यदिन उदिता सूर्यस्य।

दिवा नक्तमवसा शंतमेन नेदानी पीतिरश्विना ततान॥३॥

अन्वय- (अश्विनौ !) सगवे प्रातः अहः मध्यन्दिने सूर्यस्य उदिता दिवा नक्तम् उत शतमेन अवसा आ यातम्। अश्विना (अतिरिक्तः अन्यदेवाः) इदानी (सोम-) पीतिः न आ ततान।

अनुवाद- (हे अश्विनौ !) रात्रि के शेष मे प्रातः, दिन, दोपहर मे सूर्य के उदित होने पर दिन और रात मे सुखकर रक्षा के साथ आते है। अश्विनौ (के अतिरिक्त अन्य देवता) इस समय (सोम-) पान के लिये प्रवृत्त नही होते।

इद हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम्।

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाद्भ्या यातमिषमूर्ज वहंता॥४॥

अन्वय- अश्विना ! इदम् हि प्रदिवि (वेद्याम्) स्थान वाम् ओकः (स्तः) इमे गृहाः (वाम् स्तः) इदम् दुरोणम् (वाम् स्तः)। दिव बृहत पर्वतात् अदभ्यः (अन्तरिक्षात्) नः आ यातम्। इषम् ऊर्जम् (च) वहन्ता।

अनुवाद- हे अश्विनौ ! यह उत्तर (वेदी) का स्थान तुम्हारा (है) ये घर (तुम्हारे है)। यह देवयजनगृह (तुम्हारा है)। द्युलोक मे विशाल पर्वत से जलयुक्त (अन्तरिक्ष) से हमारी ओर आओ। अन्न (और) बल वहन करो।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।

आ नो रयिं वहतमोत्त वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि॥५॥

अन्वय- वयम् अश्विनोः नूतनेन अवसा मयोभुवा (च) सुप्रणीति सम् गमेम। अमृता ! (अश्विना !) (युवाम्) नः रयिम् आ वहतम् वीरान् आ (वहतम्) उत् विश्वानि सौभगानि आ (वहतम्)।

अनुवाद- (हम) अश्विनो की नूतन रक्षा (एवम्) सुखकर सुष्ठु गमन से युक्त हो। हे अमर ! (अश्विनौ !) (तुम) हमारे लिये धन लाओ पुत्र प्रदान करो और समस्त सौभाग्य प्रदान (करो)।

सूक्त - (७७)

देवता- अश्विनौ, ***ऋषि***- भौमोऽत्रि, ***छन्द***- त्रिष्टुप्।

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्व पुरा गृध्रादररुषः पिबातः।

प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसति कवयः पूर्वभाजः॥१॥

अन्वय- (ऋत्विज !) प्रातर्यावाणा प्रथमा गृधात् अररूष· पुरा पिबातः (अश्विनौ) यजध्वम्। अश्विना प्रातः हि यज्ञ दधाते। पूर्वभाज कवय (तौ) प्रशसन्ति।

अनुवाद- (हे ऋत्विजो !) प्रात· काल गमन करने वाले, अद्वितीय, हिसक न देने वाले राक्षसो से पूर्व पान करते हुये (अश्विनौ) का यजन करो। अश्विनौ प्रातः काल यज्ञ धारण करते है। पूर्वकालीन मेधावी (उनकी) प्रशसा करते है।

प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम्।

उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वःपूर्वो यजमानो वनीयान्॥२॥

अन्वय- (ऋत्विजः!) प्रातः अश्विना यजध्वम्। (हविषा) हिनोत। साय (हविः) देवया· न अस्ति। अजुष्ट (भवति) उत अस्मत् अन्य· यजते (हविषा) वि चावः पूर्वः पूर्व (स·) यजमान· (देवै·) वनीयान् भवति।

अनुवाद- (हे ऋत्विजो !) प्रातःकाल अश्विनौ का यजन करो। (हवि द्वारा) प्रेरित करो। सायकालीन (हवि) देवगामी नही होती, असेवनीय (हो जाती है) और हमारे अतिरिक्त अन्य यजन करता है और (हवि द्वारा) विशेष तृप्त करता है (वह) यजमान (देवो द्वारा) सेवनीय हो जाता है।

हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम्।

मनोजवा अश्विना वातरहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा॥३॥

अन्वय- अश्विना ! वा हिरण्यत्वक् मधुवर्णः घृतस्नु पृक्षः वहन् मनोजवः वातरहा· रथ· आ वर्तते। येन (युवाम्) विश्वा दुरितानि (मार्गानि) अतियाथ·।

अनुवाद- हे अश्विनौ ! तुम्हारा हिरण्यरूप त्वचा वाला, मधुरवर्णी, जलवर्षक, अन्नवाहक, मन की भाँति वेगवान, वायुसदृश वेगवान रथ हमारी ओर आता है। जिसके द्वारा (तुम) समस्त दुर्गम (मार्ग) का अतिक्रमण कर गमन करते हो।

यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चरिष्ठं पित्वो ररते विभागे।

स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित्तुतुर्यात्॥४॥

अन्वय- य (यजमानः) विभागे (यागे) नासत्याभ्या भूयिष्ठ चरिष्ठ विवेश पित्व (च) ररते। स· अस्य (आत्मन) तोक शर्माभि पीपरत्। अनूर्ध्वभासः (यष्टा) सदम् इत् तुतुर्यात।

अनुवाद- जो (यजमान) हविर्भाग (यज्ञ) मे अश्विनो मे प्रभूत अन्नरूप कर्म स्थापित करता है (और) अन्न प्रदान करता है। वह इस (अपने) पुत्र का कर्म द्वारा पालन करता है। अनुन्नत तेज वाला (यष्टा) सर्वदा हिसित होता है।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।

आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि॥५॥

अन्वय- (वयम्) अश्विनो नूतनेन अवसा मयोभुवा (च) सुप्रणीति सम् गमेम। अमृता! (अश्विना !) (युवाम्) न रयिम् आ वहतम्, वीरान् आ (वहतम्), उत् विश्वानि सौभगानि आ (वहतम्)।

अनुवाद- (हम) अश्विनो की नूतन रक्षा (एव) सुखकर सुष्ठु गमन से युक्त हो। हे अमर ! (अश्विनौ !) (तुम) हमारे लिये धन लाओ पुत्र (प्रदान करो) और समस्त सौभाग्य प्रदान (करो)।

सूक्त (७८)

देवता- अश्विनौ, ***ऋषि***- सप्तवध्रिरात्रेय, **छन्द**- अनुष्टुप्, १-३ उष्णिक्, ४ त्रिष्टुप्।

अश्विनावेह गच्छत नासत्या मा वि वेनतम्। हसाविव पततमा सुताँ उप॥१॥

अन्वय- अश्विनौ ! इह (यज्ञे) आ गच्छतम् नासत्या ! मा विनेतम्। हसौ इव (युवाम्) सुतान् (सोमान्) उप आ पततम्।

अनुवाद- हे अश्विनौ ! इस (यज्ञ) मे आओ। हे नासत्या ! स्पृहाशून्य मत होओ। हस की भाँति (तुम दोनो) अभिसुत (सोम) के समीप आओ।

अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम्। हसाविव पततमा सुताँ उप॥२॥

अन्वय- अश्विना ! यवसम् अनु (धावतः) हरिणौ इव गौरौ इव हंसौ इव (च) (युवाम्) सुतान् (सोमान्) उप आ पततम्।

अनुवाद- हे अश्विनौ ! घास के समीप (दौडते हुये) हरिण गौरमृग की भाँति (और) हस की भाँति (तुम) अभिषुत (सोम) के समीप आओ।

अश्विना वाजिनीवसू जुषेथा यज्ञमिष्टये। हंसाविव पततमा सुतां उप॥३॥

अन्वय- वाजिनीवसू ! अश्विना ! (युवाम्) इष्टये यज्ञ जुषेथाम्। हसौ इव (युवाम्) सुतान् (सोमान्) उप आ पततम्।

अनुवाद- हे अन्नार्थ निवासप्रद ! अश्विनौ ! (तुम) अभीष्टसिद्धि के लिये यज्ञ का सेवन करो। हस की भाँति (तुम) अभिषुत (सोम) के समीप आओ।

अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा।

श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शंतमेन॥४॥

अन्वय- (अश्विनौ!) नाधमाना योषा इव अत्रिः ऋजीसम् अवरोहन् वाम् अजोहवीत्। अश्विना ! (युवाम्) श्येनस्य चित् नूतनेन अवसा शतमेन (रथेन) आ गच्छतम्।

अनुवाद- (हे अश्विनौ !) याचक स्त्री की भाँति अत्रि ने तप्ताग्निकुण्ड से छुडाते हुये तुम्हे मुक्त किया था। हे अश्विनौ ! (तुम) बाज की भाँति नूतन वेगयुक्त सुखकर (रथ) से आओ।

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यंत्या इव।

श्रुत मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुंचतम्॥५॥

अन्वय- वनस्पते ! सूष्यन्त्या (स्त्रिया) योनि· इव वि जिहीष्व। अश्विना ! मे हव श्रुतम्। सप्तवध्रिम् च मुञ्चतम्।

अनुवाद- हे वनस्पते ! प्रसव करने वाली (स्त्री) की योनि की भाँति विवृत होओ। हे अश्विनौ ! मेरे आह्वान को सुनो। और सप्तवध्रि को मुक्त करो।

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये।

मायाभिरश्विना युवं वृक्षं स च वि चाचथः॥६॥

अन्वय- अश्विना ! युवम् भीताय नाधमानाय सप्तवध्रये ऋषये मायाभि· वृक्ष (पेटिकाम्) सम् च (अचथः) वि च अचथ।

अनुवाद- हे अश्विनौ ! तुम भयभीत याचक सप्तवध्रि ऋषि के लिये माया से वृक्ष की (पेटिका को) सम्भक्त (एव) विभक्त करने हो।

यथा वातः पुष्करिणीं समिगयति सर्वतः।

एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः॥७॥

अन्वय- वात यथा पुष्करिणी सर्वत· समिङ्गयाति (तथा) एव ते गर्भः एजतु दशमास्याः (गर्भस्थ· जीव·) निरैतु।

अनुवाद- वायु जिस प्रकार सरोवर आदि सर्वत्र गमन करती है उसी प्रकार तुम्हारा गर्भ गतिशील गतिशील हो। दसवे मास (गर्भस्थ जीव) निकले।

यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति।

एवा त्व दशमास्य सहावेहि जरायुणा॥८॥

अन्वय- यथा वात· यथा वनम् यथा (च) समुद्र· एजति (तथा) एव त्वम् दशमास्या (गर्भस्थ जीव·) जरायुणा सह अवेहि।

अनुवाद- जिस प्रकार वायु जैसे वन (तथा) जैसे समुद्र कम्पित होते है (वैसे) ही तुम्हारा दसवे मास मे (गर्भस्थ जीव) जरायु के साथ निकले।

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि।

निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवंत्या अधि॥९॥

अन्वय- दश मासान्! मातरि (जटरे) अधि शशयान कुमार जीव. अक्षत जीव जीवन्त्या (जनन्याः) अधि निरैतु।

अनुवाद- दश मास माता के (जठर मे) अवस्थित कुमार रूप जीव अक्षत जीव के रूप मे जीवित (जननी) से उत्पन्न हो

सूक्त- (७६)

देवता- उषस्, **ऋषि**- सत्यश्रवात्रेय, **छन्द**- पङ्क्ति।

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।

यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते॥१॥

अन्वय- दिवित्मती । उषः! यथा चित् (त्वम्) न अबोधयः (तथैव) महे राये (प्राप्तये) न अद्य बोधय। सुजाते । अश्वसूनृते । (देवि!) वाय्ये सत्यश्रवसि। (अनुग्रहाण)।

अनुवाद- हे दीप्तिमती । उषा । जिस प्रकार (तुमने) हमे जागृत किया था (उसी प्रकार) प्रभूत धन (-प्राप्ति) के लिए हमे जागृत करो। हे सुजन्मा । अश्वार्थस्तुतिवाक् । (देवि!) वाय्यपुत्र सत्यश्रविस पर (अनुग्रह करो)।

या सुनीथे शौचिद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः।

सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते॥२॥

अन्वय- दिव दुहित. । या (त्वम्) शौचिद्रथे सुनीथे (तमांसि) व्यौच्छः सुजाते। अश्वसूनृते । सा (त्वम्) सहीयसि वाय्ये सत्यश्रवसि (तम) व्युच्छ।

अनुवाद- हे सूर्यपुत्री । जिस (तुमने) शौचिद्रथपुत्र सुनीथ के लिये (अन्धकार का) निवारण किया था हे सुजन्मा। अश्वार्थ स्तुतिवाक्! वह (तुम) अतिबलशाली वाय्यपुत्र के लिये (अन्धकार को) दूर करो।

सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः।

यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते॥३॥

अन्वय- दिवः दुहित। आभरद्वसुः सा (त्वम्) अद्य नः (तम) व्युच्छ। सुजाते । अश्वसूनृते। या (त्वम्) सहीयसि वाय्ये सत्यश्रवसि (तम) व्यौच्छ ।

अनुवाद- हे सूर्यपुत्री । आह्वानधनवाली वह तुम आज हमारे (अन्धकार) का निवारण करो। हे सुजन्मा । अश्वार्थस्तुतिवाक् जो (तुम) बलशाली वाय्यपुत्र सत्यश्रवसि के लिये (अन्धकारका) दूर करो।

अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणति वह्नयः।

मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वतः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते॥४॥

अन्वय- विभावरि! ये वह्नय· (स्तोतार) त्वा स्तोमैः गृणन्ति सुजाते । अश्वसूनृते । मघोनि! (ते) मघैः (युक्ता) दामवन्त सुरातय· (भवन्ति)।

अनुवाद- हे विभाविर । जो तेजस्वी (स्तोता) तुम्हारी स्तोत्रो द्वारा स्तुति करते है, हे सुजन्मा । अश्वार्थ स्तुतिवाक् । दानी । (वे) धन (युक्त) दानी, सुदानी (होते है)।

यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयंति मघत्तये।

परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्वयं सुजाते अश्वसूनृते॥५॥

अन्वय- (उष!) यत् चित् हि इमे ते गणा· मघत्तये छदयन्ति। वृष्टयः अह्वयम् राध ददत (ते) (अस्मान्) परि चित् दधु।

अनुवाद- (हे उषा!) जो तुम्हारे ये उपासकगण धनदाता को आच्छादित करते है, कामनासेचक अक्षय्य धन देते हुये (वे) हमारे अनुकूल हुये। हे सुजन्मा! अश्वार्थस्तुतिवाक् । (तुम) वाय्यपुत्र सत्यश्रवसि के लिये अन्धकार दूर करो।

ऐषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु।

ये नो राधास्यह्वया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते॥६॥

अन्वय- ये मघवान (स्तोतार) अह्वय· राधासि न· अरासत मघोनि ! उष! एषु सूरिषु (स्तोतॄषु) वीरवत् यशः आ धा। सुजाते । अश्वसूनृते । (वय त्वा स्तुवन्ति)

अनुवाद- जो दानी (स्तोता) अक्षुण्ण धन हमे देते है हे दानी। उषा! इन मेधावी (स्तोताओ) को पुत्रयुक्त यश दो। हे सुजन्मा । अश्वप्राप्ति के लिये (हम तुम्हारी स्तुति करते हे)।

तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह।

ये नो राधास्यश्व्या गव्या भजंत सूरयः सुजाते अश्वसूनृते॥७॥

अन्वय- मघोनि । उष. ! ये सूरयः (स्तोतार·) अश्व्या गव्या राधांसि न. भजन्त तेभ्य (त्वम्) द्युम्न बृहत् यशः आ वह।

अनुवाद- हे दानी । उषा! जो मेधावी (स्तोता) अश्वगोयुक्त धन हमे देते है उनको तुम द्योतमान विशाल यश प्रदान करो।

उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः।

साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते॥८॥

अन्वय- दिव दुहित ! सूर्यस्य रश्मिभि शुक्रै शोचद्भि अर्चिभि साकम् (त्वम्) गोमती इष उत न. आ वह। सुजाते ! अश्वसूनृते (वयम् त्वाम् स्तुतिवन्त)।

अनुवाद- हे सूर्यपुत्री ! सूर्य की किरण, निर्मल दीप्त तेज के साथ (तुम) गोयुक्त अन्न भी हमे प्रदान करो। हे सुजन्मा ! अश्वप्राप्ति के लिये (हम तुम्हारी स्तुति करते हैं)।

व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिर तनुथा अपः।

नेत्त्वा स्तेन यथा रिपु तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते॥९॥

अन्वय- दिव दुहितः ! (त्वम्) व्युच्छ नः अपः मा चिर तनुथा। यथा (राजा) स्तेन रिपु (सतापयन्ति) (तथा) सूर· अर्चिषा त्वा इत् न तपाति। सुजाते ! अश्वसूनृते (वय त्वा सतुतिवन्तः)।

अनुवाद- हे सूर्यपुत्री। (तुम) प्रकाशित होओ। हमारे कर्म मे देर न करो। जैसे (राजा) चोर शत्रु को (सतापित करता है) (वैसे) सूर्य रश्मि द्वारा तुम्हे सतप्त न करे। हे सुजन्मा ! अश्वप्राप्ति के लिये (हम तुम्हारी स्तुति करते हैं)।

एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि।

या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते॥१०॥

अन्वय- उष त्वम् एतावत् वा भूयः वा (धनादिकम्) दातुम् अर्हसि। विभावरि! या (त्वम्) स्तोतृभ्यः (तम·) उच्छन्ती न प्रर्मायसे सुजाते ! अश्वसूनृते (वय त्वाम् स्तुतिवन्त ·)।

अनुवाद- हे उषा ! तुम इस प्रकार का अथवा प्रचुर (धनादि) देने मे समर्थ हो। हे विभावरि ! जो (तुम) स्तोताओ के लिये (अन्धकार) दूर करती हो। हिसा नही करती। हे सुजन्मा ! अश्वप्राप्ति के लिये (हम तुम्हारी स्तुति करते हैं)।

सूक्त - (८०)

देवता- उषस्, ***ऋषि***- सत्यश्रवात्रेय, ***छन्द***- त्रिष्टुप्।

द्युतद्यामान बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सु विभातीम्।

देवीमुषस स्वरावहंती प्रति विप्रासो मतिभिर्जरते॥१॥

अन्वय- द्युतद्यामान, बृहतीम्, ऋतेन ऋतवीराम्, अरूणप्सुम्, विभातीम्, स्वः आहन्तीम् देवीम् उषस प्रति विप्रास मतिभि जरन्ते।

अनुवाद- दीप्तरथवर्नी, विशाल, सत्य द्वारा सत्यवती, अरूणरूप, दीप्तिमती, सूर्य की पुरोवर्तिनी देवी उषा की स्तोता स्तोत्रो द्वारा स्तुति करते है।

एषा जनं दर्शता बोधयंती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे।

बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम्॥२॥

अन्वय- दर्शता एषा (उषा) जन बोधयन्ती, पथः सुगान् कृण्वती (सूर्यस्य) अग्रे याति। बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वा उषा अह्नाम् अग्रे ज्योति यच्छति।

अनुवाद- दर्शनीय यह (उषा) लोगो को जागृत करती हुयी, पथ को सुगम करती हुयी (सूर्य के) आगे आती है। विशाल रथवाली, महान, विश्वव्यापिनी उषा दिन के आरम्भ मे ज्योति को फैलाती है।

एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्रेधंती रयिमप्रायु चक्रे।

पथो रदंती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति॥३॥

अन्वय- एषा (उषा) अरूणेभिः गोभि· (रथम्) युजाना अस्रेधन्ती रयिम् अप्रायु चक्रे। देवी पुरुस्तुता विश्ववारा (उषा) सुविताय पथ रदन्ती विभाति।

अनुवाद- यह (उषा) अरूणवर्णी किरणो से (रथ को) सयुक्त करती है। द्योतमाना, बहुस्तुतता, सबके द्वारा वरणीया (उषा) सुगमन के लिये मार्ग को प्रकाशित करती हुयी प्रकाशित होती है।

एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात्।

ऋतस्य पथामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति॥४॥

अन्वय- द्विबर्हा· (ऊर्ध्व- मध्य स्थानयोः) एषा (उषा) तन्व पुरस्तात् आविष्कृण्वाना व्येनी भवति। प्रजानतीव (उषा) ऋतस्य पन्था साधु अनु एति दिशः न मिनाति।

अनुवाद- दोनो (ऊर्ध्वमध्य स्थान मे) यह (उषा) शरीर (किरण) को आगे अवस्थित करती हुयी दीप्तिमती होती है। ज्ञानवती के समान (उषा) सत्य के मार्ग का भलीभांति अनुसरण करती है। दिशाओ को हिसित नही करती।

एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात्।

अप द्वेषो बाधमाना तमास्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात्॥५॥

अन्वय- स्नाती ऊर्ध्वा इव शुभ्रा (योषा) न एषा (उषा) दृशये न· अस्थात्। दिवः दुहिता उषा द्वेष तमासि अप बाधमाना ज्योतिषा आ अगात्।

अनुवाद- स्नानकर उठी हुयी सी शुभ्र (स्त्री) की भाँति यह (उषा) दर्शन के लिये हमारे समक्ष स्थित होती है। सूर्य की पुत्री उषा द्वेषी अन्धकार को दूर हटाती हुयी ज्योति के साथ आगमन करती है।

एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः।

व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः॥६॥

अन्वय- दिव दुहिता प्रतीची एषा (उषा) भद्रा योषा इव नॄन् (स्व) अप्सः नि रिणीते। दाशुषे (यजमानाय) वर्याणि (धनानि) व्युर्णवती युवतिः (उषा) पूर्वथा पुनः (स्व) ज्योतिः अकः।

अनुवाद- सूर्य की पुत्री पश्चिमाभिमुखी यह (उषा) कल्याणकारिणी स्त्री की भाँति मनुष्यो को (अपने) रूप से प्रेरित करती है। दाता (यजमान) को वरणीय (धन) प्रदान करती हुयी युवति (उषा) पहले की भाति (अपनी) ज्योति को प्रकाशित करती है।

सूक्त - (८१)

देवता - सवितृ, ***ऋषि***- श्यावाश्वात्रेय, ***छन्द***- जगती।

युजते मन उत युजते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।

वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥१॥

अन्वय- विप्राः (यजमानाः) मनः (कर्मसु) युञ्जते उत विप्रस्य बृहत. विपश्चितः (सवितु) (आज्ञया) (यज्ञस्य) धिय. युञ्जते। होत्रा· वयुनवित् (सविता) (यज्ञम्) वि दधे। एकः देवस्य सवितुः परिस्तुतिः मही (अस्ति)।

अनुवाद- मेधावी (यजमानो) के मन को (कर्म में) युक्त करता है। मेधावी महान स्तुतियोग्य (सविता) की (आज्ञा से) (यज्ञ-) कार्य मे संलग्न होते हैं। होता को भलीभाँति जानने वाला (सविता) (यज्ञ मे) सलग्न करता है। अद्वितीय देव सविता की स्तुति विशाल (है)।

विश्वा रूपाणि प्रति मुचते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे।

वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति॥२॥

अन्वय- कवि (सविता) विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते। सः द्विपदे चतुष्पदे भद्र प्र असावीत्। वरेण्य· सविता नाक वि अख्यत्। उषस प्रयाणम् (सविता) अनु वि राजति।

अनुवाद- मेधावी (सविता) सम्पूर्ण रूप को धारण करता है। (वह) द्विपदो चतुष्पदो का कल्याण जानता है। वरणीय सविता स्वर्ग को प्रकाशित करता है। उषा के उदित होने के पश्चात् (सविता) प्रकाशित होता है।

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा।

यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना॥३॥

अन्वय- यस्य देवस्य (सवितु·) महिमान प्रयाण अन्ये देवाः इत् अनु ययुः ओजसा (च युक्ता भवन्ति)। य महित्विना पार्थिवानि रजासि विममे एतश. स. देव· सविता (राजते)।

अनुवाद - जिस देव (सविता) के महिमायुक्त मार्ग का अन्य देवता अनुगमन करते है (और) ओज से (युक्त होते है)। जो महिमा से पृथिवी लोक को कम्पित करता है तेजस्वी वह देव सविता (शोभित होता है)।

उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि।

उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः॥४॥

अन्वय- सवित. ! (त्वम्) रोचना त्रीणि (लोकानि) उत यासि। सूर्यस्य उत रश्मिभि सम् उच्यसि। (सवित । त्वम्) रात्रीन् उत उभयत· परि ईयसे। देव ! (सविता ! त्वम्) (जगद्धारकैः) धर्मभिः उत मित्र· भवसि।

अनुवाद- हे सविता । (तुम) दीप्तिवान तीनो (लोको) मे गमन करते हो। सूर्य की किरणो से मिलते हो। (हे सविता । तुम) गत्रि के दोनो ओर से आते हो । हे देव ! (सविता !) (तुम) (जगद्धारक) कर्म से मित्र होते है।

उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः।

उतेद विश्व भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे॥५॥

अन्वय- (सवितः !) त्वम् एकः (एव) (सर्वकर्माणाम्) प्रसवस्य उत ईशिषे। देव । (त्वम्) इत् यामभिः उत पूषा भवसि। (त्वम्) इद विश्वम् उत भुवन वि राजसि। सवित.! श्यावाश्व· ते स्तोमम् अनशे।

अनुवाद- (हे सविता !) तुम अकेले (ही) (समस्त कर्मों को) जानने मे समर्थ हो। हे देव। (तुम) गमन द्वारा पूषा (पोषक) होओ। (तुम) इस समस्त लोक मे सुशोभित होते हो। हे सविता ! श्यावश्व तुम्हे स्तोत्र प्रदान करता है।

सूक्त - (८२)

देवता- सवितृ. ***ऋषि***- श्यायाश्वात्रेय, ***छन्द***- गायत्री, १ अनुष्टुप्।

तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्। श्रेष्ठ सर्वधातम तुर भगस्य धीमहि॥१॥

अन्वय- वयम् देवस्य सवितु· तत् भोजनम् (धनम्) वणीमहे। (वयम्) भगस्य (सवितु अनुग्रहात्) श्रेष्ठ सर्वधातमम् (शत्रूणाम्) तुरम (धनम्) धीमहि।

अनुवाद- हम देव सविता के उस भोग्य (धन) की कामना करते है। (हम) भोगप्रद (सविता के अनुग्रह से) श्रेष्ट सर्वधारक (शत्रु) सहारक (धन) को प्राप्त करे।

अस्य हि स्वयशस्तर सवितुः कच्चन प्रियम्। न मिनन्ति स्वराज्यम्॥२॥

अन्वय- अस्य हि सवितुः स्वयशस्तर प्रिय स्वराज्यम् (ऐश्वर्यम्) कत् चन न मिनन्ति।

अनुवाद- इस सविता के स्वययशकारी प्रिय स्वयप्रकाशित (ऐश्वर्य) को कोई भी नष्ट नही कर सकता।

स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः। त भग चित्रमीमहे॥३॥

अन्वय- स हि भग· सविता दाशुषे (यजमानाय) रत्नानि सुवाति। (वयम्) त (देवम्) भाग चित्रम् (धनम्) ईमहे।

अनुवाद- वह भजनीय सविता दाता (यजमान) को रत्न प्रदान करता है। (हम) उस (देव) से भोग्य चयनीय (धन) की याचना करते है।

अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम्। परा दुःष्वप्न्य सुव॥४॥

अन्वय- देव ! सवित· ! अद्य नः प्रजावत् सौभगम् (धनम्) सावीः। दुः स्वप्न्यम् (इव दारिद्रयम्) परासुव।

अनुवाद- हे देव। सविता ! आज हमे पुत्रादियुक्त सौभाग्ययुक्त (धन) प्रदान करो। दुः स्वप्न (की भांति दारिद्रय) को दूर करो.

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्र तन्न आ सुव॥५॥

अन्वय- देव ! सवित· ! (त्वम्) विश्वानि दुरितानि परासुव। यत् भद्रम् (अस्ति) तत् न· आ सुव।

अनुवाद- हे देव। सविता! (तुम) समस्त अमङ्गल को दूर करो। जो कल्याणकारी (है) वह हमे प्रदान करो।

अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे। विश्वा वामानि धीमहि॥६॥

अन्वय- (वयम्) देवस्य सवितुः सवे अदितये (भूम्यै) अनागसः (स्याम)। (वयम्) विश्वा वामानि (धनानि) धीमहि।

अनुवाद- (हम) देव सविता की आज्ञा से अखण्ड (भूमि) मे निष्पाप (हो)। (हम) समस्त वरणीय (धन) धारण करे।

आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे। सत्यसवं सवितारम्॥७॥

अन्वय- अद्य (वयम्) विश्वदेवम्, सत्पतिम् सत्यसव सवितार सूक्तै· आ वृणीमहे।

अनुवाद- आज (हम) सबके देव, सज्जनो के पालक, सत्यरक्षक सविता की सूक्तो द्वारा कामना करते है।

य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन्। स्वाधीर्देवः सविता॥८॥

अन्वय- स्वाधी य· देव सविता अप्रयुच्छन् उभे आहनी पुर एति (त वय आ वृणीमहे)।

अनुवाद- सुकर्मा जो देव सविता अप्रमत्त होकर दोनो दिनरात के पुरोभाग मे गमन करता है (उसकी हम कामना करते है)।

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन। प्र च सुवाति सविता॥६॥

अन्वय- य सविता इमा विश्वा जातानि श्लोकेन (स्तुतिम्) आश्रवयति प्र च सुवाति (तम् वयम् आ वृणीमहे)।

अनुवाद- जो सविता इन समस्त प्राणियो को यश द्वारा (स्तुति) सुनाता है और प्रेरित करता है (उसकी हम कामना करते है)।

सूक्त - (८३)

देवता- पर्जन्य, ***ऋषि***- भौमोऽत्रि, ***छन्द***- त्रिष्टुप्, २-४ जगती, ६ अनुष्टुप्।

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभि. स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास।

कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम्॥१॥

अन्वय- कनिक्रदन् वृषभ जीरदानु (पर्जन्य) ओषधीषु गर्भ रेत दधाति। (स्तोत!) तवस पर्जन्यम् अच्छ वद। आभि गीभि (तम्) स्तुहि। नमसा आ विवास।

अनुवाद- गर्जन करता हुआ, कामना सेचक, दानशील (पर्जन्य) औषधियो के गर्भ मे जल धारण करवाता है। (हे स्तोताओ!) बलशाली पर्जन्य के सम्मुख बोलो। इन वाणियो से (उनकी) स्तुति करो। नमस्कार द्वारा परिचर्या करो।

वि वृक्षान् हंत्युत हंति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात्।

उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हंति दुष्कृतः॥२॥

अन्वय- (पर्जन्य) वृक्षान् वि हन्ति रक्षसः उत हन्ति। महावधात् विश्व भुवन बिभाय। स्तयन् यत् (पर्जन्य) दुष्कृत हन्ति वृष्ण्यावत (पर्जन्यस्य) अनागाः उत ईषते।

अनुवाद- (पर्जन्य) वृक्षो को नष्ट करता है। राक्षसो को भी मारता है। महावध से समस्त लोक को भयभीत करता है। गर्जन करता हुआ (पर्जन्य) दुष्टो को मारता है। वर्षक (पर्जन्य) की निष्पाप भी स्तुति करते है।

रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ ३ अह।

दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं१ नभः॥३॥

अन्वय- कशया अश्वान् अभिक्षिपन् रथी इव (पर्जन्य) वर्ष्यान् दूतान् मेघान् अह आवि कृणुते। यत् पर्जन्य वर्ष्यम् (जलम्) नभ. कृणुते (तदा) सिंहस्य (इव) स्तनथा (मेघस्य शब्द·) दूरात् (एव) उत् ईरते।

अनुवाद- कशा द्वारा अश्वो को उत्तेजित करने वाले रथी की भाँति (पर्जन्य) वर्षक दूत (मेघो) को प्रकट करता है। जब पर्जन्य वर्षक (जल) को अन्तरिक्ष मे स्थापित करता है (तब) सिह की (भाँति) गरजने वाले (मेघ का शब्द) दूर से (ही) फैल जाता है

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवी रेतसावति॥४॥

अन्वय- यत् पर्जन्य पृथिवी रेतसा अवति (तदा) वाता· प्र वान्ति। विद्युत. पतयन्ति। ओषधी. जिहते स्व· पिन्वते उत इरा विश्वस्मै भुवनाय (हिनाय) जायते।

अनुवाद- जब पर्जन्य पृथिवी की जल द्वारा रक्षा करता है (तब) वायु बहने लगती है। विद्युत चमकती है। ओषधियाँ बढती है। अन्तरिक्ष बहता है और भूमि समस्त लोको के (हित के लिये) समर्थ होती है।

यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपा. स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ॥५॥

अन्वय- यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति। यस्य व्रते शफवत् (गवादिकम्) जर्भुरीति। यस्य व्रते ओषधी· विश्वरूपा (भविन्त) स पर्जन्य ! न महि शम यच्छ।

अनुवाद- जिसके कर्म से पृथिवी अवनत होती है। जिसके कर्म से खुरयुक्त (गाय आदि) पुष्ट होती है। जिसके कर्म से ओषधियाँ विविधवर्णी (होती है) हे वह पर्जन्य ! हमे महान सुख प्रदान करो।

दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्व प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिचन्नसुरः पिता नः॥६॥

अन्वय- मरुत ! दिव· न वृष्टि ररीध्वम्। वृषण· अश्वस्य (मेघस्य) धाराः प्र पिन्वत। (पर्जन्य !) एतेन स्तनयित्नुना (मेघेन सह) अर्वाङ् आ इहि। अप· निषिञ्चन असुर· (स· पर्जन्य·) न· पिता भवतु।

अनुवाद- हे मरुतो ! द्युलोक से हमे वृष्टि प्रदान करो। वर्षक व्यापक (मेघ) की धाराओ को बरसाओ। (हे पर्जन्य!) इस गरजने वाले (मेघ के साथ) हमारी ओर आओ। जल क्षरित करता हुआ बलशाली (वह पर्जन्य) हमारा पालक (हो)।

अभि क्रंद स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यंच समा भवन्तूद्वतो निपादाः॥७॥

अन्वय- (पर्जन्य !) (भूम्याम्) अभि क्रन्द स्तनय गर्भम् (स्थित जलम्) (ओषधीषु) आ धा। उदन्वता रथेन परि दीय। दृति विषित (मेघम्) (वृष्ट्यर्थम्) न्यञ्च सु कर्ष। (येन) उद्वत· निपादा· (च) (प्रदेशा) समा भवन्तु।

अनुवाद- (हे पर्जन्य !) (भूमि पर) शब्द करो, गर्जन करो, गर्भ मे (स्थित जल को) (ओषधियो मे) रखो। जलपूर्ण रथ से सर्वत्र गमन करो; जलधारक आबद्ध (मेघ) को (वृष्टि के लिये) निम्नाभिमुखी करो (जिससे) उन्नत (और) निम्नवर्ती (प्रदेश) समान हो जाये।

महात कोशमुदचा नि षिंच स्यंदतां कुल्या विषिताः पुरस्तात्।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युंधि सुप्रपाण भवत्वघ्न्याभ्यः॥८॥

अन्वय- (पर्जन्य ! त्वम्) महान्त कोश (स्थित मेघम्) उदच नि सिञ्च। (येन) विषिता कुल्या पुरस्तात् स्यन्दताम्। घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि। अघ्न्याभ्य· (जलम्) सप्रपाण भवतु।

अनुवाद- (हे पर्जन्य ! तुम) महान कोश मे (स्थित मेघ को) निकालो नीचे की ओर क्षरित कराओ (जिससे) वेगशालिनी नदियाँ पुरोभाग मे प्रवाहित हो। जल के द्वारा द्यावापृथिवी को आर्द्र करो। गायो के लिये (जल) भलीभाँति पीनेयोग्य हो।

यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः।
प्रतीद विश्वं मोदते यत्कि च पृथिव्यामधि॥९॥

अन्वय- पर्जन्य। यत् कनिक्रदत् स्तनयन् (त्वं) दुष्कृत (मेधान्) हंसि (तदा) च पृथिव्याम् अधि यत्किम् (अस्ति) इद विश्व प्रति मोदते।

अनुवाद- हे पर्जन्य ! जब भयकर रूप से गरजते हुये (तुम) पापी (मेघो) को विदीर्ण करते हो और (तब) पृथिवी मे स्थित जो कुछ भी (है) वो सब हर्षित होते है।

अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम्॥१०॥

अन्वय- (पर्जन्य। त्वम्) अवर्षी· वर्षम् उत सु गृभाय। (त्वम्) धन्वानि अति एतवै उ अकः (कृतवानसि)। (मनुष्याणाम्) भोजनाय ओषधी (त्वम्) अजीजन। प्रजाभ्य· कम् उत (त्वम्) मनीषाम् अविद·।

अनुवाद- (हे पर्जन्य ! तुमने) वृष्टि की है। अभी वृष्टि को दूर करो। (तुमने) निर्जन प्रदेश को सुगमन के लिये जल युक्त (किया)। (मनुष्यो के) भोजन के लिये ओषधियो को (तुमने) उत्पन्न किया और प्रजाओ से (तुमने) स्तुति प्राप्त की है

सूक्त- (८४)

देवता- पृथिवी, ***ऋषि***- भौमोऽत्रि, ***छन्द***- अनुष्टुप्।

अनुवाद- जिस (वरुण) ने चर्म निकालने वाले की भाँति व्यापक अन्तरिक्ष को सूर्य के आस्तरण के लिये विस्तृत किया (हे अत्रे !) (उस) कान्तिवान विख्यात वरुण के लिये अत्यन्त प्रिय बहु अर्थयुक्त स्तोत्र उच्चरित करो।

वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयं उस्रियासु।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्वग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ॥२॥

अन्वय- वरुण वनेषु (अग्रेषु) अन्तरिक्ष वि ततान। (सः) अर्वत्सु वाजम उस्रियासु पयः, हृत्सु क्रतुम्, अप्सु अग्निम् दिवि सूर्यम्, अद्रौ सोमम् अदधात्।

अनुवाद- वरुण वन के (अग्रभाग में) अन्तरिक्ष को फैलाते है। (उन्होने) अश्वो मे बल, गायो मे दुग्ध, हृदय मे सङ्कल्प, जल मे अग्नि, द्युलोक मे सूर्य, पर्वतो मे सोम स्थापित किया है।

नीचीनबारं वरुणः कवंधं प्र ससर्ज रोदसी अंतरिक्षम्।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम॥३॥

अन्वय- वरुणः रोदसी अन्तरिक्ष (हिताय) कवन्ध नीचीनबार प्र ससर्ज। यव वृष्टिः (पुमान्) न विश्वस्य भुवनस्य राजा (वरुणः) तेन (मेघेन) भूम वि उनत्ति।

अनुवाद- वरुण द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष के (हित के लिये) मेघ को निम्नाभिमुखी करते है। यव-सेचक (पुरुष) की भाँति समस्त लोको का स्वामी (वरुण) उस (मेघ) से भूमि को आर्द्र करता है।

उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित्।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयंतः श्रथयंत वीराः॥४॥

अन्वय- वरुणः यदा दुग्ध (मेघम्) वष्टि (तदा) (सः) भूमि पृथिवीम् (अन्तरिक्षम्) द्याम् उत उनत्ति। आदित् पर्वतासः अभ्रेण सम् वसत. तविषीयन्त वीराः (मरुतः) (मेघान्) श्रथयन्त।

अनुवाद- वरुण जब दुग्धरूप (मेघ) की कामना करते है (तब) (वह) भूमि विस्तृत (अन्तरिक्ष) और द्युलोक को आर्द्र करते है। तत्पश्चात् पर्वत मेघ से परिच्छिन्न हो जाते है, बलयुक्त प्रेरक (मरुत) (मेघो को) शिथिल करते है।

इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य मही मायां वरुणस्य प्र वोचम्।
मानेनेव तस्थिवाँ अंतरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण॥५॥

अन्वय- य (वरुणः) अन्तरिक्षे तस्थिवान् मानेन इव सूर्येण पृथिवीम् (अन्तरिक्षम्) वि ममे।(वयम्) असुरस्य श्रुतस्य वरुणस्य इमाम् मही माया सु प्र वोचम्।

अनुवाद- जो (वरुण) अन्तरिक्ष मे स्थित होकर दण्ड की भाँति सूर्य के द्वारा व्यापक (अन्तरिक्ष) को परिव्याप्त करता है। (हम) दलशाली विख्यात वरुण की इस महान प्रज्ञा की प्रशसा करते है।

इमामू नु कवितमस्य माया मही देवस्य नकिरा दधर्ष।

एकं यदुद्ना न पृणत्येनीरासिंचतीरवनयः समुद्रम्॥६॥

अन्वय- आसिञ्चन्तीः एनीः अवनयः यत् एकम् समुद्रम् उद्ना न प्रणन्ति। कवितमस्य देवस्य (वरुणस्य) इमाम् नु मही मायाम् (कश्चिदपि) नाकि आ दधर्ष।

अनुवाद- भलीभाँति सेचन करने वाली, गमनशीला नदियाँ जिस एक समुद्र को जल के द्वारा नही भर पाती। प्रकृष्टज्ञानी, दिव्य (वरुण) की इस महती माया की (कोई भी) हिंसा नही कर सकता।

अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद्भ्रातर वा।

वेश वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत्॥७॥

अन्वय- वरुण ! यत् सीम् (वयम्) अर्यम्यम् मित्र्यम् वा सखाय वा सदम् इत् भ्रातारम् वा नित्य वेश वा अरणम् वा (प्रति) आग चक्रम (तदा) वरुण ! तत् (आगः) शिश्रथः।

अनुवाद- हे वरुण ! जब (हम) श्रेष्ठ मित्र अथवा सखा अथवा सदा भ्राता अथवा नित्य निकटवर्ती अथवा मूक के (प्रति) अपराध करे (तो) हे वरुण ! उस (अपराध) का विनाश करो।

कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्य।

सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः॥८॥

अन्वय- वरुण! कितवास· यद्रिपु· न यत् (वयम्) दीवि यत् वा घ सत्यम् (तम्) न विद्य यत् (पाप) (कृतम्) (तत् त्वम्) शिथिरा (बन्धनानि) इव ता सर्वा विष्य। देव ! अद्य (वयम्) ते प्रियासः स्याम।

अनुवाद- हे वरुण ! द्यूतक्रीडा मे दोषारोपण करते हुये की भाँति यदि हम दोषारोपण करे अथवा जो सत्य है (उसे) न जानकर जो (पाप करे) (तब तुम) शिथिल (बन्धन) की भाँति उन सभी को मुक्त कर दो। हे देव! तत्पश्चात् (हम) तुम्हारे प्रिय हो जाये।

सूक्त (८६)

देवता- इन्द्राग्नी, ***ऋषि***- अत्रि, ***छन्द***- अनुष्टुप्, ६ विराट्पूर्वा।

इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यं। दृळ्हा चित्स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः॥१॥

अन्वय- इन्द्राग्नी ! (युवाम्) उभा वाजेषु यम् मर्त्यम् अवथ. सः त्रित वाणी इव दृळहा (शत्रूणा) द्युम्ना (धनानि) प्र भेदति।

अनुवाद- हे इन्द्राग्नी ! (तुम) दोनो सङ्ग्राम मे जिस मनुष्य की रक्षा करते हो वह त्रित की वाणी की भाँति दृढ (शत्रुओ के) द्योतमान (धन) को छिन्न भिन्न कर देता है।

या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या। या पंच चर्षणीरभीद्राग्नी ता हवामहे।।२।।

अन्वय- या इन्द्राग्नी पृतनासु दुष्टरा (स्तः) या वाजेषु श्रवाय्या (स्तः) या पञ्च- चर्षणी (मनुष्याः सन्ति) (तान्) अभि (रक्षत) ता (वयम्) हवामहे।

अनुवाद- जो इन्द्राग्नी सङ्ग्राम मे अनभिभवनीय (है) जो युद्ध मे स्तुत्य (है) जो पञ्चश्रेणी के (मनुष्य है) (उनकी) (रक्षा करते है) उनका (हम) आह्वान करते है।

तयोरिदमवच्छवस्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः। प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गवा वृत्रघ्न एषते।।३।।

अन्वय- तयो (इन्द्राग्न्ययो :) शवः अभवत् इत् (अस्ति) (यदा) गवाम् (प्राप्तुम्) वृत्रघ्ने (तौ) द्रुणा (रथेन) प्रति आ ईषते (तदा) मघोनो (तयो.) गभस्त्योः तिग्मा (वज्रम्) दिद्युत्।

अनुवाद- उन दोनो (इन्द्राग्नी) का बल पराभूत करने वाला (है) (जब) गायो को (प्राप्त करने) वृत्र का वध करने (दोनो) गमनशील (रथ) से गमन करते है (तब) दानी (उनके) हाथो मे तीक्ष्ण (वज्र) रहता है।

ता वामेषे रथानामिंद्राग्नी हवामहे। पती तुरस्य राधसो विद्वासा गिर्वणस्तमा।।४।।

अन्वय- तुरस्य राधस· पती ! इन्द्राग्नी ! विद्वासा गर्विणस्तमा ता वाम् (वयम्) एषे रथानाम् (प्रेरणाय) हवामहे।

अनुवाद- हे गमीनशील धन के स्वामी ! इन्द्राग्नी ! विद्वान् सर्वाधिक वन्दनीय उन तुम्हारा (हम) सङ्ग्राम मे रथ को (प्रेरित करने के लिये) आह्वान करते है।

ता वृधतावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा। अर्हता चित्पुरो दधेऽशेव देवावर्वते।।५।।

अन्वय- अदभा देवौ मर्ताय द्यून् अनु वर्धन्तौ अर्हन्ता चित् ता देवौ अर्वते (प्राप्तये) अशः इव पुरः दधे।

अनुवाद- अहिंस्य, देव, मनुष्यो के लिये प्रतिदिन बढ़ने वाले, पूज्य उन देवो को अश्व (प्राप्ति) के लिये आदित्य की भाँति आगे स्थापित करता हूँ।।

एवेद्राग्निभ्यामहावि हव्य शूष्यं घृत न पूतमद्रिभिः।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम्।।६।।

अन्वय- अद्रिभि. पूतम् घृतम् न शूष्यम् हव्यम् (वयम्) इन्द्राग्निभ्याम् एव अहावि। ता (युवाम्) सूरिषु गृणत्सु बृहत् श्रव रयिम् (च) दिधृतम्। गृणत्सु इषम् दिधृतम्।

अनुवाद- पत्थर द्वारा पिसे हुये सोमरस की भाँति बलकारक हव्य को (हम) इन्द्राग्नी के लिये समर्पित करते हैं। वे (तुम) मेधावी स्तोताओ को बहुत यश (और) धन प्रदान करो। स्तोताओ को अन्न प्रदान करो।

सूक्त (८७)

देवता- मरुत्, ***ऋषि***- एवयामरुतात्रेय ***छन्द***- अतिजगती।

प्र वो महे मतयो यंतु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत्।

प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भंददिष्टये धुनिव्रताय शवसे।।१।।

अन्वय- एवयामरुत् गिरिजाः मतयः वः महे शधार्य प्रयज्यवे सुखादये भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे मरुत्वते विष्णवे प्र यन्तु।

अनुवाद- एवयामरुत् की वाणी से निष्पन्न स्तोत्र तुम्हारे महान बलशाली, यजनीय, सुखप्रदाता, स्तुतिरूपा इष्टि वाले, मेघचालक, गतिशील मरुतो के साथ विष्णु के पास पहुँचे।

प्र ये जाता महिना ये च नु स्वय प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत्।

क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधृषे शवो दाना महा तदेषामधृष्टासो नाद्रयः।।२।।

अन्वय- ये (मरुतः) महिना (इन्द्रेण) प्र जाताः ये च स्वय नु विद्मना प्र (जाताः) एवयामरुत् (तान् स्तोत्र) ब्रुवते मरुत । व तत् शवः कृत्वा न आधृषे। दाना मह्वा अद्रयः न अधृष्टासः एषाम् (मरुतानाम्) तत् (शवः क्रत्वा न आधृषे)।

अनुवाद- जो (मरुत) महान (इन्द्र) के साथ उत्पन्न हुये और जो स्वयं ही ज्ञान के साथ उत्पन्न हुये एवयामरुत् (उनके लिये स्तोत्र-) पाठ करता है। हे मरुतो ! तुम्हारा वह बल गतिशील होने के कारण अनभिभनीय है। दानी, महान प्रस्तर की भाँति अधर्षणीय इन (मरुतो) का वह (बल गतिशील होने के कारण। अनभिभवनीय है)।

प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत्।

न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्यद्रासो धुनीनाम्।।३।।

अन्वय- सुशुक्वानः सुभ्वः अग्नयः न स्वविद्युतः धुनीना प्र स्पन्द्रासः ये बृहत दिव (आह्वानम्) प्र शिण्विरे। सधस्थे येषा (चालयितुम्) ईरी (कोऽपि) न आ ईष्टे। (तान् मरुतान्) एवयामरुत् गिरा (स्तौति)।

अनुवाद- सुदीप्त शोभन, अग्नि की भाँति स्वयं दीप्तिवान, नदियो के सञ्चालक जो (आह्वान) सुनते हैं। स्वनिवासस्थ जिन्हे (चलने के लिये) प्रेरित करने मे (कोइ भी) समर्थ नही है। (उन मरुतो की) एवयामरुत् स्तोत्र द्वारा (स्तुति करता है)।

स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत्।

यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः ॥४॥

अन्वय- यदा एवयामरुत् स्वात् (स्थानात्) त्मना स्नुभिः नृभिः अश्वैः अयुक्त (मरुताय) नि चक्रमे (तदा) उरूक्रम विस्पर्धास विमहस सः (मरुद्गणः) महतः समानस्मात् (आत्मनः) सदसः जिगाति।

अनुवाद- जब एवयामरुत अपने (स्थान) से स्वयगामी नेता (अश्वो) द्वारा (मरुतो के लिये) निकले (तब) अतिक्रमणकारी, परस्पर स्पर्धाशील, विशिष्ट बलयुक्त, सुखवर्धक वे (मरुद्गण) विशाल, सर्वसामान्य (अपने) स्थान मे निकल पड़ते है।

स्वनो न वोऽमवान्रेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत्।

येना सहंत ऋंजत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः॥५॥

अन्वय- (मरुत !) स्थारश्मानः हिरण्ययाः (आभरणानि) स्वायुधः इष्मिणः (त्वम्) येन (स्वना) (शत्रूणाम्) सहन्त ऋञ्जत व अमवान् वृषा त्वेषः ययिः तविषः (तत्) स्वनः एवयामरुत् न रेजयत्।

अनुवाद- (हे मरुतो !) स्थिर दीप्ति वाले, स्वर्णिम (आभूषण) वाले, श्रेष्ठ आयुध वाले, अन्नवान तुम जिस (ध्वनि) से (शत्रुओ को) अभीभूत करते हुये अलङ्कृत होते हो तुम्हारी बलवान वर्षक, दीप्त, गमनशील, प्रवृद्ध (वह) ध्वनि एवयामरुत् को कम्पित न करे।

अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत्।

स्थातारो हि प्रसितौ संदृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः॥६॥

अन्वय- वृद्धशवसः । (मरुत) वः महिमा अपारः (अस्ति)। त्वेषम् (युष्माकम्) शवः एवयामरुत् अवतु। प्रसितौ (यज्ञे) सदृशि (यूयम्) स्थातारः स्थन। अग्नयः न शुशुक्वांसः ते (मरुतः) नः निदः उरुष्यत्।

अनुवाद- हे प्रवृद्धबलशालिन् ! (मरुत् !) तुम्हारी महिमा अपार (है)। दीप्त (तुम्हारा) बल एवयामरुत् की रक्षा करे। नियममुक्त (यज्ञ) के सदर्शन के विषय मे तुम स्थिर रूप से स्थित हो। अग्नि की भाँति दीप्त वे (मरुत्) हमारी निन्दको से रक्षा करे।

ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवत्वेवयामरुत्।

दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धास्यद्भुतैनसाम्॥७॥

अन्वय- अद्भुतैनसा येषाम् अज्मेषु महः शर्धांसि आ (गच्छन्ति)। अग्नय यथा तुविद्युम्न सुमखाः ते रुद्रास (मरुत) एवयामरुत् अवन्तु। पार्थिवम् (अन्तरिक्षम्) सद्म (मरुद्भिः सह) दीर्घं पृथु पप्रथे।

अनुवाद- निष्पाप जिनके गमन मे महान बल या (जाता है)। अग्नि की भाँति प्रभूतदीप्ति वाले शोभनयज्ञ वाले वे रुद्रपुत्र (मरुत्) एवयामरुत की रक्षा करे। व्यापक (अन्तरिक्ष) का निवास (मरुतो के साथ) दीर्घ विस्तृत होकर फैल गया।

अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत्।

विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्योऽन दंसनाप द्वेषांसि सनुतः॥८॥

अन्वय- अद्वेष ! मरुतः ! नः गातुम् (स्तोत्रम्) आ इतन। जरितुः एवयामरुत् हवम् श्रोत। मह. विष्णोः समन्यव· । रथ्य न स्मत् दसना सनुत· द्वेषांसि अप युयोतन।

अनुवाद- हे विद्वेषहीन ! मरुत् ! हमारे गमनशील (स्तोत्र) के समक्ष आओ। स्तोता एवयामरुत् के आह्वान को सुना। हे महान विष्णु के साथ समान यज्ञवाले ! योद्धा की भाँति कर्म द्वारा अन्तर्निहित द्वेषियो को दूर करो।

गंता नो यज्ञ यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत्।

ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः॥९॥

अन्वय- यज्ञिया. ! (मरुतः !) सुशमि (यूयम्) नः यज्ञ गन्त। अरक्षः (मरुतः) एवयामरुत् हव श्रोत। प्रचेतसः ! (मरुत· !) ज्येष्ठास· पर्वतासः न व्योमनि (प्रवृद्धाः) यूयम् तस्य निदः दुर्धतवः स्यात्।

अनुवाद- हे यजनीय ! (मरुतो !) शोभनकर्मा (तुम) हमारे यज्ञ मे आओ। अहिसक (मरुत्) एवयामरुत के आह्वान को सुने। हे प्रकृष्टज्ञानी ! (मरुतो !) विशाल पर्वत की भाँति अन्तरिक्ष में (प्रवृद्ध) तुम उस निन्दक के लिये अजेय हो।

ऋग्वेद पञ्चम-मण्डलगत शब्दों का कोश

३.१ ऋग्वेद पञ्चम-मण्डलगत शब्दों का कोश

अंशे - ऋ. ५.४२. ५ - स. पु. 'भागवितरक देव विशेष, त्वष्टा, भाग'। √ अश् 'प्राप्त करना' अवे० 'अस', अ०

'Attains.' द्र; अश्नोति, अश्नुते।

अंशु - ऋ. ५. ३६.१ ; ४३. ४ - स. पु. रस, सोमरस, किरण, धागा केशर अवे० 'असुश्'।

अंसे- ऋ ५४.११ , ५७.६- स. पु. 'कन्धा' √ अम् 'मजबूत होना' गा[1] 'amsa' लै० 'Humerus and ansa"

अंहस् - ऋ.५.३१ १३ ; ४५.११; ६५.४; ६७.४- स. पु. 'पाप, अनर्थ, कष्ट, हिंसा, √ अघ 'पापकरणे' अवे० 'अजह्

' अ० 'Anger, Anxious, ill'

अर्क - ऋ.५.८३.१० - स० न० जल, जलयुक्त अं० 'Aqua' ।

अक्तु- ऋ.५.४८.३; ५४.४ ; ८४.२ - स० पु० रात्रि, प्रकाश, दिवस, रश्मि √ अञ्ज् 'कान्तौ' 'क्त' 'उ'।

अग्नि - ऋ.५.१ ४ ; ६ ; २.१२; ३.४; ४.३, ६.३; ११.२; १४.१ ३, ५, ६ ; १७.१; २१.४; २२.२; २५.१; २८.६, ४३.७,

६०.१; ८५.२ - स० पु० ; देवताविशेष ' √ अञ्ज् कान्तौ ' अवे० 'अथर' लै 'Ignis', लिथु. 'Ugnis'

अघं- ऋ.५.२६.८- स० न० पाप, कष्ट, हिंसेच्छा, बुराई √ अघ 'पापकरणे 'अवे० 'अक' ' अङ्र ' लै० 'Ango' अ०

'Ugly, awkward, ill' ।

अघशंस- ऋ.५ ३.७ वि० पु० पापभावना से हिंसा करने वाला, पाप को कहने वाला √ अघ 'पापकरणें', √ शस्

'कहना' अ० 'Atrocious'

अच्छे - ऋ.५.१.१, ४ ; २४.१ ; २५.१; ४१.१४; ४२.१५ ; ४३.८; ४५५, ६, ४७.६; ५२.१४, १५; ५५.१०; ५६.६; ७४.३ ,

७६.१; ८३.११- नि० प्रति, ओर अवे० 'आत्', ' अआत्'।

---

[1] Sanskrit English Dictionary- Theodore Benfey पृ० स० १।

अजर- ऋ.५ २७.६ - वि० पु० जरारहित युवा √ जृ वयोहानौ ' न जरा विद्यतेऽस्येति '।

अञ्जि- ऋ.५.६.९; ५२.१६ - स० स्त्री० अलङ्कार, आभूषण √ अञ्ज कान्तौ 'इ'।

अत - ऋ.५.३०.५, ३४.४; ६०.६; ६२.८ - नि० इसलिये, यहाँ से अ 'तसिल्'।

अति- ऋ.५.१.६, ३.११, ४.६ ; २५.६ ; ४४.७; ५२.३ ; ५३.१४ ; ६६.५ ; ७३.८ - उप. अधिक, उसपार, आगे

√ अत् गतौ 'इ' अवे० 'अइति'।

अतिथि- ऋ.५.१.८,६, ३.५ ; ४.५ ; ८.१ ; ५०.३ - वि०पु० आगन्तुक, यात्री, भ्रमणकारी √ अट् ' घूमना' अवे०

अस्तिश्'।

अत्क- ऋ.५.५५.६ , ७४.५ - स. पु. आभूषण, वस्त्राभूषण, कवच अवे० अत्क अ० 'Armour'

अत्य- ऋ.५.२५.६; ३०.१४ ; ४४.३- सं ० पु ० अश्व, तीव्रगामी √ अत् ' सातत्यगमने ' 'य'।

अत्र- ऋ.५.२६.६; ३०.७, १० ; ३१.७ ; ४१.६ ; ४४.६ ; ४५.७ ; ६१.११ ; ६३.१- नि० यहाँ, इस स्थान पर अवे० '

अथ्र, अथ्रा, इथ्र ' हि. ' इधर' अ० 'Here'

अत्रि - ऋ.५.७ १० ; ४०.६ ,८ ; ७३.६, ७ ; ७४.१ ; ७८.४- स.पु. ऋषि विशेष इनके वशजो के सर्वाधिक मन्त्र

ऋग्वेद पञ्चम मण्डल मे है।

अथ- ऋ ५.३०.६. नि० इसके पश्चात् अवे० 'आत्' अ० 'After'

अदब्ध- ऋ.५.१६.४.- वि० पुं० अहिंसित नञ् √ दभ् ' हिसायाम्' ' क्त।

अदाभ्य - ऋ.५.५.२ - वि० पु० अहिस्य नञ् √ दभ् हिसायम् ' णिच्' 'यत्' अवे 'अधओमन्' अ० '

Undecievable'

अदिति- ऋ.५.३१.५, ४२.२; ४४.११. ४६.६ ; ४६.३ ; ५६.८ ; ६२.८ ; ६६.३ - स० स्त्री० आदित्यो की माता,

पृथिवी ' न बँधी [२] हुयी, ईरान की दैत्या या दइति, नदी- तत्सम्बद्ध भूभाग "। स० स्त्री०।

अद्भुत- ऋ.५.१०.२ ; २३.२ ; ६६.४ ;- वि० पु० आश्चर्यजनक, सुन्दर, अच्छा, रहस्यमय अ √ दभ् " जिसे[३]

नुकसान नही पहुँचाया जा सकता, अनाक्रमणीय, दैवी " अवे० ' अब्द ' अ० ' Astonishing'

अद्य - ऋ.५.१.११ ; १३.२ ; २२.२ ; २६.८ ; ४५.५ ; ४६.१ ; ५१.१३ ; ५३.१२, १३ , ५३.१२ , ५६.१ , ५८.३ , ७३.१

; ७४.१ , ७ ; ७६.१ ,३ - नि. आज, अद्य = अस्मिन् द्यवि अ० ' Same day* लै. 'Ho Div '।

---

[२] वैदिक कोश सूर्यकान्त पृ० स० १२।

[३] The sanskrit Language - पृ० स० १३१।

अद्रि- ऋ ५ ८५ ६ , ८७ २ , स० पु० पाषाण, दृषद, शिला, पर्वत, मेघ प्रा० फा० 'अर्कांद्रि' अ० 'Idol'

अद्रुह्- ऋ ५.६८ ४ वि० पु० द्रोहरहित, दयालु, मिथ्यारहित, प्रवञ्चनाविहीन, नञ् √ द्रुह् 'हिंसाया द्रोह वा' अवे०

'द्रुज' अ० 'Unheart' ।

अध- ऋ ५ ६ ४ , १६.४ , १७.४; २६.५, ३८.१; ४०.६, ४६.२, ५४.६, ६६.२. ४, ८५.८- नि० इसके बाद अवे०

'अध' अ० 'After'।

अधि- ऋ ५. ३ ७ , ३३.३, ३६.३, ४४.१३, ५२.१७; ५५.६, ५६ १, ५७.६, ६०.७, ६१.१२, ६२.५; ६३ १, ७८ ६, ८३

६, ८७ ४ - उप० ऊपर, मे, पर अ √ धा इ (कि) > अधि अ० ' Above'।

अध्वर- ऋ ५.४.८, २६.३; २८.६; ४४.५; - स० पु० अहिंसित, नञ् √ ध्वर् 'हिंसायाम्'।

अध्वर- ऋ ५ ४ ८- स० न० यज्ञ।

अध्वर्यु ऋ ५ ३१ १२ ३७.२ - स० पु० पुरोहित, यजुर्वेदीय पुरोहित, अध्वर 'यु'।

अनर्वन्- ऋ ५ ३६.४- स० वि० अहिंसक, अनाक्रन्त, नञ् √ ऋ 'प्रहारे' > अर्- वन्।

अनागस्- ऋ.५ ८२ ६,८३ २ - वि०पु० निरपराध ' न विद्यते आगो यस्य स॰' बहु० स० अवे० 'आग्रह' द्र० अहस् ,

अघ अहुर् अ० 'Innocent' ।

अनिमिष्- ऋ ५ १६ २ क्रि० वि० निर्निमेष, अपलक नि √ मिष् 'पक्ष्मापक्ष्मविक्षेपे'।

अनीक- ऋ ५.२ १, ४८.४, ७६ त्र१, स० न० मुख, किरण, अग्रभाग मुखाग्ररूप √ अन् 'प्राणने' अवे 'अइानिक'।

अनु- ऋ ५.२.८, ११.६; १२ २; २६.२; ३०.२; ३२.१०, ३३.२; ३४.१, ५१.१५, ५२.६; ५४.६ , ६१.१६; ६२.२; ४, ७८

२, ८० ४, ८६.५- उप० पश्चात्, साथ, अनुकूल, अनुसार प्रा० फा० 'अनुव्' अ० 'After'।

अनृत- ऋ.५.१२.४- स० न० असत्य अवे० 'अँरॅत', अ० विलोम ' Right, Real'।

अनेहस्- ऋ .५.६५.५. स० वि० निर्भय, उपद्रवरहित, निष्पाप।

अन्त- ऋ.५ १५.५, २८१- स० न० मध्यवर्ती लोक अन्तर् > रि √ क्षि 'निवासे'।

अन्ति- ऋ ५ ४४.११, ७३ २- नि० समीप मे अ० 'Near, Neighbour'।

अन्यस्- ऋ ५ ३४ २, ५१.१५ - स० न० (क) खाद्य, भक्ष्य √ अद् 'भक्षणे' 'असुन्' अ० ' Eatable'।

(ख) अन्धकार √ वृ 'आवरणे', वृन्धस् > अन्धस् तु० वृन्ध > अन्ध अ० 'Blind'

अन्नम् - ऋ ५.३४ २. ५१ १५- स० न० खाद्य, भक्ष्य, भोज्यम् √ अद् 'भक्षणे' 'क्त'।

अन्य- ऋ ५.३४.८ सर्व० पु० दूसरा अन्यत् अवे० 'अइन्य ' अ० 'Other' ।

अन्यत्- ऋ.५.२६.१०, ३१.२, ७३.३ सर्व० दूसरा अ० 'Another'।

अप- ऋ. ५. २.८., २०.२; २६.१२; ३१.७, ४०.८; ४५.१, ६, ४८.२; ६१.१८, ८०.५, ८७.८ - स० स्त्री० जल √ आप् 'प्राप्त करना'।

अपरम् - ऋ.५.४८ २ - क्रि० वि० बाद का, भविष्य मे।

अपस्- ऋ ५ ४२.१२; ४७.६- स० वि० कर्मनिष्ठ, निपुण, चतुर लै० 'Opers'।

अपि- ऋ ५ ३१.६; ३३.१०, ४६.७- नि० भी, बलसूचक निपात अवे० 'अइपि' अ० 'Also'।

अप्रति- ऋ ५ ३२.३ - स० वि० अनुकरणीय, अनुपम, अप्रतिम, अतुलनीय।

अभि- ऋ ५.३.७, ६; ४.१, ५.४, ७.५; ८.७; ६.७; १५.२; १६.१; २३.१; २७.३, २८.३, २६.२, ३१.२, ३३.२; ३७ ५, ४१ ८; ४२.३; ५४.१५; ६०.४; ६५.३; ८३.७ - अव्य० की ओर, प्रति, विरूद्ध अवे० 'अइवि'।

अभितः - ऋ.५.१५.३; ३०.१०- नि० चारो ओर सभी ओर अभि 'तसिल्' अवे० 'अइवितर' अ० 'Outer, Around'।

अभिष्टि- ऋ ५.१७ ५, ३८.३,५- स० स्त्री० सहायक, आश्रय अभि √ अस् 'ग्रहण करना' 'क्तिन्'।

अभ्रि- ऋ.५.४८.१- वि०पु० मेघ, जलधारक मेघ √ अप् जल 'अवे०' 'अब्र'।

अभ्वम् - ऋ.५.४६.५- अव्य. अद्भुद , आश्चर्यपूर्ण अ. ० 'Astonish, Astonishing'।

अम् - ऋ.५.३४.६; ५६.२ - क्रिया हिसा, शक्ति, द्र० अमात्, अमवत्।

अमर्त्य- ऋ.५.५.४.१०; १४.१; २८.१' ७५.६- वि० पु० देव, मानवेतर, अमानव, नञ् √ मृङ् 'प्राणत्यागे' 'यत्'।

अमा- ऋ.५.५३.८, ५६.२- स० न० गृह, घर √ मा 'मापने', नञ् >अमा न माना गया काल- वह काल जब चन्द्रमा सूर्य से आवृत होता है।

अमित्र- ऋ.५.३५.५- वि० पु० शत्रु, विरोधी √ मित् 'मिलना' 'र' अ० 'Meet, Meeting, Mix, Mixture' द्र० मित् >मिथ् >मिश्र।

अमृत- ऋ.५.१८.५; ३१.१३; ४२.१८; ४७.२; ५८.१; ६६.४- वि०पु० अमरणधर्मा, देव, नञ् √ मृङ् 'प्राणत्यागे' 'क्त' अवे० 'अमश'।

अयास्- ऋ.५.४२.१५ - अपरिश्रान्त, न थका हुआ, बिना परिश्रम के √ यस् 'परिश्रान्त होना' नञ्।

अरण- ऋ ५ २.५; ६ ३; ८५.७;- वि० पु० गमनशील, गतिमान √ ऋ 'गतौ' 'ल्युट्' अवे० 'अउरुन'।

अरति- ऋ ५.२.१ व्यापक, गतिशील √ ऋ गतौ 'क्तिन्'।

अरम्- ऋ ५.४४.८; ६६.५- क्रि० वि० शीघ्रता से, प्रसन्नता से, व्यवस्थित √ ऋञ्ज 'प्रमाधने' > अरम् अ० '

Arrange Ornament'। अवे० 'अरॅम- मइति, अरॅम पिथ्वा'।

अरमति- ऋ.५. ४३ ६, ५४.६- स० स्त्री० पवित्र विचार, शुभेच्छा अरम्- मतिः √ मन् 'विचारणे' 'क्तिन्'।

अराति- ऋ.५.२.६; ५३.१४- स० स्त्री० शत्रुसेना, विद्वेष, शत्रुता √ ऋ 'प्रहारे' 'णिच्' 'क्तिन्'।

अरिष्ट- ऋ.५.१८.३; ३१.१; ४२.८- वि० पु० अहिंसित, अक्षत नञ् √ रिष् 'प्रहारे '।

अरुष- ऋ.५.१.५; ४३.१२; ७३.५- स० पु० ताम्रवर्ण, आरक्त।

अर्क- ऋ.५.३०.६; ३१.५; ३३.२; ४१.६- स० पुं० (क) चारण, स्तोता √ ऋच् 'स्तुति करना' अर्च > अर्क।

(ख) किरण √ ऋच् 'प्रकाशे'।

अर्च- ऋ ५ २६.१. ६, १२; ५४.१; ६२.२, ६- क्रि० स्तुति करना, गाना द्र० अर्चत, अर्चते, अर्चन्ति।

अर्णस्- ऋ.५.५४ ६ - स० न० जल प्रवाह, लहरयुक्त हि० 'झरना'।

अर्य- ऋ ५.२.१२, ३३.२; ६. ६; ३४.६, ५४.१२ - स० पु० श्रेष्ठ, महानुभाव, नम्र, समर्पित, पावन।

अर्यमन्- ऋ.५.३.२; २६.१; ४१.२; ४६.५; ६७.१- स० पु० सन्मित्र, देवताविशेष अवे० 'अइर्यमन्'।

अर्वन्- ऋ.५.६.२; ५४.१४- स० पु० अश्व √ ऋ 'गतौ' > अर् वन्'।

अर्वाक् - ऋ.५.४३.५, ८; ४५.१०- अ० इस ओर, हमारी ओर √ ऋ 'गतौ' यद्वा √ अञ्च् 'गतौ'

अर्वाञ्चा- ऋ.५.७६.१- स० स्त्री० अब से अर्व √ अञ्च् 'गतौ'।

अर्ह- ऋ.५. ७. २ ; ७६.१०; ८६.५- क्रि० पात्र होना, योग्य होना द्र० अर्हन्ति, अर्हसि।

अव- ऋ.५.२.५; ६; ३.६; ७.५; २६.४; ३०.२.१३; ३१.१२; ३२.१; ३७.२; ४१.१३- नीचे, दूर अवे० 'अवर्' अ०

'Away' ।

अवस्- ऋ.५.३५.२, ३; ७०.१ - स० न० सरक्षण, कृपा, रक्षा √ अव् 'रक्षणे' 'अस्'।

अवितृ- ऋ.५.४ ६- वि०पु० रक्षक, रक्षितृ √ अव् 'रक्षणे' 'तृच्'।

अशिव- ऋ ५.१२.५ - स० वि० अकल्याणकारी, दुष्ट, शठ।

अश्मन्- ऋ.५.४१.३- सं० पु० चट्टान, पत्थर, पाषाणयुक्त, मेघ √ अश् 'व्याप्तौ' मनिन्' अवे० 'अस्मन्' हि०

'आकाश'।

अश् - ऋ ५.४.१०, ३०.४, ८; ५६.४; ६४.३- क्रि० व्याप्त होना, पहुँचना, अनुभव लेना द्र० अश्याम्, अश्मानम्।

अश्वे- ऋ.५.३१.१०; ५३.७; ५४.१०- स० पुं० घोड़ा √ अश् 'व्याप्तौ' क्वन्' अवे० अस्प' प्रा० फा. 'असवार'।

अश्विनौ - ऋ.५.५६.१०; ६२.१; ८३.३- स० पु० अश्वारोही, युग्मदेवता, अश्वयुक्त।

अश्व्यम्- ऋ.५.६.१० ; ६२.१; ८३.३- अश्वसम्बन्धी।

अस्- ऋ.५.५५.६; ८४.२ - क्रि० फेकना द्र० अस्यथ, अस्यसि।

अस् - ऋ.५.३.५; ११.५; २६.१४; ३४.६; ४७.७; ५३.६; ५८.१; ६६.१- क्रि० होना अस्ति,अस्तु, असि अं० 'Exist' Is'।

असुर- ऋ ५.१२.१; १५.१; २७.१; ४२.१; ४६.२; ५१.११; ६३.३, ७- स० पु० प्राणवान, सशक्त, व्यापक ईश्वर अवे० अहुर, अहुरमज्दा'।

असुर्य- ऋ.५.१०.२; ६६.२- स० न० देवत्व, बलशाली, शक्ति- असुर 'यत्'।

अस्त - ऋ ५.६.१; ३०.१३ - वि० पु० फेका गया, ढल गया, प्रक्षिप्त √ अस् 'क्षेपणे' क्त अवे० 'ह्वस्त' अ० 'Assail'।

अह- ऋ.५.३.१२, ७.५; ६.५; ३४.३; ५२.६; ५४.४; ८३.३- नि० बलसूचक निपात, ही √ अस् 'होना' > अह।

अहिन्- ऋ.५.२६.२, ३; ३०.६; ३१.७; ३२ २; ४१.१६- स०पु० पापेच्छुक, हिसक, शत्रु, मूलत· विदेशी शासक, सर्प, सर्पाकार अवे० 'अजि' अ० 'Angular,' 'Anguish'।

आकर- ऋ.५.३४.४- स० पु० ढेर, समूह, सङ्ग्रह, खान 'आ' √ कृ 'रखना' 'घ '।

आगस् - ऋ.५.३.७, १२; ८५.७- स० न० पाप, हिसा √ अघ् पापकरणे अस् अघस् > आगस ग्री० ' Agos' अ० 'Agony'।

आजि- ऋ.५.३५.७; ४१.४- स० पु० घुडदौड, युद्ध।

आणि- ऋ.५.४३.८ - स० पु० अक्षदण्ड की कील।

आत्- ऋ.५.१.३; ७, १०, २६.४; ३०.८, ३२.३; ८५.४- नि० इसके अनन्तर, पश्चात् अवे० 'अत् आत् '।

आनस्थिवास्- ऋ ५.४७.२ - वि० पु० स्थित, बैठा हुआ, आसीन आ √ स्था 'स्थित होना' 'क्वसु'।

आदित्य - ऋ.५.५१.१२; ६७.१- स० पु० अदिति पुत्रदिति- "दइति' ईरान की पवित्र नदी दिति है, भूमि दिति है, दितिवासी दैत्य है तदितर भारत भूमि अदिति है अतः अदिति पुत्र आदित्य है। " सूर्य के द्वादश रूपो मे आदित्य एक है।

---

[४] ऋग्वेद द्वितीय मण्डल (प्रकाश्यमाण) - डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी।

आघृष- ऋ.५.८५, ८७.२ - स० स्त्री० आपत्ति, आक्रमण ' आ √ धृष् 'प्रागल्भ्ये' 'क्विप्' अ० 'Attack'।

आनुषक् - ऋ.५.६.६, १०१,६; १६.२; १८.२; २१.२, २२.२; २६.८ - स० वि० निरन्तर, सतत, अविच्छिन्न 'आ' अनु' √ सच् 'समवाये' 'क्विप् ' अ० ' Always'।

आयुध- ऋ.५.२.३; ३०.६; ५७.६; ६३.४ - सं० न० अस्त्र शस्त्र आ' √ युध् 'युद्ध करना' 'क्विप्'।

आयु- ऋ.५.३.४; ४१.१६; ४३.१४; ४६.१; ६०.८- स० पु० जीवन, जीवित प्राणी, मानव आ' √ इण् 'गतौ' 'उ'।

आर- ऋ.५.४५.५; ५०.३- नि० समीप, निकट, दूर √ ऋ गतौ > आर।

आर्य- ऋ.५.३४.६- स० पु० श्रेष्ठ, जातिविशेष √ ऋ गतौ > अर्य > आर्य अवे० 'अइर्य'।

आवृत- ऋ.५.४६.१- वि० पु० ढँका हुआ, घिरा हुआ ' आ' √ वृ 'आवरणे' 'क्त'।

आशयान- ऋ ५.३०.६- वि० पु० सोता हुआ, पडा हुआ, लेटा हुआ, 'आ' √ शीङ् ' स्वप्ने' ' शानच्' अ० Asleep'।

आशु- ऋ.५. ४४.१, ५५.१; ६१.११- वि० पु० शीघ्रगामी श्व्यु > च्यु > शु गतौ अवे० 'आसु' अ० 'Swift'।

आस्- ५ ३०.१०; ५१.१२- क्रि० बैठना, स्थिर होना द्र० आसाते, आसन्।

आस्- ऋ. ५.१७.२; ४४.६; ११; ४५.८- स० पु० मुख √ अद् 'भक्षणे' > आस् 'आ' अस् अवे० 'आङ्ह'।

आसन- ऋ.५.५२.१२ - स० न० मुख आ √ स्वृ 'निगरणे' अ० 'Swallow'।

आस्य- ऋ.५.१२.१- स० न० निगरण मे समर्थ, मुख ' आ' √ स्वृ 'निगरणे' 'यत्'।

आहुत - ऋ.५.११.३; २८.५- वि० पु० हवन किया गया आ √ हु 'अग्निप्रक्षेपे' ' क्त'।

इळ- ऋ.५.४१.१६; ४२.१४; ५३.२; ६२.५- वि०पुं० यजनीय √ यज् ' पूजायाम्'।

इळा- ऋ.५.५.८. स० स्त्री० यज्ञान्न √ अद् 'भक्षणे', अ० 'Eat'।

इति - ऋ.५.२.१२; ७.१०, २७.४ ; ३७.१, ४१.१७; ५२.११; ५३ ३, ६१.८, १८ - नि० यह, इसप्रकार तु० इत्था, इत्थम्।

इत्था- ऋ ५.१७.१; २०.४; ३२.६; ३३.१, २; ६१.१५; ६७.१; ८४.१- नि० यह, इस प्रकार से 'इदम्' ' थमु'।

इन्ध्- ऋ ५.६.४, १३ १; २१.१; २६.३; २८.४; ७६.३ - जलाना, दीप्त होना द्र० इध्यससे, इधीमहि।

इन- ऋ.५.५४.८- सं० पु० धनी, शक्तिशाली।

इन्दु- ऋ ५ १८ ३- स० पु० सोम, सोमबिन्दु, चन्द्रमा √ उन्द् 'क्लेदने' > विन्दु > इन्दु अ० 'Wet '।

इन्द्र- ऋ.५.२.८, ३.१; २६.१; ३०.४, ८; ३१.२; ३५.१, ३८.५; ३६.१; ४०.१; ४२ ५.५१.६- स० पु० देवविशेष, समिद्ध,

दीप्त √ इन्ध् 'दीप्तौ' 'रक्' अवे० 'इन्दर'।

इन्द्राणी- ऋ.५.४६.८ स० स्त्री० इन्द्र की पत्नी।

इन्ध् - ऋ.५.७.२ - क्रि० दीप्त होना द्र० इन्धते।

इन्व्- ऋ.५.२८.२ , ६; ३०.७- क्रि० जाना इन्वति, इन्विरे, इन्वसि।

इनान- ऋ.५.६५.३ - वि० पु० जाता हुआ √ इण् 'गतौ' ' शानच्'।

इरा- ऋ.५.८३.४- स० स्त्री० हविष्यान्न, पुष्टिप्रद अन्न।

इष- ऋ ५.४.२, ७.३, १०, ६८.५; ७६.८ - स० स्त्री० अन्न, पोषक आहार।

इष् - ऋ. ५.३४.४; ६७.५.८६.३ - क्रि० भेजना द्र० इषण्यत, ईषते।

इषिर - ऋ.५.३७.२, ३; ४१.१२ - वि० पु० कर्मनिष्ठ, ताजा, पोषक, दीप्त।

इष्टि- ऋ.५.४४.४' ७२.३ ; ७४.३; ७८.३ - स० स्त्री० यज्ञ, पूजाविधान, कामना, इच्छा √ यज् पूजायाम् > इष् '

क्तिन्.

ईळाना- ऋ.५ २८.१ - वि० स्त्री० स्तुत होती हुयी √ ईड् 'स्तुतौ' 'शानच्' ' टाप्'।

ईळित- ऋ.५.५.३- वि०पु० पूजित, स्तुत √ ईड् ' क्त'।

ईड्य- ऋ.५.२१.१ - वि० पु० पूज्य, स्तुत्य, √ ईड् यत् '।

ईड्- ऋ.५.१. ७; ८.२; ६.१; १४.२ ; २१.३; ६त्र.१; ६६.३ - क्रि० प्रार्थना करना स्तुति करना द्र० ईळते, ईळे।

ईम् - ऋ.५ .१.३; २.५, ७.५; ६.१; २६.५; ३०.१० ; ३२.५; ३४.७; ३७.३ ; ४४.१२; ४७.४; ५४.४, ६१.११- नि० इसे,

इसको, अ० 'Him'।

इ- ऋ.५.५.६; २४.२; २६.२; ५५.२; ७३.४; ८१.४ - क्रि० गतौ द्र० ईमहे, ईर्यते।

ईर् - ऋ ५ २५.७; ४२.३, ५५.५. ६३.४; ८३.३. - क्रि० प्रेरणे द्र० ईरते, ईरयन्त।

ईश् - ऋ. ५.८१.५ - क्रि० ऐश्वर्य द्र० ईशे, ईशत्।

ईशान - ऋ ५.७१.२ - वि० पु० ईश्वर, स्वामित्व करता हुआ, स्वामी √ ईश् 'ऐश्वर्ये' ' शानच्' तुल अवे० 'अएश'।

उक्थ- ऋ ५.३६.५; ४५.३ - स० न० स्तोत्र √ वच् 'प्रकथने'> उक्थ।

उक्थ्य- ऋ.५.३६.५ - स० वि० स्तोतव्य, प्रशसनीय ' उक्थ' ' यत् '।

उक्षित - ऋ.५.८.७; ५५.३ - वि० पु० सिञ्चित, प्रवृद्ध, वर्धित √ उक्ष् 'सेचने' ' क्त'।

उक्षमाण- ऋ.५.४२.१४; ५७.८; ५८.८ स० पु० प्रवृद्ध होता हुआ, वर्द्धमान √ उक्ष 'सेचने' 'शानच्'।

उक्ष्- ऋ.५.५६.१, सेचन, वृद्धि द्र० उक्षन्ते तुल० ग्रीक 'हुग्रांस्' [५]।

उग्र- ऋ.५.३०.२; ३२.२ - वि० पु० बलयुक्त, शक्तिशाली वज् > उज् ' र' शक्तिशाली होना तु० वाजम्, ओजस् अवे०

'उग्र' अ० ' Agressive, Aggravation' ।

उचथ- ऋ.५.१२.३ - सं० न० स्तोत्र, सूक्त, मन्त्र, स्तुति √ वच् 'बोलना' > उच् ' अथ'।

उच्छ्- ऋ ५.३७.१; ७६.१० - क्रि० चमकाना द्र० उच्छान्, उच्छन्ती।

उत् - ऋ.५.५.६; ३४.८; ४२.३; ४५.१; ८३.३ - नि० समुच्चयार्थी निपात वृध् > उध > उद् > उत् ज० 'Und' अ०

'And' ।

उत्तम - ऋ.५.२५.५; २८.३ - वि० पु० श्रेष्ठ, उच्चतम उत् ' तमप्'।

उत्स- ऋ ५.२२.१; ५२.१२; ५४.८; ५७.८- स० पु० जलस्रोतस् √ उन्द् 'क्लेदने' 'स' > उत्स अ० 'Wet' ।

उत्- ऋ.५ ६.६, २५. ८; ३८.४ - उप० ऊपर, ऊर्ध्व अवे० 'उस् उज्' √ वृध् 'वृद्धौ' ऊर्ध्व > उद् > उत् उत्

ओजस, उत् जिहाना., उत् भिदः।

उपर- ऋ.५.२६.५; ३१.११ - स० वि० समीप, पास मे उप समीप ' र '।

उपरि- ऋ.५.६१.१२ - नि० ऊपर, घर √ वृप् ' ऊँचा होना' अं० ' Over, up, upon, Above' अवे० '

उपाइरि'।

उपस्थ - ऋ.५.१.६; १६.१ - स० पुं० समीप, अङ्क 'उप' - √ स्था 'स्थित होता' ' क '।

उरु - ऋ.५.१.११; ४४.६.६४.६; ६५.४ - वि० पुं० महान, विशाल, बहुल √ वृ आवरणे ' उ' अवे० 'वॉडरु' ग्री०

एउॅरुस्।

उरुष्य- ऋ.५.८७.६ - रक्षा करना द्र० उरुष्युत्।

उर्वरा- ऋ.३३.४ - स० स्त्री० क्षेत्र, धान्यक्षेत्र, उपजाऊ भूमि, " अवे० उर्वरा[६] उगाया हुआ पौधा ' लैटिन अर्रार 'बोना'

ग्रीक 'अर्राउर' बोया हुआ खेत '।

उर्वी- ऋ.५.६२.५; ६६.३ - स० स्त्री० विशाल, बडी, महती √ वृ ' आवरणे > उर् > ऊरु ' डीप् '।

उर्विया- ऋ.५.२८.१ ; ४५.६; ५५.२ - क्रि० वि० विस्तार के साथ।

---

[५] The Sanskrit Language - पृ० स० ३४६.

[६] The Sanskrit Language - पृ० स० १०३।

उशती - ऋ.५.४३.११ , ४६.७ - वि० स्त्री० उत्कण्ठित, चाहती हुयी √ वश् 'कान्तौ' 'शतृ' 'डीप्'।

उशना- ऋ ५ २६.६; ३१.४; ३४.२ - वि० स्त्री०० कामना करती हुयी √ वश् 'कान्तौ' ' शतृ' 'टाप्'।

उषस् - ऋ ५.१ १, ५ ६; २८.१; ३७.१; ४५.१; ५६.८; ६०.२, ६४.१ , ६५.२, ८०.१, २, ५- स० स्त्री० प्रातर्,

प्रातःकालीन सूर्योदय, प्रकाशाधिष्ठात्री देवी √ वस् > उष् 'कान्तौ' 'अस्' अवे० 'असह्' ग्री० 'ऐओस्'।

उस्रा- ऋ.५.४६ ३ - स० स्त्री० प्रकाशयुक्त, कान्ति, गौ √ वस् 'कान्तौ' > उस् ' टाप् '।

उस्रिया- ऋ.५.३०.४; ११.८५.२ - स० स्त्री० गौ, गाय √ वस् 'कान्तौ' उस्रा।

ऊति - ऋ.५.५.३; ६.६; १०.६; १३.१; २०.४; २२.३; ४६.३; ५४.७ - स० स्त्री० अनुग्रह, सुरक्षा √ अव् 'रक्षणे'।

ऊधर्- ऋ ५.३२.२, ४४.१३ - स० न० जल द्र अघ अ० 'Water'।

ऊमा- ऋ.५.५२.१२ - स० पु० रक्षक, सहायक।

ऊर्ज् - ऋ.५.७.१, १७.५ - स० स्त्री० जीवनप्रदात्र, कान्ति।

ऊर्ण- ऋ.५.२६ ६ - स० पु० ऊन, रोम, रोमनिर्मित वस्त्र √ वृ ' आवरणे' > ऊर 'न' अ० 'Wool'।

ऊर्ध्व- ऋ.५.१.२, ३ वि० पु० ऊँचा √ वृध् वृद्धौ > ऊर्ध - व अवे० 'अँरॅद्व'।

ऊर्मि- ऋ.५.६१.१७ - वि० स्त्री० लहर, तरङ्ग √ वृ 'आवरणे'[७] > ऊर् मि " अवे०[८] वरॅमि, ऐग्लो सैक्सन विर्एल्म् "।

ऊर्व- ऋ.५.२६.१२; ३०.४ ; ४५.२ - वि० पु० महान, उच्च √ वृ 'आवरणे' > वर > ऊर ' व ' अ० ' Upper'।

ऊह्- ऋ.५.३४.३ - क्रि० तर्क करना, धारण करना द्र० ऊहति।

ऋ - ऋ.५.३६.४, ४२.१४ - क्रि० जाना, प्ररेणा द्र० इर्यति, णिजन्त अर्पय।

ऋक् - ऋ.५.५२.१; ६०.८ - स० स्त्री० अग्नि प्रज्ज्वलित करना, पूजा करना, √ वृच् 'कान्तौ' अ० 'Bright'।

ऋक्ष- ऋ.५.५६.३ - अग्नि, भालू (क) √ वृच् कान्तौ > ऋच् > ऋक्ष् अग्नि (ख) √ ऋ ' प्रहारे ' ऋक्ष ' भालू' "

लै० उर्सुस्[९] (Ursus), ग्रीक अर्क्तास् (Arktos) आयरिश अर्त(Art)"

ऋचा- ऋ.५.६.५; २७.४; ६४.१; ४- स० स्त्री० वैदिक मन्त्र, स्तोत्र √ वृच् कान्तौ > ऋच्।

ऋजीषिन्- ऋ.५.४० ४ - वि० पु० तीव्रगामी, सरलगतिक, आगे बढता हुआ √ ऋज् ' सरलगतौ' √ ईश् ' णिनि'।

---

[७] The Sanskrit Langauge - पृ० स० ६०३।

[८] The Sanskrit Language -पृ० स० ६७।

ऋजु- ऋ.५.४६.१ - वि० पु० सरल, सरलगति वाला, सीधा √ ऋज् 'सरलगतौ ' 'उ' ऋजु। अवे० 'अरॅज्फ' हि० 'सरल' अ० 'Right' ।

ऋञ्ज् - ऋ.५.१३.६, ४८.५ - क्रि० प्रसाधने द्र० ऋञ्जसे, ऋञ्जते, अ० ' Arrange' ।

ऋत- ऋ.५.५.६, ७.३; १२.१; २; २१.४; ४१.१; ४५.८; ८०.४ - स० न० प्राकृतिक नियम, याज्ञिक नियम, सत्यता, सरलता, ऋञ्जुता √ ऋज् 'सरलगतौ' 'क्त' यद्वा √ ऋ 'गतौ' 'वत' अ० 'Right' ।

ऋतावा- ऋ.५.१.६, २५.१- वि० पुं० ऋतानुगामी, सत्यरत।

ऋतावरी- ऋ.५.८०.१ - वि० स्त्री० पवित्र, पुण्यशालिनी।

ऋतवृध- ऋ.५.४४.४ - वि० पु० ऋत को बढाने वाला, सत्य को बढाने वाला।

ऋतु- ऋ.५.१२.३; ३२.२ - स० पु० कालविभाग, वर्षादि √ ऋ 'गतौ' तु।

ऋतुथा- ऋ.५.३२ १२ स० पु० ऋतु के समय, ऋतु के अनुसार, नियत रूप से 'ऋतु ' 'थाल्'।

ऋते - ऋ ५. ४४.२ - नि० विना √ ऋ 'गतौ' 'क्त'।

ऋत्विज- ऋ.५.२२.२, २६.७; ७५.६ - स० पु० योग्य समय पर यजन करने वाला, पुरोहित।

ऋत्विय- ऋ.५.७५.६ - वि० पु० उचित समय पर उपस्थित होने वाला।

ऋध् - ऋ.५.६०.१- क्रि० परिपूर्ण करना, सफल करना, समृद्धि प्राप्त करना द्र० ऋध्याम्।

ऋभु- ऋ.५ ७.७ - वि० पु० कर्मनिष्ठ, कालविद्, ऋषिविशेष।

ऋभुक्ष- ऋ.५.१.२; ४५.५ - सु० पु० ऋषि विशेष, ऋभुओ की संज्ञा, मरुतो और इन्द्र आदि का विरुद्।

ऋष्टि- ऋ.५.५४.११; ५७.६ - स० स्त्री० भाला, आयुध √ ऋ 'प्रहारे' हि० 'रण' अ० 'Armour' अवे० ' अर्शित'।

ऋष्व- ऋ.५.३३.३ - वि० पु० ऊँचा √ ऋष् 'ऊँचा होना' ' बढना' अवे० 'वॅरॅश्नु' (शिखर) अ० ' Raise, Raised '

एक - ऋ.५.३०.४; ३२.३ , ६; ६२.२; ८१.१,५ - वि० सर्व० अकेला, एकमात्र, केवल - " अवे० अएव, ग्रीक[६] आइआस (Oios) लैटिन उनुस् (Unus) प्रा० आयरिश आइन (Oin) , गॉथिक ऑइन्स (Anins)" ।

एतश - ऋ.५.३१.११; ८१.३ - स० पु० सूर्य का मुख्य अश्व, अश्व, आशु, क्षिप्र √ इण् 'गतौ' >ए- त- श।

एज् - ऋ.५ ७८.७, ८ काँपना, चमकना, हिलना, जाना द्र० एजति, एजतु।

---

[६] The Sanskrit Language -पृ० स० ३०८।

एधु - ऋ.५.६.७, १०.७, १६.५; १७.५- क्रि० वृद्धौ अवे० अज्य, 'समृद्धि मोटापा' ग्रीक 'एस्थलास् ' (esthlos) ' अच्छा' द्र० एधते, एधि।

एव- ऋ.५.२.७; ६.१०; २५.६; २७.३; ३२.१२ ३३.७; ४६.६; ७८.७, ८; ८६.६ - नि० इस प्रकार, निश्चय ही एतद् - वत् >एव अवे० 'अएव'।

ओकस् - ऋ.५.३०.१; ७६.४ - स० न० निवास, घर, अभीष्ट स्थान, √ उच् 'समवाये' 'अस्।

ओजस् - ऋ.५.३१.७; २२.१०; ३३.६ ; ५२.६; १४; ५७.६ - स० न० शक्ति, बल, सामर्थ्य, पौरुष √ वज् 'गतौ शब्दौ च' > उज् अस् अवे० 'अओजह्' अं० 'Outshine'।

ओजिष्ठ- ऋ.५.१०.१ - स० पु० अत्यन्त ओजस्वी 'ओज' 'इष्ठन्'।

ओषधि - ऋ.५.८.७; ४१.८, ११; ४२.१६; ४३.१३; ८३.४; १०- स० स्त्री० वनस्पति, वृक्ष, लतागुल्मादि √ उष् 'दाहे' घञ् > √ धा 'धारणे' 'कि '।

ककुभ- ऋ.५.७३.७; ७५.४ - स० पु० शिखर, उच्च बिन्दु √ कुप् > कुभ् उभरना, ऊँचा होना > ककुप् > ककभ अवे० 'कओफ' कूह अ० > 'Peak'।

करणम्- ऋ.५.३१.७ - स० न० करना √ कृ करणे ' 'ल्युट्'।

कर्हि- ऋ.५. ७४.१० - अ० कब, जब।

कवि- ऋ.५.१.६, ५.२; ११.३; ३१.१०; ४४.७; ४५.६; ८१.२ - वि० पु० कान्तप्रज्ञ, मेधिर, रचनाकार " ग्रीक कएओ (Koeo) लैटिन कवआ (aveo)"।

कविक्रतु- ऋ.५.११.४ - वि० पु० कवि की प्रतिभा धारण करने वाला।

कम् - ऋ.५ ४४.१४ - क्रि० कान्तौ, इच्छा करना द्र० कामयन्ते।

काम - ऋ.५.४२.१५; ६१.१८; ७४.५ - सं० पुं० इच्छा, विचार, कामना।

कामिन्- ऋ.५.५३.१६; ६१.७ - वि० पु० कामनायुक्त 'काम' 'इनि'।

कारु - ऋ.५.३३.७ - स० पु० रचनाकार, स्तोता √ स्वृ 'शब्दे' अ० ' Call'।

काव्य- ऋ.५.३.५; ५६.४; ६६.४- स० न० कविकर्म, कविता, स्तोत्र, बुद्धिपूर्वक विचार, सरचना।

किरि- ऋ. ५.५२. ६२ - स० पुं० रचनाकार, स्तोता √ कृ 'करणे' यद्वा √ गॄ 'शब्दे' 'इ' तु० कारु।

कुत्र - ऋ ५.७ २ कहाँ, कु ' त्रल् '।

कुत्स- ऋ. ५. ३१.८ (क) अ० साथ (ख) स० पु० व्यक्ति - विशेष।

कुमार- ऋ.५.१५.१०; ७८.६ - स० पु० बालक > कम्र कुमार वर्तुल होना ' √ कमर् 'कोमल होना', तुल० कमर, कमर्दन, कूर्म।

कुल्या - ऋ. ५.८३.८. स० स्त्री० स्रोत, धारा।

कृ- ऋ ५.२९ ३; २८.३; ४१.६; ४२.६; ८३.३ - क्रि० करणे द्र० कृणोति कृणोषि, कृणुहि, कृणुते।

कृण्वन्त- ऋ.५.२८.२ - वि० पु० करता हुआ √ कृ 'करणे' 'शतृ'।

कृत- ऋ.५.१७ १, ३०.३; ४२.६ - वि० पु० किया गया √ कृ 'क्त'।

कृष्टि- ऋ.५.१.६; १६.३ - स० स्त्री०प्रजा जनता √ कृष् 'विलेखने' 'क्तिन्' अ० 'Crowd, Cult' ।

केतु - ऋ.५.७.४; ११.२, ३, ३४.६ - स० पुं० पताका, ध्वज, सूचक √ कित् 'प्रज्ञाने' 'उ'।

कोश- ऋ ५.५३.६; ५६.८ ; ८३.८- स० पु० घट, कलश, निधि।

क्रतु- ऋ ५.३१.११, ८५.२ - स० पु० सङ्कल्प, सक्रियता, बुद्धि, प्रज्ञा कृ √ कृ - तु अवे० 'ख्रतु'।

क्रन्द् - ऋ.५.१६.५, ५०.३ - क्रि० शब्द करना, रोना द्र० क्रन्द्, क्रन्दतु।

क्रीड्- ऋ.५.१६.५, ५०.३ - क्रि० खेलना द्र० क्रीळन्, क्रीळथ।

क्रुध् - ऋ ५.१५.१३ - क्रि० क्रोध करना द्र० क्रुद्‌मू।

क्षत्र - ऋ.५.२७.६; ३४.६; ४४.१०; ६२.६; ६४.६; ६७.१; ६८.३ - स० न० शासन, सामर्थ्य √ क्षद् 'विभक्त करना' 'त्रल्'।

क्षमा- ऋ. ५. ५२.३ - स० स्त्री० भूमि, पृथिवी।

क्षय- ऋ.५. ६.२; ४८.४; ६४.४; ६५.४ - स० पुं० घर, शासन, सत्ता (क) √ क्षि 'निवासे' 'अ' घर। (ख) √ क्षि 'शासने' अ शासन'।

क्षर्- ऋ.५ ५६.२; ६२.४ - क्रि० बहना, झरना अवे० 'ग्ज़्र्' , द्र० क्षरति, क्षरन्ति।

क्षिति- ऋ ५. ७.१, ३५.२ ; ३७.४ - स० स्त्री० पृथिवी, प्रजा, आवास √ क्षि 'निवासे' 'क्तिन्' अवे 'शिति'।

क्षि- ऋ ५.३७.४; ६१.१६ - क्रि० निवास करना द्र० क्षेति।

क्षिप् - ऋ.५.६.७, ४३ ४- क्रि० फेकना, प्रक्षेपे द्र० क्षिपः, क्षेपयत्।

क्षुद् - ऋ.५.५८. ६ - क्रि० रगड़ना, घिसना, द्र० क्षोदन्ते।

क्षुभ- ऋ.५.४१.१३ - स० वि० क्षोभयुक्त दुःख √ क्षुभ् 'क्षोभे' द्र० क्षुभा।

क्षेत्र - ऋ. ५. २.३ , ४, ८५.६ - स० न० खेत, कृषियोग्य भूमि, भूभाग √ क्षि 'निवासे त्रल् यद्वा √ खन् 'खोदना'

त्रल् हि० ' खेत' अवे० ' शेइथ्र् ' निवास स्थान।

क्षोदस् - ऋ.५ ५३.७ - स० न० निर्झर, जलप्रवाह √ क्षुद् ' अस्' अवे० 'क्षओदह्'।

खादि- ऋ.५.५३.४, ५४.११ - स० पु० कड़ा, मुद्रिका √ खन् 'चमकना'।

खानि - ऋ.५.३२.१ - स० स्त्री० खान, खदान √ खन् ' खोदना' 'इत्र्'।

खिद्र- ऋ.५.८४.१ - स० न० खोदना, भेदना √ छिद् 'छेदने' खिद् 'र'।

गम् - ऋ.५.४५.६; ७५.७, ७३.३; ७८.१- क्रि० जाना द्र० गच्छथः, गच्छतम्।

गण- ऋ.५. ४४.१२ ; ५२.१३; ५३.१०, ५६.१; ५८.१,२, ६१.१३ - स० पु० समूह, सख्या भीड, वर्ग √ गण्

'सङ्खयाने' 'अच्' अ० 'Gang, Gather, Gathering' ।

गत- ऋ ५ ५ ७, ५१ २, ७१.३ ७३.१.७४.६ - वि० पु० गया हुआ √ गम् 'क्त'।

गति- ऋ ५.६४.३ - स० स्त्री० चाल √ गम् ' क्तिन् " ग्रीक बसिस"[10] (Basis) लैटिन इन - वन्तिओ, गाथिक

गक्वुम्थस् (Gegumps)" ।

गन्तृ - ऋ.५.३०.१ - वि० पु० जाने वाला, गमनकृत √ गम् 'तृच्'।

गभस्ति- ऋ.५.५४.११; ८६.३ - सं० पु० हस्त, रश्मि √ गम् 'ड' √ भास् दीप्तौ 'क्तिन् '।

गमिष्ठ- ऋ.५.७६.२ - वि० पु० गमन कर्त्ताओ मे सर्वश्रेष्ठ √ गम् 'इष्ठन्'।

गय- ऋ.५ .१०.३; ४४.७ - स० पु० सम्पत्ति, धन, 'गव्य' > गय।

गर्त- ऋ.५.६२.५, ८ - स० पु० रथ का आसन, रथ " √ कृन्त्" काटना अ० 'Cut, Cart ज० 'Kert' ।

गर्भ- ऋ.५.२.२; ४१.१०; ४५.३ ; ४७.४; ५८.७; ७८.८; ८३.१ - स० पु० उदरस्थ भ्रूण √ गृभ् 'शब्दे' > गर्भ अवे

'गरॅब' अ० 'Grravid' ' गर्भवती।

गव्य - ऋ.५.२६.१२; ३४.८; ५२.१७; ६१.५; - वि० पु० गायो का, गोष्ठ।

गिर्- ऋ.५ १०.४; ११.५; १३.३; २७.३, ३६.४, ४१.१२; ६१.१७; ६५.१; - स० स्त्री० वाणी, शब्द, स्तुति √ गॄ 'शब्दे

स्तुतौ' 'क्विप्'।

---

[10] The Sanskrit Language -पृ० स० १२५।

[11] ऋग्वेद द्वितीय मण्डल (प्रकाश्यमाण) डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी।

गिरि- ऋ ५ ५८.५ , ५६.८ - स० न० पर्वत, वन, मेघ " अवे" गइरि- (Gairi) प्रा० म्ना० गोर (Gora पवन।

लिथु गिरिअ (Giria)" √ गृ 'शब्दे' मेघ।

गिरिजा- ऋ ५ ८७ १ - वि० स्त्री०वाणी से उत्पन्न √ गृ 'शब्दे' 'इ' > गिरि √ जन् 'प्रादुर्भावे' 'ड'।

गुहा- ऋ.५.२ १, ८ ३, ११ ६, १५.५ - गुप्त स्थान, गुफा √ गुह् 'गोपने' 'टाप्'।

गुह्य- ऋ ५.३ २ ३ - स० वि० गूढ, गुप्त, अस्पष्ट, छिपाया जाने योग्य √ गुह् ' गोपने' 'यत् '।

गुह् - ऋ.५.६३.८ - क्रि० गोपने द्र० गूहथ।

गृणत् - ऋ ५ ८ ८, ७५.८ - वि० पु० स्तुति करता हुआ, कवि √ गृ 'शब्दे' 'शतृ '।

गृणान - ऋ ५ ५५ १० - वि० पु० स्तुत होता हुआ, स्तुत करता हुआ √ गृ 'स्तुतौ' ' शानच् '।

गृध्र- ऋ ५ ७७ १ - वि० पु० लोभी √ गृधु 'अभिकाङ्क्षायाम्' 'र' अ० Greedy।

गृह- ऋ ५ २६ ६, ७६.८ - स० न० घर अवे० 'गॅरॅध'।

गृभ् - ऋ.५.८३.१० - क्रि० ग्रहण करना द्र० गृभाय अ० 'Grip, grasp'।

गॄ- ऋ.५.८.८, २७.२; ३३.७; ४१.१६ - शब्दे, स्तुतौ द्र० गृणाति गृणीते, गृणातु।

गौ- ऋ.५.३ ३, ६.७; १६.७; ४१.१८; ४५.६- स० स्त्री० गाय √ गम् ' ओ' अ० 'Cow'।

गोमत - ऋ.५.५७.७ - वि० पु० गोयुक्त 'गो' 'मतुप्' स्त्री० गोमती अवे० ' गओमइती'।

गोप- ऋ ५ २.५, ११.१, १२.८; ३१.१; ६३.६ - वि० पु० गोरक्षक, पालक गो √ पा 'पालने' 'क्विप् '।

ग्ना- ऋ.५ ४३.१३, ४६.२ - स० स्त्री० देवी, अ०' 'Godess' अवे० 'गॅना'।

ग्रामजित- ऋ.५.५४.८ - वि०पु० गाँव जीतने वाल, नेता 'ग्राम' √ जि 'जीतना' 'क्त'।

ग्रावन् - ऋ.५ ३१ ५, ३७.२ - स० पु० पाषण अं० 'Ground'।

घ- ऋ ५ ६१.१८, ८५ ८ - वाक्यालङ्कार निपात, यद्वा निश्चयार्थक निपात।

घृम ऋ ५ १६ ८, ३० १५, ४३ ७ - स० पु० महावीर।

घर्मम् - ऋ ५.७३ ६, ७३ १ - वि० पु० तप्त, दाहक अवे० 'गरॅम', अ० 'Glitter'।

घृण- ऋ.५ ७३.५ - स० स्त्री० घृणा, ताप, उष्णता √ घृण् 'दीप्तौ' 'क्विप्'।

घृत- ऋ ५ ५.१, १२.१; ८६ ६ - स० न० घी, द्रवपदार्थ, जल √ घृ ' क्षरणदीप्तयो· ' 'क्त'।

---

[१२] The Sanskrit Language -पृ० स० २६।

घृतपृष्ठ- ऋ.५.४.३, १४.५, ३७.१ - वि० पु० घृत युक्त पृष्ठ वाला, प्रदीप्त ज्वाला वाला।

घृतप्रतीक- ऋ.५.११.१ - वि० पु० घृत द्वारा प्रज्ज्वलित।

घृतश्चुत- ऋ.५.१४.३ - वि० पु० घृतच्यावी, घृत अर्पण करने वाला।

घोष - ऋ.५.५४.१२ - स० पु० ध्वनि √ घुष् 'शब्द करना' 'धञ्'।

घ्रंस- ऋ.५.४४.७ - स० पु० उष्णता, ताप अ० 'Glary'।

च- ऋ ५ ३ ५, ४.४; ७.१, १०.३; १५.४; २५.३; २६.१, २७.२, २८.१; ६५ ८; ७७.२; ७८.५, ८२.६- नि० और, तथा।

चकान- ऋ.५.३.१० - वि० पु० कामना करता हुआ √ कम् 'कामना करना' 'शानच्'।

चक्र- ऋ.५ २६.१०; ३१.११; ३६.३; ७३.३- स० नं० पहिया √ क्रमु 'पादविक्षेपे' अ० 'Cercle'।

चक्षुष्- ऋ ५.८ ६, ४०.८; ५४.६, ५६ ; ३, ५- सं० न० नेत्र, नयन √ चक्ष् 'दर्शने' 'उसि' अ० 'Sight'।

चतुर्- ऋ ५ ३०.१२, १४, ४७.४ - सख्या अ० 'Four, Quarter' अवे० 'चद्व', √ चत् 'जाना' उरन् ' पु० चत्वार,

स्त्री० चतस्र, नपु० चत्वारि।

चत्- ऋ ५ ४.६ - क्रि० जाना, भागना, छिपना द्र० चातयस्व।

चन- ऋ ५ ३४.५, ७; ४१.१३; ४२.६; ८२.२ - नि० निश्चयसूचक, नकारात्मक एव स्वीकारात्मक अवे० चिना।

चन्द्र- ऋ.५.१०.४, ४२.३ - वि० पु० आहल्लादक, सुन्दर, √ चदि 'आहल्लादने' 'णिच्' 'रक्' अ० 'Cheer,

Cheerful'।

चर्मन्- ऋ.५.८५.१ - स० न० चमडा अ० 'Chamis' 'साँभर का चमडा'।

चर्- ऋ.५.१.४; ४४.८; ४७.४; ६३.२, ४ - क्रि० विचरणे द्र० चरति, चरन्ति, चरेम।

चर्षणि- ऋ.५.३६.४; ६७.२ - स० स्त्री० कृषक, किसान, खेती √ कृष् > चर्ष।

चारु - ऋ.५.३.३; ३३ ५; ४३.३; ४८.५ - वि० पु० सुन्दर, शोभन √ रुच् कान्तौ (वर्ण विपर्यय) > चारु अ०

'Charm, charming'।

चित्- ऋ.५.२.५, ७.२, १०.४, १८.२; २०.१, २५.२; २६.४; ३०.४; ३२.५; ३३.४, ४४.१०, ५५.३; ५८.७; ६०.२; ६५

४, ७०.१, ७४.४, ७८.४; ७६.१; ८४.३; ८६.१- नि० निपात बलसूचक, उपमार्थीया, पादपूरक अवे० 'चित्'।

चित्- ऋ.५.१६.२ क्रि० सञ्ज्ञाने द्र० चितयन्त, हि० 'चेतना'।

चित्ति- ऋ.५ ४४.१० - स० स्त्री० ज्ञान, चिन्तन, चेतना √ चित् 'सञ्ज्ञाने' 'क्तिन्' अ० 'Critic' अवे० 'चिस्ति'।

चित्र- ऋ.५.३६.१, ६३.४; ८२.३- सं० वि० कान्त, ज्ञानयुक्त, बहुरगा √ चित् 'सञ्ज्ञाने' 'र,' अवे० 'चिथ्र' अ० 'Clever'।

चित्रभानु- ऋ.५.२६ २ - वि० पु० रग बिरगी किरणो वाला।

चिर- ऋ.५.५६.४; ७६.६ - सं० वि० दीर्घकालिक, निरन्तर।

च्यु- ऋ.५.५६.४- क्रि० गतौ द्र० च्यवयन्ति।

चुद् - ऋ.५.८.६ - क्रि० प्रेरणे द्र० चोद्‌यत्ऽमति।

चेतिष्ठ- ऋ.५.२७.१ - वि० पु० ज्ञातृतम, जानकार √ चित् 'सञ्ज्ञाने' 'इष्ठन्'।

च्यवन- ऋ.५.७५.५ - (क) सं० पु० ऋषिविशेष (ख) वि० पु० च्युत् करने वाला।

छाया- ऋ.५.४४.६ - सं० स्त्री० साया, प्रतिबिम्ब अवे० 'शाया' अ० 'Shadow'।

छद्- ऋ.५.७६.५ - क्रि० आच्छादित करना द्र० छदयन्ति।

जघन्वास- ऋ.५.६४.१ - वि० पु० मारने वाला √ घन् मरणे 'क्विप्'।

जठर- ऋ ५ ३४ २ - सं० न० उदर, पेट।

जन् ऋ.५.४६,३, ५८.४ - क्रि० प्रादुर्भावे द्र० जजान, जनयन्त जनयथ।

जज्ञाना- ऋ.५.३३.५ - वि० स्त्री० उत्पन्न होने वाली।

जन- ऋ.५.११.२, ६ ; १६.२; ३३.२; ४८.२; ६६.४ - सं० पु० मनुष्य √ जन् 'प्रादुर्भावे' 'ड' द्र० जनास।

जनुष- ऋ.५.२६.४; ३०.७; ४५.३; ५७.५; ५६.६ - सं० न० उत्पत्ति, जन्मसिद्ध।

जन्तु- ऋ.५.७.२, १६.३ - सं० पु० प्राणी √ जन् 'प्रादुर्भावे' 'तृन्'।

जात - ऋ.५.२.२; १४.४; ३०.४; ३१.११; ५३.३.८७.२ - वि० पु० उत्पन्न, प्रादुर्भूत √ जन् 'प्रादुर्भावे' 'क्त' 'Generation'।

जातवेदस् - ऋ.५.४.४; ६, ११; २६ द१, ३६.७; ४३.१० - वि० पु० उत्पन्नवस्तु का ज्ञानी 'जात' √ विद 'ज्ञाने' 'असुन्'।

जि- ऋ.५.२.११; ४.१ - क्रि० जये द्र० जयेम, जयाति, जयन्।

जिष्णु - ऋ ५.४२.६- सं० वि० विजयी, जयेच्छु √ जि 'जयें' 'इष्णुच्'।

जिह्वा- ऋ.५.२६.१; ४८.५; ५१.२ - सं० स्त्री० जीभ अवे० 'हिज्वा' √ ह्वृ निगरणे।

जीव- ऋ.५.५४.५, ७८.६ - सं० पु० प्राणी √ जीव् 'धारणे' 'अच्' अवे० 'गय'।

जुष्- ऋ.५.४; २६.१५; ४१.२; ४६.२; ५५.१०; ५८.३; ७८.३ - क्रि० ' प्रीतिसेवनयो ' द्र० जुजुषे, जुषत, जुषन्त, जुषस्व।

जुषाण ऋ.५.५१.१५ - वि० पु० प्रसन्न होता हुआ, आस्वाद लेता हुआ √ जुष् 'प्रीतिसेवनयो.' शानच्।

जुहू- ऋ.५.१.३ - स० स्त्री० हवनसाधन - पात्री √ हु 'हवने'।

जॄ- ऋ ५ २.११, ४.१, ३७.५ - क्रि० स्तुतौ द्र० जरिता, जरितु:, जरसे।

ज्येष्ठ- ऋ ५ ३६ २ - वि० पु० विशालतम, आयु मे श्रेष्ठ √ ज्या ' इष्ठन् '।

ज्योतिष्- ऋ.५.२.६; १४.४ ; ३१.३ ; ८०.५ - स० न० प्रकाश, कान्ति √ दिव् 'कान्तौ' > ज्यु 'इष् '।

ज्रय- ऋ.५.३२.६; ४४.६ - स० न० वेग √ ज्रि 'गतौ' ' अच् '।

तक्ष् - ऋ.५.७३.१० - क्रि० काटना, छीलना, टुकडे करना द्र० तक्षाम " अवे०"[१३] तश् (Tas) प्रा० स्ला० तेसति (Tasyat) लिथु० तूशति ग्रीक तख्ने (Tekhne) " अ० 'Textile'।

तक्षन्- ऋ.५.३१.४ - स० पु० बढई, काटने वाला √ तक्ष् 'कनिन्'।

तन् - ऋ.५.१.७; ५४.५; ७६.३; ८५.२- विस्तारे द्र० ततान।

तत्र- ऋ.५.५.१० - अ० वहाँ, उस ओर तत् ' त्रल्' अ० 'There'।

तनय- ऋ.५.५३.१२; ६६.३ - स० पु० पुत्र √ तन् 'विस्तारे' ' कयन् '।

तप् - ऋ.५.४३.७; ७६.६ - क्रि० सन्तापे द्र० तुपाति, तपन्त:, अ० 'Temper, Thermo'।

तप्त- ऋ.५.३०.१५ - वि० पु० गर्म, उष्ण √ तप् ' क्त '।

तमस्- ऋ.५.१.२; ३२.५; ४०.५; ६, ६- स० न० अन्धकार, ग्लानि √ तम् 'ग्लानौ' 'असुन् '।

तरस् - ऋ.५.५४.१५ - स० न० बल, उत्साह, क्रियाशीलता, ओज √ तॄ 'पार 'पहुँचना' 'असुन्' अ० 'Tail'।

तरु - ऋ.५.५८.५ - स० पु० वृक्ष √ तॄ 'तरणे' 'उन' अ० ' Tree' ।

तवस्- ऋ.५.३३.१; ५८.२; ६०.४; ८७.१ - वि० पु० बलशाली √ तु 'बलशाली होना' अवे० 'तवह्'।

तविष् - ऋ ५ ५४.२ - स० न० बल, सामर्थ्य √ तु 'बलशाली होना'।

तविषी - ऋ.५.३१.१०; ३२.८, ६; ३४.७; ५५.६ - स० स्त्री० बलशालिनी √ तु 'बले' 'इष्' अवे० 'तँविशी'।

---

[१३] ' The Sanskrit Language - पृ० स० - ६४।

तादृक् - ऋ.५ ४४.६ - स० वि० वैसा, वैसी ता √ दृश्।

तायु - ऋ.५.१५.५ - स० पु० चोर अ० 'Thief'।

तिग्म- ऋ.५.८६.३ - वि० पु० तीव्र, तीक्ष्ण, √ तिज् ' मक् '।

तिसृ - ऋ.५.५. ८; ३५.२; ६६.२; ८७.५ - स० स्त्री० तीन अ० 'Three'।

तीव्र- ऋ.५.५.१; ३०.१३ - वि० पु० तेज, तिग्म हि० 'तीर'।

तुज् - ऋ.५. ४६.७ - क्रि० प्रेरित करना, उत्साहित करना द्र० तुजये।

तुच्छय- ऋ.५.४२.१० - स० वि० तुच्छ, हल्का, क्षुद्र √ तुद् प्रहारे अ० ' Thin, Torment, Torn'।

तुरीय- ऋ.५.४०.६ - सख्या चौथा अवे० 'तुइर्य '।

तुविजात - ऋ.५.२.११ - वि० पु० स्वभावतः बलवान, जन्म से शक्तिशाली।

तुविमघ- ऋ.५.३३.६; ५७.८ - वि० पु० विपुल धन देने वाला।

तुविस्वनि- ऋ.५.१६.३ - स० वि० प्रभूत शब्दयुक्त तुवि √ स्वृ 'शब्दे'।

तूय - ऋ.५.२६.७ - क्रि० वि० शीघ्र।

तृष् - ऋ.५.३६.१; ६१.७ - क्रि० प्यास लगना द्र० तृषाणः, तृषयन्त अ० 'Thirst, Thirsty'।

तॄ - ऋ.५.५४.१५ - क्रि० तरणे द्र० तरेम।

तोक - ऋ.५.५३.१३; ६६.३ - सं० न० सन्तान, वश, प्रजा √ तुक् 'वशविस्तारे' द्र० तोक्मन् अवे० 'तओख्मन्' अ०

'Town, Townflock'।

त्मन्- ऋ.५.४३.६ - अ० अपने आप, निश्चित रूप से।

त्य- ऋ.५.१.७; ३३.४, ८- सर्व० वह, उसका अ० 'That, Thy '।

त्रि - ऋ.५.६६.२; ८१.४ - सख्यावाचक पु० तीन अ० 'Three', अवे० ' थ्रि '।

त्रित- ऋ.५.६.८; ४१.४; १०; ५४.२; ८६.१ - स० पुं० ऋषि विशेष, देवता अवे० ' थ्रित '।

त्रिधातु- ऋ.५.४७.४ - स० वि० तीन प्रकार का, तीन अश वाला।

त्रिसधस्थ- ऋ ५ ४.८, ११.२ - वि० पु० तीन स्थान मे रहने वाला त्रि, सह √ स्था > त्रिसधस्थ।

त्रस् - ऋ.५.८१.१; ६२.६ - क्रि० डरना, कॉपना द्र० त्रासाथे, त्रासीथाम् अ० ' Terror, Tremble'।

त्रै - ऋ.५.५३.१५; ७०.३ - क्रि० रक्षा करना द्र० त्रायध्वे, त्रायेथाम् अं० ' Tenable'।

त्रैष्टुभ् - ऋ. ५.२६.६ - स० पु० त्रिष्टुप् छन्द विशेष त्रि √ स्तुप् 'ऊँचा होना'।

त्वच् - ऋ.५ ३३.७ - स० स्त्री० त्वचा, आच्छादक रूप।

त्वम् - ऋ.५ २.२; ३.१; २६.१; ३०.५, ३२.१; ३३.२; ३५.५; ७८.८, ७६.१०, ८१ ५ - सर्व० तुम म० पु० मूल शब्द 'युष्मद्' लै - 'Tu' अ० 'Thou'।

त्वष्टृ - ऋ.५.५ ६, ३१.४- स० पु० बढई।

त्विषि- ऋ.५.२.१२ - स० स्त्री०दीप्ति, बल √ त्विष् 'दीप्तौ' 'इनि' अ० 'Torch, Twinkle'।

त्वेष- ऋ.५.८ ६; ३४.६; ५३.१०; ५६.६; ५८.२; ८७.६ - स० पु०, स० वि० शक्ति, सामर्थ्य अ० 'Titanic' अत्यधिक बलशाली।

दसना- ऋ.५.८७.८ - स० स्त्री० अद्भुत कर्म, कर्म।

दसस् - ऋ.५.७३.२ - स० न० कर्म, अद्भुत कर्म।

दक्षिणा- ऋ.५.१.३ - स० स्त्री० दान अ० 'Defray' 'देना, चुकाना'।

दग्धृ - ऋ.५ ६.४ - वि० पु० दाहक √ दह् 'जलना' 'तृच्'।

दधानः - ऋ.५.१.४; १५.४, ५ - वि० पु० धारण करता हुआ √ धा धारणे 'शानच्'।

दभ- ऋ.५.१६.४; ४४.२ ; वि० पुं० हिसक, उपकार करने वाला √ दभ् 'हिसायाम्' 'अच्' अ० 'Destroyer'।

दम- ऋ.५.४३.१२; ४८.३ - स० पु० घर. निवास स्थान "ग्रीक[१४] दार्मास् (Domos) लैटिन दांमुस् (Domus)"।

दम्पती- ऋ.५.३.२; २२.४ - द्व० स० पति पत्नी, गृहस्वामिनी।

दर्वी - ऋ.५.६.६- स० स्त्री० जुहू, उपभृत, चम्मच √ दृ 'विन्' 'ङीप्[१५]।'

दर्शत - ऋ.५.६५.१; ६६.२ - वि० पु० दर्शनीय, सुन्दर √ दृश्।

दशस्य- ऋ.५.३.४; ४२.१२ - क्रि० विनष्ट करना, विनष्ट होना।

दस् - ऋ.५.४५.३ - क्रि० विनष्ट करना, विनष्ट होना द्र० दसयन्त।

दस्म - ऋ.५.३१.७ - वि० पु० दर्शनीय, अद्भुत √ दृश्।

दस्यु- ऋ.५.४ ६, ७, १०; १४.४; २६.१०; ३०.६; ३१.५; ७०.३ - स० पु० अनार्य, दास, शत्रु √ दसि 'दशने' > दस् 'युच्'।

दस्रा- ऋ.५.५५.५; ७५.२ - वि० पु० दर्शनीय, शत्रुसहारक √ दृश् 'दर्शने' यद्वा √ दसि 'दशने'।

---

[१४] The Sanskrit Language - पृ० सं० ७८।

[१५] सस्कृत हिन्दी कोश - वामन शिवराम आप्टे पृ० स० - ४५०।

दा- ऋ ५.३०.१२, ३३.७, ६; ५७.७ - क्रि० देना द्र० ददं, ददत्, ददाति ददुः, ददे।

दातृ - ऋ. ५. ७.६, २३.२ - वि० पु० देने वाला, उदार √ दा 'दाने' 'तृच्'।

दान- ऋ ५.३०.७ - स० न० दान, देना √ दा 'दाने' 'ल्युट्'।

दानव - ऋ.५ २९.४, ३२.१; १, ७ - स० पु० दानुपुत्र वृत्र, जलदायक मेघ, 'दनु' 'अण्'।

दामन् - ऋ.५.३६.१ - स० पु० दान, देने वाला, √ दा 'दाने' 'मनिन्'।

दाश् - ऋ.५.४१.१६ - क्रि० देना द्र० दाशेम अ० 'Donate'।

दास- ऋ.५.३०.७; ८, ३३.४; ३४.६ - स० पु० अनार्य, उपक्षपयिता।

दासपत्नी - ऋ.५.३०.५ - स० वि० दास (वृत्र) के सरक्षण में रहने वाली, रात्रि।

दास्वत् - ऋ ५.६.२ - वि० पु० दानी, दान देने वाला।

दिति - ऋ ५.६२.८ - स० स्त्री० खण्डित प्रजा, दैत्यों की माता।

दित्सु- ऋ.५.३६.३ - वि० पु० हिंसेच्छु, आक्रामक।

दिव् - ऋ.५ ४.२ ; २१.४ ; २३.४; २५.३ - क्रि० कान्तौ द्र० दीदिहि, दिदीहि।

दिव्य- ऋ.५.४१.४; ५६.८; ६८.३ - वि० पु० आकाशीय, द्यौस् से सम्बद्ध 'दिव्' 'यत्'।

दिद्युत् - ऋ.५.८६.३ - स० स्त्री० कान्त शस्त्र √ दिव् 'कान्तौ' 'द्युत्'।

दिदीवास- ऋ.५.४३.१२ - वि० पु० सप्रकाश, कान्त √ दिव् 'कान्तौ' 'क्वसु' अ० 'Dazzle, Dazzling'।

दीधिति - ऋ.५.४२.१ - स० स्त्री० प्रकाश की किरण।

दी - ऋ ५.३३.१ ; ७३.३, ८३.७ - क्रि० नष्ट होना, मरना द्र० दीय, दीयथुः।

दीर्घ- ऋ.५.४५.५; ८७.७ - वि० पु० लम्बा, विशाल, प्रथित अवे० 'दरॅघ'।

दीर्घश्रुत - ऋ.५.३८.२ - वि० पु० बहुश्रुत, विशाल, विख्यात, 'दीर्घ' √ श्रु 'श्रवणे' 'क्त'।

दुर् - ऋ.५ ४५.१ - उप० कठिन, अवे० 'दुश्' द्र० दुःऽगा, दुःधुरः।

दुरित - ऋ.५.७७.३; ८२.५ - स० न० सङ्कट, अनर्थ अ० 'Devastate'।

दुर्मति - ऋ.५.४२.१६; ४३.१५ - स० स्त्री० दुष्ट विचार, दुष्टा मति।

दुग्ध - ऋ.५.१६.४; ३६.१, ८५.४ - स० न० दूध, अभिसुत (सोम) जल √ दुह् अ० 'Dairy'।

दुह् - ऋ.५.४३.४ - क्रि० दुहना, अर्पण करना द्र० दुदोहे।

द्रु ऋ.५. ५०.४ - क्रि० दौड़ना द्र० दुद्रवत्।

दुवस्य - ऋ.५.८२.११ , ८६.२ - क्रि० (दुवस्* से नामधातु) सेवा करना, पूजा करना अ० 'Devote'।

दुस्तर- ऋ.५.१५.३, ३५.१; ३८.२ - वि० पु० कठिनता से पार करने योग्य दुस् √ तृ ' तरणे ' 'अच्'।

दुहित - ऋ ५ ७६.२, ३, ८, ६ - स० पु० दिन, दिवस अ० 'Day'।

दुहिता - ऋ.५.८०.५ - स० स्त्री० उषा, प्रातः काल।

दुह् - ऋ.५.८८ १- क्रि० दुहना द्र० दोहसे।

दूत- ऋ ५.११ ८; २१.३, २६.६; ४३.८ - सं० पु० सन्देशवाहक √ द्रु 'गतौ'।

दूर- ऋ.५.१.१०; ७.५, ८३.३ - स० वि० दूर, परा √ द्रु 'गतौ' 'रक्' अ० 'Distance'।

दृह्- ऋ.५.४५.२ - क्रि० दृढ करना, स्थिर करना द्र० दृहत।

दृळह् - ऋ.५.१६.२, ३६.३; ८४.३; ८६.१ - स० वि० दृढ, स्थिर √ दृह् दृढ् 'बनाना ' अ० 'Determination'।

दृश् - ऋ ५.५२.१२; ५६.७०; ६५.१; ८०.१- क्रि० देखना द्र० दर्शतः, दर्शता, दृशायै, दृशि।

देव- ऋ.५.१ २, ३.८, ८.४; १८.१२; ३०.४; ७३.३; ८१.३ - वि० पु० प्रकाशक, देवता √ दिव् ' कान्तौ' अच् ' अ० Dazzle, deity।

देवत्रा- ऋ.५०.२०.१, ६१.७; ६५.१ - अव्य० देवताओ के मध्य मे।

देवयु- ऋ.५.८८.२ - वि० पु० देवपूजक, देवभक्त, पवित्र।

देववीति- ऋ.५.४२.१० - स० स्त्री० देवो की तृप्ति, देव √ वी 'तृप्तौ' 'क्तिन्'।

दैव्य- ऋ.५.१३.३; ५७.७ - स० वि० दिव्य देवो का, स्वर्गीय, देव 'यञ् '।

दोषा- ऋ.५.५.६; ३२.११ ७ स० स्त्री० रात्रि, सायकाल अवे 'दओषा'।

द्यौस् - ऋ.५.२६.६, ४३.६; ६२.३; ८५.४ - सं० पु० आकाश, द्युलोक √ दिव् 'कान्तौ' ' अस्'।

द्यावापृथिवी - ऋ.५.४७.२; ५१.११; ५५.७; ६२.२; ८३.८ - स० स्त्री० द्युलोक और पृथिवीलोक।

द्युक्ष- ऋ ५.३६.२ - वि० पु० द्युलोक स्थित ' द्यु' √ क्षि निवासे ' अच् '।

द्यु- ऋ.५.१६.२, ५३.३ - स० पु० दिन √ दिव् कान्तौ ' उन्'।

द्युमत् - ऋ.५.११.१; १८.५; १६.३; २३.४; ३४.३ - वि० पु० सप्रकाश, उज्ज्वल, चमकता हुआ।

द्युम्न- ऋ.५.७.६, १०; ५०.१, ७६.७ - स० न० धन, वैभव √ दिव् > द्यु ' मन् '।

---

[१६] ' ऋक्सूक्तवैजयन्ती ' - पृ० स० - ४६६।

द्रवन्ती - ऋ.५.४१.१८- वि० स्त्री० आती हुयी, दौड़ती हुयी √ द्रु 'गतौ' 'शतृ' 'ङीप्'।

द्रविण् - ऋ.५.४.७; २८.२ ; ५४.१५ - स० न० धन " √ द्रु 'गतौ' 'इनिन्' [१७] "।

द्रुग्ध- ऋ ५ ४० ७ - स० न० दुष्कर्म, अत्याचार √ द्रुह् 'द्रोह करना' 'क्त' अं० 'Daunt'।

द्रुह्- ऋ.५ ७४ ४ - स० पु० द्रोह करने वाला अवे० 'द्रुज' 'असत्यभाषी' 'धोखेबाज'।

द्वार- ऋ.५.५ ५ - स० स्त्री० दरवाजा, किवाड अं० 'Door'।

द्वित- ऋ.५.१८.२ - वि० पु० दो प्रकार से, दूसरा, दोनो ओर से।

द्विष्- ऋ.५.२५.१; ५०.३ - वि० पु० द्वेष करने वाला।

द्वेष - ऋ.५.२०.२; ४५.५; ८०.५; ८७.५ - स० पुं० द्वेष करने वाला √ द्विष् 'घृणा करना' 'घञ्'।

धा- ऋ ऋ५.१८.२ ; २८.२; ५३.१३; ७०.२- कि० रखना, धारण करना द्र० धत्तन्, धत्ते, धत्थ, धातु, धायसे, धेहि।

धन   ऋ.५.४२.५, ७ - स० न० ऐश्वर्य, सम्पत्ति √ धा 'धारणे'।

धन्वन् - ऋ.५.७.७, ५३.४, ६; ८३.१० - (क) स० न० धनुष अवे० 'थन्वन्, थन्वर' √ तन् 'विस्तारे' > धन् 'वन्'

यद्वा √ धन् 'शब्दे' 'वन्' (ख) स० न० निर्जल प्रदेश, मरुभूमि अं० 'Desert'।

धम्, ध्मा- ऋ.५.६.४; ३१.६ - क्रि० धौंकना द्र० धमति, धमथः।

धरुण - ऋ.५.१५.१, २, ५ - स० न० धारण करने वाला √ धृ 'धारणे'।

धर्णसि- ऋ ५.४३.१३ - वि० पु० शक्तिशाली √ धृष् 'साहस करना'।

धातृ - ऋ.५.१.६; ६.३; ६७.२ - वि० पु० धारण करने वाला √ धृ 'धारणे' यद्वा √ धा 'धारणे' तृच्।

धर्मन् - ऋ.५.१५.१ - स० न० धार्मिक कृत्य, सामर्थ्य, नियम, स्थान, पात्रविशेष।

धारा - ऋ.५.१२.२ ; ३२.१ ; ८३.६ - स० स्त्री० जलप्रवाह, धारा।

धासि- ऋ.५.१२.४; ४१.१७ - स० पु० पोषक अन्न √ धा 'धारणे'।

धी   ऋ.५.४५.६; ४७.६ ; ७१.२; ८१.१ - स० स्त्री० बुद्धि, प्रज्ञा, धारणा।

धिषणा- ऋ.५.४१.८; ६६.२ - स० स्त्री० स्तोत्राभिमानि देवी, आश्रय देने वाली, वाणी।

धीति - ऋ.५.२५.३, ५३.११ - स० स्त्री० स्तुति, स्तोत्र, प्रार्थना √ ध्यै 'क्तिन्'।

धीर- ऋ.५ २.११; २६.१, १५; ४५.१० - वि० पु० बुद्धिमान, विचारक, मेधिर √ धी 'सोचना' 'र'।

---

[१७] 'सस्कृत हिन्दी कोश' पृ० स० - ४८०।

ध्यै- ऋ.५.२१.१ ; ८२.१, ६ - क्रि० चिन्ता करना, विचार करना द्र० धीमहि।

धुनि- ऋ ५.३४.५, ८; ६०.७; ८७.३ - स० स्त्री० नदी, शब्दमयी अ० 'Din' √ ध्वन् 'शब्दे'।

धूर - ऋ.५.४३.८ - स० स्त्री० धुरा।

धृ- ऋ.५.१५.२; २७.६; ६६.१ - क्रि० धारण करना द्र० धारयन्त, धारयतम्, धारयथः, ध्रियते।

धृष्णु - ऋ ५.५२.१४ - वि०पु० प्रगल्भ, साहसी √ धृष् 'साहस करना' 'नु' अ० 'Daring'।

धेनु - ऋ.५.४४.१३ - स० स्त्री० गौ, गाय √ धेट्[१८] 'पाने' अवे० 'दएनु', अ० 'Dairy' 'दुग्धशाला'।

ध्रुव- ऋ ५ ६२.१; ६६.४ - वि० पु० दृढ, स्थिर, घृत √ ध्रु गति 'स्थिरता' 'व' अ० 'Determine, Deterrent'।

ध्वन्यं - ऋ.५.३३.१० - स० पु० व्यक्तिविशेष, आश्रयदाता, लक्षमणपुत्र।

न- ऋ.५.२.१; ५२.३; ८५.३; ८६.६; ८७.२ - नि० नही, सदृश अ० 'No, Not, Nay'।

नक्तम् - ऋ.५.७.४, ७६.३ - अ० रात्रि के समय, रात मे अं० 'Night'।

नक्ष् - ऋ.५.१५.२; २४.१ - क्रि० मिलना द्र० नक्षि, ननक्षु।

नदी - ऋ.५.४१.६; ४२.१२; ४५.२; ४६.६; ४७.५; ५५.७ - स० स्त्री० जलवाहिका, नदी √ नद् 'शब्द करना'' अच्' 'ङीप्'।

नपात् - ऋ.५.१७.५; ३२.४.४१.१० - स० पु० नाती "लैटिन[१९] नपास् (Nepos)"।

नभस्- ऋ.५.४१.१२, ८३.३ - सं० न० मेघ, बादल, आकाश √ नह् 'बाँधना' असुन्'।

नमस् - ऋ.५.१.७; २२.१; ४१.२; ४२.११; ४७.७; ४६.५; ६०.१; ७३.१० - स० न० स्तुति, स्तोत्र √ नम् 'झुकना' 'असुन्'।

नमस्य- ऋ.५.५२.१३ - वि० पु० नमस्करणीय, आदरणीय, प्रणम्य 'नमस्' 'यत्'।

नमुचि- ऋ.५.३०.७ - स० पु० व्यक्ति विशेष, दास या असुर जो इन्द्र का शत्रु था।

नर - ऋ ५.७.२; ६.७; १०.३; २६.१२; ३०.२; ५२.५; ५५.३; ६१.१ - स० पु० मनुष्य नेता 'नृ' अच्'।

नराशस- ऋ.५.५.२ - स० पु० अग्नि का एक नाम, मनुष्यो मे स्तवनीय।

---

[१८] ऋग्वेद द्वितीय मण्डल (प्रकाश्यमाण) डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी।

[१९] 'The Sanskrit Language - पृ० स० - १२३।

नवं - ऋ.५.६.३; २७.३ - वि० पु० नूतन, नया अ० 'New' "ग्रीक [२०] नऑस् (Neos) लैटिन नॉवुस् (Novus)
।

नवग्व- ऋ.५.२६.१३ - स० पु० आङ्गिरस कुल की शाखा का नाम, व्यक्तिविशेष।

नवति- ऋ.५.२६.६ - स० स्त्री० सख्या नब्बे अ० 'Ninty' अवे० 'नवइति '।

नव्य- ऋ.५.१२.३, २६.१३; ४२.१३ - वि० पुं० नवीन, नूतन 'नव ' 'य'।

नव्यस् - ऋ.५.५३.१० - वि० पु० नवतर, नूतनतर अ० 'Newer'।

नश् - ऋ.५.४.११ - क्रि० प्राप्त करना द्र० नशते।

नहि - ऋ.५.३१.२; ४०.६ - क्रि० विशे० कभी नही, निश्चय ही नही अ० 'Never'।

नाक- ऋ.५.१.१; १७.२; ५४.१२; ८१.२ - सं० पु० स्वर्ग, स्वर्ग का तल।

नाधमान - ऋ ५.७८.६ - वि० पु० याचना करता हुआ √ नाध् 'सहायता की याचना करना ' 'शानच् '।

नाना- ऋ.५.७३.४ - पृथकत्ववाचक निपात।

नाभि - ऋ.५.४३.८; ४७.२ - स० स्त्री० उत्पत्तिस्थान, मूल, मध्य अ० 'Nucleus, Navel'।

नामन् - ऋ.५.३.२, ५.१०; ३०.५; ३३.४; ३७.४; ४४.४, ५७.५ - स० न० नाम, ख्याति, √ नम् 'झुकना' 'णिच् '
'अच् ' अ० 'Name'।

नासत्य - ऋ.५.४६.२; ७३.३; ७४.२; ७५.७; ७८.१ - स० पु० अश्विनौ का अन्य नाम, अश्विनौ का विशेषण।

नि- ऋ.५.१.५, ८.२; ११.२; २८.२; ४१.१०; ५६.४; ८०.६- उप० नीचे अ० 'Nadir' 'निम्नतम स्तर '।

नित्य- ऋ.५.१.७; ८५.७ - वि० पु० सतत, शाश्वत, स्थिर।

निधि - ऋ.५.४३.८ - स० पु० नि √ धा 'धारण करना' 'कि'।

निन्द् ऋ.५.२.६; ४२.१० - क्रि० निन्दा करना द्र० निन्दात्, निन्द्यासः।

नियुत् - ऋ.५.५२.११ - वि० पु० समुदाय, मिश्रित होते हुये नि √ युज् ' मिलना ' शतृ '।

निष्कग्रीव - ऋ.५.१९.३ - वि० पु० स्वर्णयुक्त ग्रीवा वाला, स्वर्णालङ्कारयुक्त ग्रीवा वाला।

निसद्य - ऋ.५.२.७ - स० कृ० बैठकर नि √ सद् ' बैठना ' ' ल्यप् '।

निहित - ऋ.५.२.१ - स० वि० स्थापित, रखा गया, नि √ धा धारण करना > नि हि ' क्त '।

नी - ऋ.५.४२ ४; ४६.१ - क्रि० ले जाना द्र० नेषति, नेषथ, नेषि।

---

[२०] 'The Sanskrit Language - पृ० स० - ७८।

नीचा - ऋ.५.४४.८ - नि० नीचे की ओर, नीचे जाती हुयी।

नीलपृष्ठ - ऋ.५.४३.१२ - वि० पु० स्निग्धाङ्ग, स्निग्धपृष्ठ भाग वाला।

नु - ऋ.५.१.७; १५.५; १७.५; २६ त्र१३; ६०.३; ८७.२ - नि० सचमुच, अब तक अ० 'Now' अवे० 'नू'।

नूतन- ऋ ५.४२.१८, ४३.१७; ५५.८; ७६.५; ७७.५; ७८.४ - वि० पु० नया, नवीन अ० 'New'।

नूनम् - ऋ ५.४२.२; ५६.५; ५८.१; ६१.१४; ६४.३; ७०.१; ७६.१, २ - नि० अब, सचमुच अवे० 'नूनम्' नुराम्,

नुरॅम्'।

नृ - द्र० नर।

नृतम् - ऋ.५.३०.१२ - वि० पु० नृततम, नेता 'नृ' 'तमप्'।

नृम्ण - ऋ.५.१६.२; ३३.६; ३८.४; ५४.१; ५७.६ - स० न० पौरुष, सामर्थ्य, मानवीयता।

नेतृ - ऋ.५.५०.१, २ - वि० पु० नेतृत्व करने वाला, अग्रगामिन् √ नी 'ले जाना' 'तृच्'।

नेम - ऋ ५ ६१.८ - सर्व० कई, कतिपय अ० 'Many'।

नेमि - ऋ ५.१३.६ - स० स्त्री० परिधि √ नम् 'झुकना'।

न्यञ्च - ऋ.५ ८३.७ - स० वि० अधोमुख नि √ अच् 'जाना' 'याचना करना'।

पक्व - ऋ.५.७३.८ - वि० पु० पका हुआ, प्रौढ़ √ पच् 'पकाना'।

पच् - ऋ.५.२६.११; ३४.१ - क्रि० पकाना द्र० पचत्, पचन्।

पञ्च - ऋ.५. ३५.२; ८६.२ - सख्या पाँच "लिथु[२१] पेनकि (Penki), ग्रीक पन्त (Pente) लैटिन क्विन्क्व

(Quinque)"।

पति - ऋ.५.४६.४; ५५.१० - स० पुं० स्वामिन् अवे० 'पइति'।

पणि - ऋ.५.३४.७ - स० पु० व्यवसायी, व्यापारी √ पण् व्यापार करना' 'इ'।

पत्नी - ऋ.५.४१.६; ४२.१२; ४४.५; ४६.७; ५०.३ - स० स्त्री० देव पत्नी, रक्षा करने वाली।

पथिन् - ऋ.५.१.११; ७.५, ४६.१; ४७.६; ६४.३; ८०.२, ३ - स० पु० मार्ग, रास्ता √ पथ् 'जाना' 'इनि' अ०

'Path' अवे० 'पत्तन'।

पन् - ऋ.५.६.४; २०.१; ४१.६ - क्रि० सराहना, स्तुति करना द्र० पनय, पनितः, पनितारम्, पनीयसी।

---

[२१] 'The Sanskrit Language - पृ० स० - २६।

पर्यस् - ऋ.५.४३.१; ४४.१३; ६३.५; ८५.२ - स० न० जल, दुग्ध "अवे०[२२] पएम (Paema), लिथु० पेनस् (Penas)" √ पा 'पीना' 'असुन्'।

परं - ऋ.५.३.५; १७.२, ३०.५; ४४.२ - स० वि० अन्य, ऊपर का अ० 'Upper'।

परम - ऋ.५.३०.५; ४७.४; ६३.१ - वि० पुं० सर्वोच्च, श्रेष्ठ, अ० 'Paramount'।

परस् - ऋ.५.३.१२, ६१.८ ; ८२.४, ५ - अ० पार, परे, दूसरी ओर।

परावत् - ऋ.५.३०५, ५३.८; ६१.१; ७३.१ - सं० स्त्री० दूरस्थ प्रदेश।

परि - ऋ.५.१५.३; २६.१३; ५१.४; ५५.७; ७३.३; ७५.७; ७६.५ ; ८१.८; ८३.७ - उप० चारो ओर द्र० परित अ० 'Peri'।

परिज्मन् - ऋ ५.१०.५; ४१.१२ - स० न० परिभ्रमण, परितः गमन, परि √ गम् 'जाना' जम् > मन् अं० 'Permbulation'।

परितक्म्या - ऋ. ५.३०.१३, १४; ३१.११ - सं० स्त्री० सकट, दुरवस्था अ० 'Pain'।

परिभू - ऋ.५.१३.६ - स० पु० चारो ओर रहने वाला, परिवासिन्, रक्षणकर्त्ता, परि √ भू 'सत्ताया' 'क्विप्'।

परीणस- ऋ.५.१०.१ - वि० पु० सर्वव्याप्त चतुः व्यापी, परि √ नस् व्याप्त होना'।

परुष- ऋ.५.२७.५ - स० वि० कामना पूरक, कठोर।

पर्जन्य - ऋ.५.५३.६; ६३.६ ; ८३.१, २ - सं० पु० वृष्टि का देवता।

पर्वत - ऋ.५.४५.३; ५६.४; ५७.३; ६१.१६; ८५.४; ८७.६ - सं० पु० पहाड, मेघ "पर्व् अचच्[२३]"।

पलिक्नी - ऋ.५.२.४ - वि० स्त्री० जीर्ण, पीली अ० 'Palish, Pallid'।

पवि - ऋ.५.३१.५ - स० न० रथ की नेमि, इन्द्र का वज्र, पवन की भॉति जाने वाला।

पशु- ऋ.५.७.७; ६.४; ५०.४; ६१.५ - स० पु० जानवर, "लैटिन[२४] पकु (Pecu), प्रा० स्ला० स्वेकु (Svekru)"।

पा- ऋ.५.१८.४, ५२.४; ६७.३ - क्रि० रक्षा करना, पालन करना द्र० पान्ति, अ० 'Protect'।

पा - ऋ ५.४.६; १७.५६ ३३.७; ४०.१; ५१.५; ६०.८; ७७.१ - पीना द्र० पिब, पिबत्।

पार्जस् - ऋ.५.१.२ - स० न० तेज, शक्ति, आकृति।

---

[२२] The Sanskrit Language - पृ० स० - २६।

[२३] सस्कृत हिन्दी कोश - पृ० स० - ५६५।

[२४] The Sanskrit Language - पृ० सं० - ६०।

पायु - ऋ ५.१२.४, ४१.१५; ७०.३ - वि० पु० पालक, रक्षक, पोषणकृत् √ पा 'पालन करना' ' यु '।

पार्थिव - ऋ.५.८.७, ४१.१; ५२.७; ६८.३, ८७.७ - वि० पु० पृथिवी सम्बद्ध √ प्रथ् 'विस्तारे' 'अण्।

पावक - ऋ.५.४.७, ५७.४, २३.४; २६.१, ६०.८ - वि० पु० शोधक, पवित्र करने वाला √ पू 'शोधने' 'ण्वुल्' अ० ' Purifier'।

पाश- ऋ.५ २ ७ - स० पु० बन्धन √ पृश् बन्धने।

पितृ - ऋ.५.३.६, ४.२, ३४.४; ४३.२; ५२.१६; ६०.५; ८३.६ - स० पु० पालक, पिता अ० ' Father' अवे० 'पितर् '।

पिन्व् - ऋ ५.६२.३, ६३.१, ८३.४ - क्रि० पूर्ण करना, स्थूल बनाना द्र० पिन्वत, पिन्वतम्, पिन्वते, पिन्वथ।

पिश् - ऋ.५.६०.४ - क्रि० अलकृत होना, सजाना द्र० पिपिश्रे।

पिष् - ऋ ५ ४.६, ५६ १ - क्रि० पीसना द्र० पिपर्षि, पिष्टम् अ० 'Pound'।

पिप्युषी - ऋ.५ ७३ ८ - वि० स्त्री० पिलाने वाली √ पा 'पीना' > पिब् > पि 'क्वसु ' ' ङीप् '।

पिशङ्गाश्व - ऋ.५.५७.४ - वि० पु० पीले घोडे वाला " श्वित्[२५] > पिश - ग पिगल, कपिल तु० पाण्डु, पाण्डुर, पाटल, पीत, पलित, शोण, धवल, धौत, विशद "।

पीति- ऋ.५.५१.१, ६, ७१.३; ७५.६ - स० स्त्री० पान, पीना √ पा० 'पीना' > पी 'क्तिन् '।

पुस् - ऋ.५.६१.६ - स० पु० पुरुष, बलशाली अ० ' Potential '।

पुत्र - ऋ ५.३.६, ६.४; ११.६; २५.१; ४३.७ - स० पु० बेटा, अपत्य √ पा 'रक्षणे' > पित् > पितर् > पुत् र > पुत्र।

पुरोहित - ऋ.५.११.२ - स० पु० आगे स्थित, ऋत्विक् अ० ' Priest' पुरस् > पुरो √ धा 'धारणे' 'क्त '।

पुरन्दर - ऋ.५.३०.११ - वि० पु० पुर विनाशक, इन्द्र पुरम् ' √ दृङ् विदारणे णिच्' 'खच् '।

पुरस्तात् - ऋ.५.८० ४; ८३.८ - अव्यय आगे, सामने, आगे स्थित पुरस् √ स्था 'स्थित होना' > स्तात् अ० ' Pre exist'।

पुरा - ऋ ५.५३.१, ७७.१ - अव्यय पहले अवे० परा, फॅरा ' अ० ' Pre'।

पुरीष ऋ.५.४५.६, ५३.६; ५५.५ - सं० न० पूरक जल, मल।

पुरु - ऋ ५ २.४; ३.४, ६.४, २३.३; ३४.४ ; ३७.३; ७३.१, ७४.८ - स० वि० प्रभूत अधिक, अवे० 'पोउरू '।

---

[२५] ऋग्वेद द्वितीय मण्डल (प्रकाश्यमाण) डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी।

पुरुचन्द्रस् - ऋ.५.८.१; ६१ १६ - वि० पु० प्रभूत आच्छादक, अतिकान्त।

पुरुतम - ऋ ५.५६ ५ - वि० पु० अनेक स्थानो मे रहने वाल, सर्वव्यापी।

पुरुभुज् - ऋ.५ ४६.१; ७३.१ - स० वि० अनेको का पोषण करने वाला।

पुरुभूतम - ऋ.५.७३.२ - स० वि० अनेक स्थानो मे उपस्थित रहने वाला पुरु √ भू 'सत्ताया' 'क्त' 'तम'।

पुरुवसु - ऋ.५.३६ ३; ८२.७ - स० वि० प्रभूत धन, अतिशय धनयुक्त।

पुरुषत्वता - ऋ.५.४८.५ - स० स्त्री० पुरुष होने की भावना, पुरुष होने की कामना, पुरुष 'त्व' 'तल्' 'टाप्'।

पुरुस्तुत - ऋ.५.८ ५, ८०.३ - स० वि० अतिशय पूजनीय, बहुपूज्य।

पुरुस्पृह् - ऋ ५.७ ६ - वि० पु० अति स्पृहणीय, बहुतो द्वारा चाहा गया, अतिकाम्य, पुरु √ स्पृह् 'कामना करना' 'क्विप्'।

पुरुहूत - ऋ.५.३१.८; ३६.२ , ३ - वि० पु० बहुतो द्वारा आहूत, बहुस्तुत इन्द्र का विशेषण अ० 'Puissant'।

पुष्करिणी - ऋ.५.७८.७ - स० स्त्री० नीलयुक्त जलाशय अ० 'Pond'।

पुष्टि - ऋ ५.१०.३ - स० स्त्री० पोषण, पोषकत्व, समृद्धि √ पुष् 'पोषण करना' 'क्तिन्'।

पुष् - ऋ.५.२६.६; ५०.१ - क्रि० पोषण करना, पुष्ट होना द्र० पोषयत्, पुष्यसि, पुष्यसे।

पूर्व - ऋ.५.३.५, ३१.११; ४८.२ - स० वि० पहले का प्राचीन, पहला √ पृ पार जाना' अ० 'Previous' अवे० 'पउर्व'।

पूर्वभाज् - ऋ.५.७७ १ - वि० पु० प्राचीन कालीन, सर्वप्रथम प्राप्त करने वाला।

पूर्व्य - ऋ.५.८.२, १५.१, ३; २०.३; ३५.६, ४५.३; ५५.८ - वि० पु० पूर्वकालीय, श्रेष्ठ अवे० 'पओ उर्व'।

पूषन् - ऋ.५.४१.४; ४६.२; ४६.३; ५१ त्र११; ८१.५ - स० पु० पोषक, पशुरक्षक, मार्गदर्शक देव √ पुष् 'पोषणे'।

पृ - ऋ.५.४.६, ६, २५.१, ६ - क्रि० पार जाना द्र० पर्षति, पर्षत् , पर्षि, पिपर्षि।

पृच् - ऋ ५ ७८.१० - क्रि० मिलना द्र० पृचन्ति।

पृक्ष - ऋ ५ ७३ ८, ७५ ४ ; ७७.३ - स० स्त्री० बलवर्धक अन्न √ पृच् 'सम्पर्के'।

पृण् - ऋ.५.५.५, ११.५, ८५.६ - क्रि० भरना द्र० पृणन्ति, पृणीतन।

पृतना- ऋ.५.८६.२ - स० स्त्री० सेना, सङ्ग्राम द्र० पृत्।

पृथिवी - ऋ.५.४२.१६; ४३.१५, ५४.६, ५६.३; ५८.७, ६०.२, ६२.३; ६३.३; ८३.५, ८५.१, ४, ५ - स० स्त्री० भूमि, धरती, √ प्रथ् 'विस्तारे' 'ङीप्'।

पृथु - ऋ ५.१२ ६, ६६.५ - स० वि० विशाल, व्यापक, महान, बडा √ पृथ् > प्रथ ' उ '।

पृश्नि - ऋ ५.४८.३; ५२ १६; ६०.५ - स० स्त्री० नानावर्णा भूमि, बिन्दुमती, माता।

पृश्निमातृ - ऋ.५.५७.२, ३; ५६.६ ७- वि० पु० पृश्नि नामक माता वाले, मरुतो का विशेषण।

पृषत् - ऋ.५.५५.६ ; ५८.६; ६०.२ - स० वि० चित्रवर्ण, चितकबरी गौ √ पृश् 'पृथक होना'।

पृष्ठ - ऋ.५.३६.२, ६१.२ - स० न० पीठ, पिछला √ पृश् 'पिछडना' अ० ' Back '।

पेय- ऋ.५.२६.३ - स० वि० पीने योग्य √ पा 'पीना' 'ण्यत् '।

प्र- ऋ.५. १.१, २२.१, ४८.२; ५६.४; ६५.२; ८२.६; ८६.१; ८७.१ - उप० आगे, सामने, अत्यधिक " प्रा० फा०[२६] फ्र,

प्रा० स्लो० प्रो, लिथुआनियन प्र, ग्रीक फ्रा, लैटिन प्रा"।

प्रचेतस् - ऋ.५.७१.२; ८७.६ - स० पु० प्रकृष्ट चित्तवाला प्र √ चित् 'सज्ञाने' 'असुन्'।

प्रजा - ऋ.५ .४.१० - स० स्त्री० सन्तान, लोग, जन, प्र √ जन प्रादुर्भावे ' ड ' ' टाप् ' अ० 'People'।

प्रजावत् - ऋ.५.८२.४ - वि० पु० प्रजायुक्त ' प्रजा ' वतुप् '।

प्रतरम् - ऋ.५.३४.१, ५५.३ - अव्यय अधिक समय तक, दीर्घकालिक अ० ' Prolong'।

प्रति - ऋ.५.१ १, ३०.१२; ४८.४; ५७.१; ६१.६; ७५.१; ८०.१; ८१.२; ८३.६, ८४.२; ८६.३ - उप० विरूद्ध, पीछे,

बदले मे " प्राति[२७] (Proti, Proti) प्रास्, प्रा० स्ला० प्राति "।

प्रतीचीन- ऋ ५.४४.१ - स० वि० सम्मुख आने वाला, अभिमुख।

प्रत्न - ऋ ५ ८ १ - स० वि० प्राचीन अ० ' Primeval' प्राचीनतम।

प्रत्नथा - ऋ.५.८.५ - क्रि० वि० पहले की तरह द्र० ' प्रत्नासः '।

प्रत्यङ् - ऋ.५.२८.१ - स० वि० अपनी ओर, अभिमुख, समक्ष।

प्रथम - ऋ.५.३१.१, ४३.३ - स० वि० पहले, आगे, श्रेष्ठ प्रधान यद्वा सख्या अवे० ' फ्रतॅम ' अ० 'First'।

प्रथ् - ऋ.५.१५.४, ४३.७, ८७.७ - क्रि० विस्तारे द्र० प्रथयन्त, प्रथस्व, पप्रथे, पप्रथान., प्रथिष्ट अ० ' Prolong

Protend'।

प्रदिव् - ऋ.५.८.७, ६२.४; ७६.४- पुरातन, प्राचीन काल से, सर्वदा, प्रतिदिन।

प्रपित्व - ऋ ५ ३१.७ - स० कृ० सङ्ग्राम प्र √ पृत् ' त्व '।

---

[२६] The Sanskrit Language -पृ० स० - ३४४।

[२७] The Sanskrit Language - पृ० स० - ३४४।

प्रवर्त - ऋ.५.३१.१ - स० स्त्री० ढलुआँ, निम्नाभिमुखी।

प्रशस्ति - ऋ ५.६ ६; १६.१; ३६.४ ; ६८.२ - स० स्त्री० स्तुति, प्रशसा प्र √ शस् 'स्तुतौ' ' क्तिन् ' अ० ' Praise, Panegyrie ' ।

प्रसव- ऋ ५.४२.६; ८१ ५ - स० पु० प्रेरणा, आज्ञा, प्र √ सू 'उत्पन्न करना ' ' अ '।

प्राञ्च् - ऋ ५.४५.५ - स० वि० सामने की ओर, प्र √ अञ्च् 'गतौ', 'क्विन्' अ० ' Front' ।

प्रातर् - ऋ.५ १.२; १८.१; ६६.३; ७६.३; ७७.१, २ - क्रि० वि० सुबह, तडके।

प्रिय - ऋ.५.१ ६; ३७.५ ; ५१.४; ८२.२; ८५.१ - स० वि० प्यारा √ प्री 'प्रसन्न करना' अ० ' Pretty, Praise' ।

प्रियतम - ऋ.५.७५.१ - स० वि० अत्यन्त प्रिय, सर्वाधिक प्रिय, चारुतम, प्रिय ' तमप् '।

प्रेष्ठ - ऋ.५.४३.७ - स० वि० प्रियतम, अत्यधिक प्रिय √ प्री 'प्रसन्न करना' ' इष्ठन् '।

बहिष्ठ - ऋ.५.६२.६ - स० वि० बहुतम, विशालतम √ बृह् ' बड़ा बनना ' ' इष्ठन् ' अ० ' Biggest' ।

बट् - ऋ.५ ६७.१ - विस्मयसूचक अव्यय, सचमुच।

बन्ध् - ऋ.५. ८४.१ - क्रि० बाँधना द्र० बन्धनासः अ० ' Bind' ।

बन्धु - ऋ.५.७३.४ - स० पु० सम्बन्धी, अन्न, धन अ० ' Brother' ।

बर्हणा- ऋ.५.७१.१ - स० स्त्री० सामर्थ्य, शक्ति √ बृह्।

बर्हिष् - ऋ.५ ५ ८; ११.२; १८.४ ; २६.५; ४४.३; ४६.५ - स० स्त्री० कुश, कुशासन √ बृश्च् ' काटना ' यद्वा √ बृह 'वृद्धौ' > बर्ह ' इष् ' अवे० 'बरेजिश्' आसन 'शय्या' 'अ०' 'Bed' ।

बर्हिसद् - ऋ.५.४४.१ - वि० पु० कुशासन पर स्थित, बर्हि' √ सद् 'बैठना' 'क्विप् ' अ० 'Sit' ।

बल - ऋ.५.५७.६ - स० न० शक्ति शक्ति, सामर्थ्य √ बल् 'प्राणने' 'अच्'।

बलि - ऋ.५ १ १० - स० पु० उपहार, हविर्लक्षणान्न, भेट।

बहुल - ऋ ५ ५५.६ - स० वि० सघन, प्रचुर, व्यापक " √ बह्[२८] ' कुलच् ' नलोपः '।

बाध् - ऋ.५ २६.६, ८०.५ - क्रि० पीड़ित करना दबाना द्र० बाधत, बाधमाना अ० ' Baffle' ।

बार्ही - ऋ.५.१६.२; ५७.६, ६४.१ - स० स्त्री० विशाल, प्रचुर, व्यापक अ० ' Broad' ।

---

[२८] संस्कृत हिन्दी कोश - पृ० स० - ७१२।

भीमयु - ऋ.५.५६.३ - वि० पु० भय- युक्त, भयकर √ भी 'भये'।

भुज् - ऋ.५ ४८.४, ७३.२, ७४.१० - स० स्त्री० उपभोग √ भुज् 'उपभोग करना' 'क्विप् '।

भेषज - ऋ.५ ३.१४ - स० पु० वैद्य, उपचारकृत्, औषधप्रद अवे० ' अइबिसक ' √ भेष 'भये' > भेष > √ जि जये ' ड '।

भू - ऋ.५.२.६; ३.१; ३४.३; ५४.६; ६१.६; ८०.४; ८३.७ - सत्ताया, होना द्र० भुव, भुवत्, भव, भवति, भवतु, भवथ, भवन्ति, भवसि, भवन्तु।

भोग - ऋ.५.२६.६; स० पु० सेवा, उपभोग, हिस्सा √ भुज् 'उपभोग करना ' ' घञ्'।

भोजन - ऋ.५.४.६ ; ३४.७; ८२.१ - स० न० खाद्य, अन्न √ भुज् 'खाना' 'ल्युट्' अ० ' Banguet' भोज दावत'।

भृ - ऋ. ५.२.१, ३.२, ४७.५ ; ६२.६; ६४.६; ८४.१ - क्रि० धारण करना द्र० बिभर्ति, बिभर्षि, बिभृत।

भ्राज् - ऋ.५.१०.५; ६२ ७ - क्रि० चमकना द्र० भ्राजते।

भ्रातृ - ऋ.५.३४.४; ६०.५; ८५.७ - स० पुं० भाई, सहोदर अ० ' Brother' ।

मन् - ऋ.५.३१ २, ३५.८, ४६.४; ४८.१; ५०.५; ६६.३ - सोचना, विचार करना, मानना द्र० मसते, मनामहे।

महिष्ठ- ऋ ५ ३६.४ - स० वि० सर्वाधिक उदार, विशालतम √ मह् 'बड़ा होना ' 'इष्ठन् ' अ० ' Munificent' ।

मघवन् - ऋ.५.२६.५, ३०.७; ३१.६; ३३.१; ३६.३; ४२.६ ; ६१.१६ - स० पु० धनयुक्त, दानी, उदार अ० ' Majestic' ।

मघ - ऋ ५ १०.३; १८.३; २७.१; ३१.१; ३६.४; ६४.५ - स० न० दान √ मह् 'बड़ा होना' द्र० मघोनी, मघा अ० ' Meed'

मति - ऋ.५.२.८; ४३.६; ४४.१६ ५७.१; ६७.५; ८७.१ - स० स्त्री० स्तुति, बुद्धि √ मन् 'सोचना' ' क्तिन् '।

मथ् - ऋ.५.११ ६; ३०.८ - क्रि० मन्थन करना द्र० मथायन्, मथ्यमानः।

मद - ऋ.५ ४०.२; ४४.११ - स० पु० मादक, आनन्ददायक √ मद् 'मस्त होना' 'हर्षित होना '।

मद् - ऋ.५.६१ ११ - स० वि० मस्त होना, हर्षित होना द्र० मदन्ति, मदन्तम्, मदेम् अ० ' Mirth' ।

मदिर - ऋ.५.६१ ११ - स० वि० आनन्ददायक, मादक, √ मद् 'हर्षे' " किरच्"[२६]।

मधुमत् - ऋ.५.६३ १, ६६.२ - स० वि० मधुर, रसयुक्त ' मधु मतुप् '।

---

[२६] सस्कृत हिन्दी कोश - पृ० स० - ७६७।

मनोज्वस् - ऋ ५.७७.३ - स० वि० मन की तरह वेगवाला मन √ जू 'वेगौ' 'असुन्'।

मनस् - ऋ ५.१.४, ४२.४, ४४ ७ - स० न० मन, इच्छा, विचार √ मन् 'विचारणे' 'असुन् अ० 'Mental'।

मनीषिन् - ऋ.५.५७.२ - वि० पु० विचारवान, चिन्तनशील, मन की इच्छा, इच्छावान 'मनस्' √ इष् 'चाहना' 'णिनि'।

मनु - ऋ ५.४५.६ - स० पु० मनस्विन् व्यक्तिविशेष, मानव, मनुष्यजाति।

मनुष् - ऋ ५ ३ ४, ५.७; २६.१ - स० पु० मानव, मनुष्य √ मन् 'विचारणे' 'उसिन्' अ० 'Man, Mankind'।

मनुष्वत् - ऋ.५.२१.१ - स० वि० मानव सदृश, मनु सदृश √ मन् 'विचारणे' वतुप्।

मन्द् - ऋ.५.३२ ६; ६०.७, ८ - क्रि० मस्त करना, प्रसन्न होना द्र० मन्दसानः, मन्दान, मन्दे।

मन्द्र - ऋ.५.११.३ - वि० पु० धीमा, मधुर, शान्तमधुर 'मन्द' 'र' अ० 'Measured, Mild'।

मन्द्रजिह्व - ऋ.५.२५.२ - मधुर वाणी वाला, मधुर जिह्वा वाला अ० 'Mellifluent'।

मन्यु - ऋ ५ ७.१० - स० पु० क्रोध, क्रोधपूर्ण चिन्तन, विचार, चिन्तन अवे० 'मइन्यु' (आत्मा) √ मन् 'विचारणे' 'युच्'।

मयोभू - ऋ ५ ५.८, ४२.२, ४३.१; ५८.२; ७३.६; ७६.५, ७७.५ - वि० न० सुखकर, आनन्दप्रद, कल्याणकारी √ मय् गतौ' √ यद्वा मद् 'हर्षे यद्वा √ भी गतौ 'अस्' √ भू सत्ताया > भू।

मरुत् - ऋ.५.५ .११; ३०.८; ३६.६; ४१.५; ४३.१; ५४.२; ६०.३; ८३.६ - स. पु. देवगण विशेष √ ब्रू 'बोलना' म्रु मरु 'त'।

मर्त - ऋ.५.३.५; १४.२; १८.१; १५.४; ३१.१२ ७ स० पुं० मरणशील, मनुष्य √ मृ 'हिसायाम्' द्र० मर्त्य· अ० 'Mortal'।

मर्मन् - ऋ.५.३२.५ - स० न० मर्मस्थान, मृत्युकारक, अत्यन्त दुर्बल √ मृ हिसायाम्।

मर्य - ऋ ५.५३ ३, ५६.६ - स० पु० प्रेमी, मरणशील, तरुण पुरुष, मनुष्य अ० 'Mundane'।

मह् - ऋ.५.३८.१ - क्रि० बडा होना, महान होना द्र० महय अ० 'Magnify'।

मह - ऋ.५.१५ ५; ४ ३१.४३.१, ५०.४; ५३.४, ८७.७; - स० वि० बड़ा, विशाल √ मह् बड़ा होना' 'क' अ० 'Magnitude' वि० स्त्री० - मही।

महत् - ऋ ५.११ ६, १५.३; ३२.३, ५६.४ - स० वि० बडा महान √ मह् 'अत्' अ० 'Mammoth'।

महन् - ऋ ५.५६ ६ - स० न० गौरव, महानता, बडप्पन √ मह्।

महावधं - ऋ ५.३४.२, ८३ २ - स० वि० बडे शस्त्र से युक्त, महा √ वध् ' मारना' 'क' अ० ' Musketeen'

बन्दूकधारी सैनिक'।

महिष - ऋ.५.२६.७ - वि० पु० महान, बलवान, बडा गुरु √ मह् 'इष्' अ।

मा - ऋ.५.२७.५; ३०.६; ३३.८; ४०.७ - निपात नही, मत।

मा - ऋ ५.५२.२ - क्रि० नापना, निर्माण करना द्र० ममिरे अ० ' Measure '।

मातृ - ऋ.५ २.१, ५ ३६; ७.८; ३४.४; ४२.२; ४३.२; ४५ ३२; ४७.१; ५२.१६ , ५५.५ - स० स्त्री० माता, जननी

√ मा ' निर्माण करना ' ' तृच् ' अ० ' Mother'।

मानुष - ऋ ५ ५२.४; ५८ ६; ५६.३ - वि० पु० मानवीय, मानव -सम्बद्ध।

माया- ऋ ५.२.६, ३०.६; ३१.७; ४०.६ ; ४४.११; ६३.३, ७८.६ - स० स्त्री० प्रज्ञा, मोहिनी, निर्माण, अवास्तविक

निर्माण, अलौकिक शक्ति।

मायिन् - ऋ.५.३०.६; ४४.११; ४८.३; ५८.२ - वि० पु० मायावी, मायायुक्त माया 'इनि'।

मास - ऋ.५ ४५.७, ११ - स० पु० चन्द्रमास्, महीना √ मा 'मापना' 'अस्' अ० ' Month'।

मित्र - ऋ.५.३.१, १०.२; २६.६; ४०.७; ४६.५; ४६.३; ६५.१; ६७.३; ६८.२; ७२.३; ८१ ३४ - स० पु० सूर्य,

सहायक √ मित् 'मिलना ' 'र' अवे० 'मिथ्र '।

मित्रावरुणा - ऋ.५ ४६.३; ४७.७; ५१.१४, ६२.२; ६३.१; ६४.४, ६६ ३३ - स० पु० देवताविशेष मित्र और वरुण।

मिक्ष् - ऋ. ५. ४.२ - क्रि० मिश्रित करना, मिलाना द्र० मिमिक्षे अ० ' Mix, Merge, Mingle'।

मिह - ऋ ५ ३२.४- वि० पु० सेचक, वर्षक √ मिह् 'सेचने' 'अ' तु० मेघ अवे० 'मएघ'।

मिह् - ऋ.५ ५८.५ - क्रि० सेचने द्र० मिमिक्षुः।

मी- ऋ.५.५१ ११; ७६ २; ८० ४ - क्रि० क्षति पहुँचना, हिसित करना मिनाति, मिमीत, मिमीताम्।

मुञ्च्, मुच् - ऋ.५ २.७, ७८.५ - क्रि० छोडना द्र० मुञ्चतम्, मुमुग्धि।

मुद् - ऋ.५ ४७ ६, ८३ .६ - क्रि० प्रसन्न होना, हर्षित होना द्र० मोदते, मोदमान।

मुष् - ऋ ५ ३४ ७, ४४.४ - क्रि० चुराना द्रव० मुषे, मोषथ।

मृग - ऋ.५ २६.; ३२.३; ३४.२; ७५.४ - स० पु० पशु विशेष, पशु अवे० 'मरग' 'पक्षी' √ मृग् 'ढूँढना' 'क'।

मृज् - ऋ.५.१.७, ८, ४३.१४ ; ५२. १७ - पोछना, साफ करना द्र० मृजन्ति, मृजे, मृज्यते अ० ' Mop'।

मृळ् - ऋ.५.४१.१८, ५५.६; ५७.८; ५८.८ - क्रि० क्षमा करना द्र० मृळत, मृळयन्ती।

मृध् - ऋ.५.३०.६- क्रि० हिंसा करना द्र० मृधः।

मेधा - ऋ ५.२७.४, ४२ त्र१३ - स० स्त्री० बुद्धि, प्रज्ञा, धारण, अवे० 'मज्दा' मनस् अ० 'Mind'।

मो - ऋ ५.३१ १३, ६५.६ - निपात, नहीं।

यज् - ऋ.५.१३.३, २६.१; २८.५; ३१.१ - क्रि० यजन करना, पूजा करना द्र० यक्षत्, यक्षि, यज।

यच्छ् - ऋ.५.२७.२; ४६.७; ८०.२; ८३.५ - क्रि० देना द्र० यच्छ, यच्छत, यच्छति, यच्छतु।

यजत - ऋ.५.१.११, ४१.६; ४४ १०, १२ - स० वि० पूज्य, पवित्र, यजनशील √ यज् 'यजन करना'।

यजत्र - ऋ.५.५५.१०; ५८.४- स० वि० यजनीय, पूज्य, पवित्र √ यज् 'यजने' 'अत्र '।

यजमान - ऋ.५.२६.५; ४४.१३; ७७.२; (क) स० पु० यज्ञानुष्ठान करवाने वाला अवे० 'यज्मन'।

(ख) वि० पु० यजन करता हुआ √ यज् 'यजने' 'शानच् '।

यजिष्ठ - ऋ.५.१४.२ - वि० पु० याजकतम, श्रेष्ठ याजक √ यज् 'यजने' ' इष्ठन् '।

यजीयान् - ऋ.५ १ ५, ६, ३.५ - वि० पु० अपेक्षाकृत अच्छा याजक √ यज् ' ईयसुन् '।

यज्ञ- ऋ.५.८.५, ११.४; ४१.७; ५२.४; ८७.६ - स० पुं० यजन, पूजा √ यज् 'यजने', न अवे० 'यस्न'।

यज्ञिय - ऋ.५.१०.२; ५२.१; ८७.६ - वि० पु० यागयोग्य, यजनीय, यागार्ह √ यज् 'घ'।

यज्यु - ऋ.५.३१.१३ - वि० पु० याजक, पवित्र √ यज् ' यु '।

यतस् - ऋ.५.४८.५, ५३.१६ - अव्यय जहाँ से √ यत् 'विस्तारे' 'तसिल्' द्र० यतः।

यत् - ऋ.५.४.४, ३७.१; ६५.६; ६४.२ - क्रि० विस्तार करना, द्र० यतते, यतेमहि, यतथ:, यातयसे, येतिरे।

यती - ऋ.५. ४५.७; ५६.२ - वि० स्त्री० प्राप्त करती हुयी √ यत् ' शतृ' ' ङीप् '।

यतुर्न - ऋ.५.४४.८ स० पु० गमनशील, सूर्य।

यत्र - ऋ.५.५ १०; ४४.६; ५०.४, ५५.७; ६१.१४; ६२.१ - निपात जहा, यत् त्रल्।

यथा - ऋ ५.२०.४, ४०.५, ५४.८; ५५.२; ५६.२; ५६.७, ६१.४, ७६ .१ - निपात जहाँ जैसे, यत्, 'थाल्'।

यम - ऋ ५.६१.२ - स० पु० व्यक्ति विशेष, शासक, युग्म, √ यम् 'शासन करना' अवे० यिम '।

यम् - ऋ ५ ३३.३; ३४.२; ४६.५; ६१.२ - क्रि० अधिक खीचना, उठाना, शासन करना द्र० यमसे, यमत्, यमु:, येमथु, येमे।

यूयि - ऋ.५ ७३.७; ८७.५ - स० वि० गमनशील √ या जाना।

यवस् - ऋ ५ ६.४, ५३ त्र१६; ७८.२ - स० न० जौ, अन्न - विशेष, घासतृण √ यु 'मिश्रणे' 'असुन्'।

यविष्ठ - ऋ.५. १.१०, ३.११ - वि० पु० युवतम, तरुणतम, युवन् 'इष्ठन्' अवे० 'योइश्त्' अ० 'Youngest'।

यशस् - ऋ.५.४.१०, ८.४; १५.१; ४३.२ - (क) स० वि० विख्यात, कीर्तिमान (ख) स० न० कीर्ति प्रसिद्धि अवे० 'स्रुवह्'।

यह्व - ऋ.५.१६.४; २६.२ - वि० पु० तरुण, चपल, विशाल अवे० 'यजु' अ० 'Young' स्त्री० 'यह्वी'।

या - ऋ.५.६.३; ३१.१; ५३.२, १२; ७४.८; ८०.२ - क्रि० जाना द्र० यात, याति, यातु, याथः, यामि, ययु याहि।

यात् - ऋ.५.४२.१०; ५३.८ अव्यय अब तक, जहा तक।

याम- ऋ.५ ४४.४; ५२.२; ५८.७; ७३.६ - स० पुं० गमन, सञ्चार यात्रा √ या 'म'।

यामन् - ऋ ५ ५३ १६; ५६.७- स० न० गमन,यात्र √ या 'मन्'।

यामहू - ऋ ५.६१ १५ - स० वि० मार्ग मे बुलाया जाने वाला 'याम' √ हु आह्वाने' द्र० यामहूति।

युक्तग्रावन् - ऋ.५ ३७.२ - वि० पु० पत्थरो को जोडने या सयोजित करने वाला √ युञ् 'योगे' 'क्त' > 'युक्त' 'ग्रावन्'।

युग- ऋ.५.५२.४, ७३.३ - स० न० पीढी, हल का सयोजनाश √ युज् 'योगे' 'घञ्'।

युज् - ऋ.५.२०.१; ३०.८; ३४.८ - वि० पु० सहायक मित्र, सुहृद् √ युज् 'क्विप्'।

युज्- ऋ.५.४३.४; ६३.५; ८१.१ - क्रि० जोडना, मिलाना द्र० युज्यते, युञ्जते।

यु - ऋ.५.२.५ - क्रि० जोडना द्र० यवन्त।

यु - ऋ.५.५०.३, ८७.७ - क्रि० पृथक् करना, हटाना द्र० युयोतु, युयोतन।

युजान- ऋ.५.८०.३ - वि० पु० मिलता हुआ, सयुक्त होता हुआ √ युज् 'योगे' 'शानच्'।

युध् - ऋ.५ ३.६, ५६.५ - क्रि० युद्ध करना द्र० युयुधः, योधि।

युवति - ऋ ५ २.४ , ४७.१; ६१.६; ८०.६ - स० स्त्री० तरुण स्त्री, युवन् का स्त्रीलिङ्ग रूप।

युवन् - ऋ.५ १.६; ४४.३, ४५.६; ५७.८; ५८.८; ६१.१३; ७४.५- स० पु० युवक, तरुण, जवान √ यु 'मिश्रणे' 'वन्' अवे० 'युवन् यून्' अ० 'Young, Youth'।

यूथ - ऋ.५ २.४ - स० न० समुदाय, समूह √ यु 'थक्'।

यूप - ऋ.५.२.७ - स० पु० यज्ञस्तम्भ, लकडी का कुदा √ यु "पक्[३०]"।

योक्तृ - ऋ.५.३३.२ - स० न० बन्धन, रस्सी √ युज् 'योगे' 'ष्ट्रन'।

योग - ऋ.५ ३७.५ , ४३.५ - स० पु० श्रम, मिलाना √ युज् ' घञ् '।

योजन - ऋ.५.५४ ५ - स० न० योजन, दूरी का मापविशेष √ युज् ' ल्युट् '।

योनि - ऋ.५.२१.४; ४७.३; ६७.२ - सं० स्त्री० स्थान्, उत्पत्ति स्थान, गृह, आधार, कारण √ यु 'मिश्रणे' 'नि' अवे० 'यओन' गृह।

योषणा - ऋ.५.५२.१४ - स० स्त्री० तरुणी, युवती।

योषा - ऋ.५.७८.४; ८०.६ - स० स्त्री० तरुणी, युवती √ युष् 'सयुक्त होना'।

रक्ष् - ऋ ५ ६२.५, ६६.१ - क्रि० रक्षा करना द्र० रक्षमाणा, अ० 'Refuge, Refugee'।

रक्षस् - ऋ.५ ५.२ ६ १०, ४२.१० ७ स० पु० हिसक, राक्षस √ ऋ 'प्रहारे' 'असुन् '।

रघु - ऋ ५ ३० १४ ; ४५.६ - स० वि० शीघ्रगामिन्, तीव्र अ० 'Rapid, Rapidly'।

रघुद्रु - ऋ.५ ६.२ - स० वि० तेज दौडने वाला रघु √ द्रु 'गतौ' अ० 'Racy'।

रघुस्यद् - ऋ.५.२५.६; ७३.५- स० वि० तीव्रगामिन्।

रजस् - ऋ ५.४७.३, ४८.१; ५४.४; ५६.३; ६३.५; ६६.४- स० न० अन्तरिक्ष, प्रदेश, स्थान, √ रज् फैलना ' 'असुन्' अ० 'Region'।

रन् - ऋ.५.१८.१; ५१.८, १०.७४.३ ७ क्रि० आनन्द मनाना, प्रसन्न होना द्र० रण रण्यति, रण्यथ अ० 'Rejoice'।

रण्व- ऋ.५.७.२ - वि० पु० रमणीय, सुखप्रद, अच्छा √ रम् 'आनन्दित होना'।

रत्न - ऋ.५ १.५; ८८.४, ४६.१, २ , ७५.३ - स० न० रमणीय धन, रमणीय दान √ रम् ' त्न '।

रद् - ऋ.५.१०.१, ८०.३ - क्रि० खोदना द्र० रत्सि, रदन्ती।

रथ - ऋ.५ १.११, २.११; २६.१५; ३१.४; ३३.३; ३५.७ ; ७३.५; ७४.३, ७५.१, ८३.७; ८६.४ - स० पु० वाहनविशेष, यानविशेष √ ऋ 'गतौ'।

रथ्य- ऋ.५.४१.३; ५४.१३; ७५.५ ; ८७.८ - वि० पु० रथ से सम्बद्ध, रथीय, अश्व, रथ 'यत् '।

रदन्ती - ऋ.५ ८०.३ - वि० पु० खोदती हुयी √ रद् 'खोदना' ' शतृ ' ' ङीप् '।

---

[३०] सम्कृत हिन्दी कोश - पृ० स० - ८३८।

रम् - ऋ ५ त्र५२.१३ - क्रि० आनन्दित होना द्र० रमये।

रयि - ऋ.५ ४.७, ६.७; १०.७, २३.१; २४.१; ३६.६, ४१.५; ४२.१८; ५४.१४; ७६.५; ७७.५, ८६ ६- स० पु० धन, सम्पत्ति, √ रा 'दाने' 'इ'।

रश्मि - ऋ ५.४३.३ - स० पु० किरण, रज्जु अ० 'Ray'।

रव - ऋ ५ ६३.३ - स० पु० ध्वनि, शब्द √ रु 'शब्दे' अच् अ० 'Roar' 'गरजना'।

रसा- ऋ ५.४१.१५; ५३.६- स० स्त्री० नदी विशेष, सारभूता भूमि।

रा - ऋ ५.१३.५; ८३.६ - क्रि० दान देना द्र० रास्व, ररीध्वम्।

राज् - ऋ.५.८.५; २५.४; २८.२; ५५.२; ७१.२; ८१.२ - क्रि० शासन करना द्र० राजति, राजथ राजसि अ० 'Regime, Regality' राजपद।

राजन् - ऋ ५.४ १, ३६ २, ४०.४; ८५.३ - स० पु० स्वामी, शासक, √ राज् 'शासन करना' 'कनिन्' अ० 'Ruler, Regent' राजप्रतिनिधि।

रातहव्य- ऋ ५ ४३ १४, ५३.१२; ६६.३ - स० वि० हवि दान देने वाला।

राति - ऋ.५ ३३.६, ३८ १ - स० स्त्री० दान √ रा 'दाने' 'क्तिन्'।

राधस् - ऋ ५.३८.१, ४३.६, ८६.४ ; ८६.६, ७ - स० न० दान, लाभ, √ राध् 'सफल होना' 'असुन्'।

राध् - ऋ ५.८६ ६, ७ - क्रि० सफल होना द्र० राधसि।

राय - ऋ ५.३.६, १२.३, १५.१, २५.३ ; ३३.१० ; ३६.४; ४१.५; ४२.५; ४६.४; ६८.३ - स० पु० धन, समृद्धि।

रि- ऋ.५.३१.११, ४१.१०; ५६.४; ५८.६, ८०.६ ७ क्रि० बहना रिणाति, रिणते।

रिप् - ऋ ५.८५.८ - क्रि० लीपना, फाड़ना अ० 'Rive' 'फाड़ना'।

रिपु - ऋ ५ ३.११, १२.४; ३१.११; ४१.१०, ७६.६ - स० पु० शत्रु, हिसक √ रिप् फाड़ना 'उ' अ० 'Rampant' 'उग्र।

रिश् - ऋ.५.६७.२ - क्रि० फाड़ना द्र० रिशादसा अ० 'Rip'।

रिशादस् - ऋ.५ .६६.१ - स० वि० हिसको का भक्षण करने वाला, शत्रु, हिसक √ रिश् 'फाड़ना' > रिश > √ अद् 'भक्षणे' 'असुन्'।

रिष् - ऋ ५ ४४.६, ५४ ४, ७ - क्रि० हिंसित करना, प्रहार करना द्र० रिष्यति, रिष्यथ अ० 'Ravage' नष्ट करना।

रीति - ऋ ५.४८.४ - स० स्त्री० प्रवाह √ री 'प्रस्रवणे' 'क्तिन्' अ० 'River'।

रुक्म - ऋ. ५.१ ऋ१२; ५३.४; ५४.११; ५५ १; ५७.५ - स० पु० चमकीला √ रुच् ' चमकना ' अ० ' Radiant' ।

रुक्मवक्षस् - ऋ.५ ५५.१; ५७.५ - वि० पु० वक्ष· स्थल पर कान्त अलङ्कार धारण करने वाला।

रुद्र - ऋ.५.४६.२; ६०.५, ७३.८ - स० वि० देवविशेष, रक्ताभ, प्रवृद्ध "√ रुध्[31] 'रक्ताभ होना' > रुद्र तु० रुधिर,

रोहित अ० ' Red, Ruddy, Raddish' यद्वा √ वृध् 'बढना' > रुध् 'र'।"

रुश् - ऋ ५ १.२, ५४ १२ - क्रि० चमकीला द्र० रुशत्।

रुह् - ऋ ५.७.५; ६२.८ ७ क्रि० उगना द्र० रुरुहुः, रोहथः।

रूप - ऋ.५.४३.१०; ५२.११, ८१.२ - स० नं० आकृति, आकार, स्वरूप, शरीर, देह, सौन्दर्य √ वृप् 'ऊपर' उठना >

रूप तु वर्पस् रूपम् > अ० ' Rhetoric' ' अलङ्कार शास्त्र '।

रेज् - ऋ.५.४४.६; ५६.४; ८७.५ - क्रि० कॉपना, चमकना द्र० रेजते, रेजथे, रेजयत्।

रेतस् ऋ ५ १७.३, ८३.१, ४ - स० न० बीज, वीर्य √ री 'स्रवणे' 'असुन्' यद्वा √ ऋध् 'वृद्धौ' > रेधस् > रेतस्

अ० ' Root' ।

रेवत् ऋ ५ २३ ४, ५१.१४ - वि० पुं० धनवान, समृद्ध, श्रीमत् √ रा 'दाने' > रयिवत् > रेवत् अ० 'Rich' ।

रोचन- ऋ.५ २६ १; ५६.१; ६६.४; ८१.४ - स० न० कान्त, दीप्त √ रुच् ' कान्तौ ' ल्युट् '।

रोचिस् - ऋ.५.२६.१ - स० न० तेज, ज्वाला √ रुच् 'कान्तौ' इसि अ० ' Refulgence' ' ज्योतिपुज'।

रोदसी - ऋ.५.१.७; १६.४; २६.४; ३०.८; ३१.६; ४२.१४; ४६ ऋ८; ५३.६; ६१.१२; ८५.३ - स० स्त्री० द्यावा-पृथिवी,

अन्तरिक्ष और पृथिवी लोक √ ऋध् 'वृद्धौ' > रोधस् > रोदस् ङीप् '।

रोहित - ऋ ५.३६.६; ५६.६, ६१.६ - स० वि० रक्त, लाल √ रुध् 'लाल होना' तु० रुधिर, अ० ' Red, Ruddy'

।

लक्ष्मण्य- ऋ.५.३३.१० - स० पु० लक्ष्मणपुत्र ध्वन्य।

लोक - ऋ.५.१ ६, ४.११ - स० पु० स्थान, प्रदेश अ० ' Land' ।

वंसग - ऋ ५ ३६.१ - स० पु० वृषभ, वनगामिन्।

वक्षणा - ऋ.५.४२.१३; ५२.१५ - स० स्त्री० शिरा, धमनी, वाहिनी, चाहना √ वह् ' ढोना '।

---

[31] ऋग्वेद द्वितीय मण्डल (प्रकाश्यमाण), डॉ० हरिशङ्करत्रिपाठी।

वचस् - ऋ. ५.१.२: ११.२, २२.८; २६.६; ४५.४ - स० न० कथन, भाषण, स्तुतिवाक् √ वच् 'कहना' 'अस्' अ० 'Vocal' ।

वचस्यु - ऋ.५.१४ ६ - वि० पु० कहने का इच्छुक वाचाल, वचस् 'क्यच्' 'उ'।

वच् - ऋ.५.३१.६, ८१ १४; ४६.४; ८५.५ - क्रि० बोलना, कहना द्र० वोचे, वोचम्।

वज्र - ऋ ५.२६ २, ३१.४ ; ३२. ४; ४८.३ - स० पु० इन्द्र का शस्त्र अवे० 'वज्र' 'गदा'।

वज्रहस्त - ऋ.५ ३३.३ - वि० पु० वज्रयुक्त हाथ वाला।

वज्रिन् - ऋ.५.२६.१४; ३२.२; ३६.५ ; ४०.४ - स० पु० वज्रधारी, इन्द्र' 'वज्र' 'इनि'।

वणिक् - ऋ ५.४५ ६ - स० पु० व्यापारी, बनिया अ० 'Vender' ।

वद् - ऋ.५.३७.२, ६३.३; ८३.१ - क्रि० बोलना द्र० वद, वदति, वदन्ति।

वध - ऋ.५.८ ६, २६.१०; ३२.८ - स० पु० शस्त्र √ वध् 'हिसायाम्' अ० 'Weapon' ।

वध् - ऋ.५.४४ १२, ५५.६ - क्रि० हिसा करना, मारना द्र० वधीत्, वधिष्टन।

वन् - ऋ.५.३.१०, ४.३; ४१.१७, ६५.४ - क्रि० जीतना, देना द्र० वनते, वनुयाम।

वन - ऋ.५.१ ५, ५८.६, ६०.२; ७८.८, ८५.२ - स० न० वृक्ष, वृक्षो का समूह, जगल।

वनस्पति - ऋ ५ १०, ७.४, ४१.८; ४२.१६; ७८.५; ८४.३- स० पु० ओषधि, वृक्ष।

वन्दमान - ऋ.५ ३०.१० - वि० पु० स्तुति करता हुआ √ वन्द् 'स्तुतौ' 'शानच्'।

वन्द् - ऋ ५ १.१२; ३.१०; २८.४; ५८.२ - क्रि० स्तुति करना, प्रार्थना करना द्र० वन्दे, वन्दस्व, वन्दमान, ववन्दिम अ० 'Worship' ।

वन्द्य - ऋ ५ ४१ -७ - वि० पु० स्तुत्य, वन्दन योग्य √ वन्द् 'स्तुतौ' 'यत्' अ० 'Venerable, worshipful' ।

वपुस् ऋ.५.३३.६, ४७.५, ६२ त्र१; ७३ ३ - स० न० देह, शरीर, सुन्दर।

वयस् ऋ ५ ४ ६, १५.१०, १६.१, ७३.५ - स० न० अन्न, सामर्थ्य, शक्तिप्रदात्र √ वी 'भक्षणे' 'असुन्'।

वयाधा - ऋ.५ ४३.१३ - वि० पु० अन्नप्रद, सामर्थ्यप्रद 'वय' √ धा 'धारणे' 'क्विप्' अ० 'Victualler' 'भोजन मामग्रियो का प्रबन्धक'।

वय् - ऋ ५ ४७ ६ - क्रि० जाना, हिलना डुलना द्र० वयन्ति।

वयस्वत् - ऋ.५.५४.१३ - वि० पु० सामर्थ्ययुक्त, अन्नयुक्त।

वयुन- ऋ ५ ४८ २ - स० न० सङ्केत, प्रज्ञानचिह्न, यज्ञरूप धर्म-कृत्य √ विद् 'ज्ञाने' > वि 'उन्'।

वर- ऋ.५.४४.१२ - स० पु० अभीष्ट, वरणीय, पति √ वृ 'वरणे' 'अच्'।

वरिवस् - ऋ.५.२६.१० - स० न० मित्रता, स्वास्थ्य, मित्र।

वरिष्ठ - ऋ.५. ४८.३ - स० वि० सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम, विशालतम 'वर' ' इष्ठन्'।

वरीयस् - ऋ.५.४५.५; ४६.५ - वि० पुं० विशालतर, उच्चतर, उरुतर, 'उरु का ईयसुनान्त रूप'।

वरुण - ऋ.५.३.१; २६.६; ४०.७; ४१.२ ; ४६.५; ४८.५; ४६.३ ; ६४.५; ६७.३; ८५.२ - स० पु० देव-विशेष √ वृ 'आवरणे' 'उनन्'।

वरुतृ - ऋ.५.१४.१५ - वि० पु० रक्षक, रक्षा करने वाला √ वृ 'तृच्'।

वरुथ - ऋ.५.४६.४ - स० न० रक्षा, सरक्षण, सुरक्षा √ वृ अ० ' Vindicate' ।

वरेण्य- ऋ.५.८.१; १३.४, २२.३; ३५.३; ३६.२; ८१.२ ७ वि० पु० वरणीय, चयन योग्य।

वर्ति - ऋ.५.७५.७ - स० स्त्री० यज्ञगृह, चिह्न।

वर्पस् - ऋ.५.४८.४ - स० न० देह, शरीर √ वृ 'आवरणे'।

वर्ष्य - ऋ ५.८३.३ - स० वि० वृष्टियुक्त, वृष्टियोग्य, वर्षाकालीन √ वृष् 'सेचने '।

ववृधान - ऋ.५.२.१२; ३.१०; २७.२; ३२.६; ६६.१ - वि० पु० बढता हुआ √ वृध् 'कानच्'।

वव्रि - ऋ.५.१६ १, ३२.१, ४६.६; ७४.५ - स० पु० ऋषिविशेष, त्वचा, खाल √ वृ 'आवरणे'।

वस् ऋ.५.५६.२, ६३.६ ; ८५.४ - क्रि० पहनना, धारण करना, निवास करना द्र० वसत।

वसति - ऋ.५.५२.६; ६३.६; ८५.४ - स० स्त्री० निवास स्थान √ वस् 'निवास करना '।

वसु - ऋ ५.६.१; २४.१; २५.१; ४१.६; ५५.८ - (क) स० वि० अच्छा, शोभन, श्रेष्ठ √ वस् 'सुन्दर होना' 'वसुतर' अ० ' Better' । (ख) स० न० धन, समृद्धि।

वसुयु - ऋ.५ ३३.६, २५.६; २६.१५ - स० वि० सम्पत्ति का अभिलाषी।

वस्त्र - ऋ.५ ४७ ६ - स० न० वसन, कपडा √ वस् 'पहनना ' 'त्रल्' अ० ' Vesture' ।

वश् - ऋ.५.८५.४ - क्रि० चाहना द्र० वष्टि।

वह् - ऋ.५.५.३, २६.२, ३०.३; ४४.८, ६१.१७; ६२.४; ७५.६; ७६.७, ८ - क्रि० ले जाना द्र० वह, वहत , वहन्तु, वहसे, वहामि।

वहन्त- ऋ.५.७६.४ - वि० पु० वहन करता हुआ, खीचता हुआ √ वह् 'ढोना' 'शतृ'।

वह्नि- ऋ.५.५०.४; ७६.४ - (क) वि० पु० वाहक, खीचने वाला। (ख) स० पु० अग्नि, हविष्यवाहक अग्नि।

वा - ऋ.५.३.१; ४८.३; ५३.१; ६०.६; ७६.१०; ८५.७ - (क) सयोजक निपात। (ख) बुनना (सविकरणक रूप)।

वा- ऋ.५.४७.६ - क्रि० बुनना द्र० वयन्ति अ० ' Weave '।

वा - ऋ ५.८३.४ - क्रि० बहना द्र० वान्ति।

वाक् - ऋ ५ ३६ ४ ; ४३.११; ५४.१; ६३.६; ७६.१ - स० स्त्री० वाणी, शब्द, स्तुति √ वच् 'बोलना' 'क्विप्'।

वाज- ऋ.५.४.१, १५.५; ३६.३; ४४.१०; ५४.१४; ८४.२; ८५.२ - (क) स० पु० ऋभु की सज्ञा, उपहार, युद्ध। (ख) स० न० अन्न।

वाजयन्त - ऋ.५.४.१; ३१.१; ३५.७ - सं० वि० उपहार की कामना करता हुआ, अन्न की इच्छा करता हुआ वाज > 'वाजय' 'शतृ'।

वाजयु - ऋ.५.१०.५; १६.३ - वि० पु० उपहारेच्छुक, अन्नेच्छुक, 'वाज', 'क्यच्' ' उ '।

वाजसाति - ऋ.५ ३५.६; ३३.१; ४६.७; ६४.६ - स० स्त्री० उपहार की प्राप्ति वाज' √ सन् 'प्राप्त करना' ' क्तिन् '।

वाजिन् - ऋ ५.६.७, २३.२; ४१.१, ४३.६; ६५.३ - (क) वि० पु० शक्तिशाली, समर्थ अ० ' Vigorous' (ख) स० पु० अश्व, वाज ' इनि'।

वात- ऋ.५.५.७, ५८.७; ३१.१०; ४१.३; ८३.४ - स० पु० वायु √ वा 'बहना' ' क्त' अ० ' Wind'।

वाम - ऋ ५.६०.७ - स० पुं० सुन्दर धन, बाया √ वाञ्च्- कामना करना > वाञ्छनीयम् > वाम।

वायु - ऋ.५.१६.५ ; ४३.३; ५१.४ - स० पु० देवता विशेष।

वार - ऋ.५.१६.२ - (क) स० न० पुच्छ, बाल (ख) स० पु० वरणीयोपहार, धन √ वृ 'चुनना'।

वार्य - ऋ ५.८.३ ; ६.३; १६.५; १७.५; ४१.१२; ४६.३ , ८०.६ - सं० न० वरणीयोपहार।

वाश् - ऋ ५.५४.२ - क्रि० रँभाना द्र० वाशति।

वाशी - ऋ ५ ५३ ऋ४ - स० स्त्री० आयुधविशेष, मरुतो का आयुध।

वासस् - ऋ ५ ४३.१४ - स० न० वस्त्र √ वस् 'पहनना' अ० ' Vestment'।

वाहिष्ठ - ऋ ५ २५ ७ ७ स० वि० वोढृतम, कथनीय, √ वह् 'ढोना' ' इष्ठन् '।

वि- ऋ ५ २.५, १२.४, १५.३; १८.२; ६०.१; ८३.२; ८५.१ - उपसर्ग पृथक्, विशिष्ट, अधिक।

विशति - ऋ.५ २७ २ - सख्या बीस अ० ' Twenty'।

विचर्षणि - ऋ.५.६३.३ - वि० पु० कर्मनिष्ठ, श्रमशील, कृषक कर्मरत " √ कृष्[३२] ' अस् "।

वितत - ऋ.५.५४.१२ - स० वि० बिछा हुआ, विस्तृत, फैला हुआ 'वि' √ तन् 'विस्तारे' ' क्त '।

वितरम् - ऋ.५.२६.४ - नि० अधिक दूर, अधिक विस्तार से, 'वि' √ तृ 'पार करना' 'अच्'।

विदथ - ऋ.५ .३३.६ (क) स० पु० नृपति- विशेष (ख) स० न० स्तोत्र, सभा।

विद् - ऋ.५.७.६; ११.४; १४.५; ४४.११; ५६.७ - क्रि० जानना द्र० विद, वेद, विदत्, वेति, वेतु।

विद्वस् - ऋ.५.१.११; २.८; ३.६; ४.५; २६.१३ ; ३०.३; ४६.१; ४६.२; ८६.४ - वि० पु० विद्वान्, जानकार, बुद्धिमान

√ विद् 'जानना' 'क्वसु'।

विद्युत ' ऋ.५. १०.५ ; ४२.१४; ५२.६; ५४.११ ; ८३.४; ८४.३ - स० स्त्री० बिजली 'वि' √ दिव् 'कान्तौ', द्युत् '

क्विप् '।

विध् - ऋ.५.४.७; ६५.४ - पूजा करना द्र० विधतः, विधेम अ० ' Worship ।

विधर्मन् - ऋ ५.१७.२ - वि० पु० स्तोता, विशिष्ट धर्म वाला।

विपश्चित् - ऋ.५ ६३.७; ८१.१- स० वि० विद्वान्, बुद्धिमान अ० ' Wise' ।

विप् - ऋ.५.३६.३ - क्रि० काँपना, प्रेरित करना द्र० वेपते अ० ' Vibrate' ।

विपन्यु - ऋ.५. ४३.१४; ६१.१५ - (क) स० वि० बुद्धिमान, ज्ञाता, स्तोत्रो का ज्ञाता (ख) स० पु० स्तुति 'वि' √ पन्

'स्तुतौ' 'यु'।

विप्र - ऋ.५.१.७; २.११; १३.५; ३०.१५; ४३.७; ५१.३; ५८.२; ७४.७; ८१.१ - स०वि० प्रबुद्ध, मेधावी, स्तोता

√ विप् 'प्रेरित होना ' 'र'।

विभजन्त - ऋ.५.४६.१, २ - वि० पु० बँटवारा करता हुआ, विभक्त करता हुआ 'वि' √ भज् 'भागे ' शतृ '।

विभाती - ऋ.५..८०.१- वि० स्त्री० प्रकाश युक्त, व्यापक 'वि' √ भा 'चमकन्' ' क्तिन्' ' डीप् '।

विभावन् - ऋ.५.१.६.४.२ - स० वि० तेजस्वी, प्रकाश-युक्त, 'विभा ' ' वन् '।

विभावसु- ऋ. ५.२५.२, ७ - वि० पु० प्रख्यात, धनयुक्त।

विभु - ऋ. ५.४..२ , ५.६ - वि० पु० व्यापक, सर्वत्र स्थित 'वि' √ भू 'सत्ताया ' अ० ' Wide ' ।

विभ्वी - ऋ ५.३८.११ - वि० स्त्री० विशाल, महती, व्यापक विभु ' डीप्'।

---

[३२] ऋग्वेद द्वितीय मण्डल (प्रकाश्यमाण) - डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी।

वियुत् - ऋ.५.३०.१० - सं० वि० वियुक्त, पृथक् 'वि √ युज् 'क्त'।

विरूप - ऋ.५.३०.१० - स० वि० भिन्न- भिन्न रूपो वाला, नाना वर्णो वाला अ० 'Varigate'।

विवस्वत् - ऋ.५.११ ३ - स० वि० तेजस्वी, विशिष्ट रूप से रहता हुआ 'वि' √ वस् 'रहना'।

विवास् - ऋ ५. ८३.१ - क्रि० विशे० व्याप्त होना, परिच्छिन्न करना, सेवा करना 'वि' √ वस् 'निवास करना'।

विश् - ऋ.५.१६.२; ४७.३ - क्रि० प्रवेश करना द्र० विवेश, विविशुः।

विश् - ऋ.५.३.५, ८.२, १८.१; २१.१; ४८.५; ५६.१ - स० स्त्री० प्रजा, जन, ग्रह √ विश् 'क्विप्' "अवे०[33] विस् प्रा० फा० विथ् (Vith),प्रा० स्ला० विशि (Visi) 'गाँव,' अल्वेनियन विस् (Vis) 'स्थान', तुल० ग्रीक आइकास् (Oikos) 'मकान', लैटिन वीकस् (Vicus)"।

विश्पति - ऋ.५.४.३; ६.५ - स० पु० ग्रहपति, गृहस्वामी, विश् 'पति '।

विश्व- ऋ.५.३४.७, ५०.१ - सर्व० सभी, सम्पूर्ण, अनेक।

विश्वत - ऋ.५.४४.७; ४७.२ - अव्यय चारो ओर, सभी जगह, विश्व 'तसिल्'।

विश्वदर्शत - ऋ.५.८.३ - स० वि० सर्व सुन्दर, चारो ओर से दर्शनीय।

विश्वरूप- ऋ.५ ८३.५ - वि० पु० समग्र रूपो वाला, नाना रूपो वाला।

विश्ववार - ऋ.५.४४.११ - स० वि० समस्त उपहारो से परिपूर्ण।

विश्ववेदस् - ऋ.५.६०.७; ६७.३ - स० वि० सबको जानने वाला, सर्वज्ञ, समस्त धनयुक्त।

विश्वसामन् - ऋ.५.२२.१ - स० पु० ऋषिविशेष, अत्रि के वशज।

विषुण - ऋ.५.१२.५ - स० वि० बहुरूपी, सर्वत्र व्याप्त अ० 'Wide-spread'।

विष्णु - ऋ.५.४६.२; ४६.३ ; ५१.६, ८७.१ - सं० पु० देवविशेष, व्यापक, √ विष् 'व्याप्तौ'।

विसर्जन - ऋ.५.५६.३ - स० न० सृष्टि, उत्पत्ति वि √ सृज् 'सर्जने' 'ल्युट् '।

विस्तार - ऋ.५.५२.१० - स० पु० फैलाव 'वि' √ स्तृ 'फैलाना' 'घञ्'।

वी - ऋ ५ ३०.८ - क्रि० उपभोग करना द्र वेषि।

वीतपृष्ट ऋ ५ ४५ १० - स० वि० कान्तपृष्ठ- भागवाला।

वीति - ऋ.५. २६ २; ५१ ५; ५६.८ - स० स्त्री० उपभोग, स्वीकृति √ वी 'क्तिन् '।

वीतिहोत्र - ऋ.५. २६.३ - स० वि० भोजन का निमन्त्रण देने वाल 'वीति' √ हु 'पुकारना' > होत्र।

---

[33] The Sanskrit Language - पृ० स० - ८५।

वीर - ऋ ५ ३०.१ , ४२.१८; ४३.१७, ७६.५; ७७.५ - (क) वि० पु० पराक्रमी, शक्तिशाली, योद्धा (ख) स० पु० पुत्र।

वीरवन्त - ऋ.५ ४. ११ - वि० पु० पराक्रमयुक्त, वीरतायुक्त।

वीर्य - ऋ. ५. २६.१३, १४ ; ४२.६ ; ५४.४ - वीरता का कर्म, सामर्थ्य।

वृ - ऋ.५.११.४ , २०.३, २६.४; ८२.१ - क्रि० चुनना द्र० वृणते, वृणीमहे।

वृक्तबर्हिष् - ऋ.५.६.२ ; २३.३; ३५.६ - स० वि० कुशासन बिछाने वाला, विस्तृत कुशासन।

वृजन - ऋ.५ .५२.७ ; ५४.१२ - स० न० बल, घेरा, समूह √ वृ 'आच्छादित करना' √ जन् 'ड '।

वृजिन - ऋ.५.३.११ - वि० न० वर्जित, टेढा, मुड़ा हुआ √ वृज् 'मरोड़ना '।

वृणान - ऋ. ५.११.४; ४८.१ - स० वि० चुनता हुआ √ वृ 'चुनना' 'शतृ'।

वृत- ऋ. ५.३७.५; ४८.२ - स० वि० वर्तमान, चुना गया, नियम √ वृ ' क्त '।

वृत्र - ऋ.५.३७.४; ४२.५ - स० पु० आच्छादक, पापी, इन्द्र का शत्रु √ वृ 'आवरणे' ' त्रल् '।

वृत्रहन् - ऋ.५ . ३८.४ - वि० पु० वृत्र को मारने वाला, इन्द वृत्र √ हन् 'मारना' ' क्विप् '।

वृथा - ऋ. ५. ५६.४ - क्रि० विशे० इच्छापूर्वक, स्वेच्छया, अनायास √ वृ 'चुनना' थाल् '।

वृद्ध - ऋ.५.६०.३ - स० वि० बढा हुआ, विकसित पुरातन √ वृध् 'बढना ' ' क्त ' अ० 'Big' ।

वृध् - ऋ.५.६.७; १०.७, १६.५; १७.५; ६४.७ - क्रि० बढना द्र० वृधे, वर्धसे।

वृद्धशवस् - ऋ.५. ८७.६ - स० वि० बढ़े हुये बल वाला, अति बलशाली।

वृद्धशोचिष - ऋ.५.१६.३ - स० वि० विशाल ज्वाला वाला, प्रभूत कान्ति वाला।

वृष् - ऋ.५.५५.५; ६३ ३, ८४.३ - क्रि० बरसना द्र० , वर्षन्ति, वर्षयथ, वर्षयथ।

वृषक्रतु - ऋ.५. ३६.५ - वि० पु० वर्षा कराने वाला, वर्षक।

वृषन् - ऋ ५ ३१.५; ३६.५, ४०.३; ४७.६; ७५.१ - वि० पु० वर्षक, सेचक, शक्तितशाली √ वृष्।

वृषण्वसु - ऋ.५. ७४. १; ७५.४, ६ - वि० पु० धनयुक्त, कामनासेचक अ० 'Wealthy'।

वृषभ - ऋ.५ १.८; २.१२, २८.४; ३०.११; ३२.६; ४०.४, ४३.१३; ५८.६ ८३.१ - (क) स० पु० बैल (ख) वि० पु० वर्षक, कामनासेचक, बलशाली।

वृष्टि - ऋ ५.५३ २, ६, १०; ६३.१; ८३.६; ८४.३ - सं० स्त्री० वर्षा, जलावसेक √ वृष् ' बरसना' 'क्तिन् '।

वेदस् - ऋ.५.२.११ - (क) स० न० धन √ विद् 'लाभे' 'असुन्' (ख) ज्ञान √ विद् 'ज्ञाने' 'असुन्'।

वेदि- ऋ.५.३१.१२ - स० स्त्री० वेदी, यज्ञ-वेदी।

वेधस् - ऋ.५ ५२.१३ - स० पु० विधायक, कर्त्ता वेदस् > वेधस् यद्वा 'वि' √ धा 'धारणे' 'अस्' > वेधस्।

वेन् - ऋ.५ ३१.२ - स० वि० कमनीय √ वन् 'सम्भक्तौ' ' वेन '।

वेश - ऋ ५ ८५ ७ - स० न० घर, आवास, प्रवेशद्वार √ विश् ' प्रवेश करना' ' घञ् '।

वैश्वानर - ऋ.५.२७.१, २; ५१.१३; ६०.८ - (क) स० पु० अग्नि का नाम (ख) स० वि० सबका स्वामी।

वे- ऋ.५. १७.३; ४०.६ - निपात सचमुच 'एव' > वै।

व्यथ् - ऋ ५. ३७.४, ५४.७ - क्रि० डगमगाना द्र० व्यथते अ० ' Wapper' ।

व्यथि - ऋ.५.५६.२ - वि० पु० व्यथित करने वाला √ व्यथ् 'इ'।

व्या - ऋ.५.२३.३; ४३.८ - क्रि० आच्छादित करना द्र० व्यन्ति, व्यन्तु।

व्रज - ऋ.५.३३.१०, ४५.६ - स० पु० गोष्ठ, गायो का घिरा हुआ स्थान, 'वि' √ ऋज् 'सीधे जाना' यद्वा √ व्रज 'जाना' ' अ'।

व्रत - ऋ.५.४६.६; ६३.७; ६७.३; ६६.४ ; ७२.२ ७ स० न० नियम, कर्म √ वृ 'वरणे' ' क्त' अवे० 'उर्वत'।

व्रात - ऋ ५.५३.११ - स० पु० गण, समूह √ वज् 'सुदृढ होना' > व्रात।

शस- ऋ.५.३.४. ४१.६; ४६.३- स० पु० स्तुति √ शस् 'स्तुति करना'।

शस् - ऋ.५.४२.७, ५५ ८; ७७.१ - क्रि० स्तुति करना द्र० शस, शसंते, शंसन्ति, शस्यते।

शक् - ऋ ५.१७.५ - क्रि० समर्थ होना द्र० शग्धि।

शक्त - ऋ.५.६८.३ - स० वि० समर्थ √ शक् ' क्त'।

शक्ति - ऋ.५ ३१.६ - स० स्त्री० सामर्थ्य, वीर्य, पराक्रम, ताकत √ शक् ' क्तिन् '।

शक्र - ऋ ५ ३४.२, ४; ४१.१५ - वि० पु० दीप्त, शक्त, समर्थ, योग्य, निपुण √ शक् 'समर्थ होना' 'र' यद्वा √ शुच 'दीप्तो'।

शग्म - ऋ.५ ४३.११ - स० वि० सुखप्रद, सहायक, सामर्थ्य अर्पण करने वाली।

शतक्रतु - ऋ.५.३५.५; ३८.१, ५ - वि० पु० सैकड़ो सामर्थ्ययुक्त, शतयज्ञ, महाप्राज्ञ 'शत' क्रतु ' प्रज्ञा'।

शत- ऋ.५ २७ ५, ४८.३, ५.४.१५; ६१.१० - सख्या सौ अवे० 'सत' अ० ' Century' शतक ' Centenary' शताब्दी।

शत्रि - ऋ.५.३४.६ - स० पु० व्यक्ति विशेष, राजर्षि।

शत्रुयता - ऋ.५. ४.६, २८.३ - स० वि० शत्रु की भाँति आचरण करने वाला, शत्रुता रखने वाला।

शफ - ऋ ५.६.७ - स० न० खुर अवे० 'सफ'।

शम् - ऋ ५.७.६, ११.५, ४७.७; ५०.५; ५३.१४ ; ६६.३, ७४.६ - क्रि० वि० सुखपूर्वक, शान्तिपूर्वक।

शमि- ऋ.५.४२.१०; ७७.४ - वि० स्त्री० यज्ञकर्म, सुकृति।

शमितृ - ऋ.८५.१ - वि० पु० शामक, उपशमनकृत √ शम् 'शान्त होना ' 'तृच्'।

शम् तम् - ऋ.५ ४२.१, ४३.८, ७३.१०; ७६.३; ७८.४ - वि० पु० सुखदतम, शान्ततम 'शम्' ' तमप् '।

शम भविष्ठ - ऋ.५ ४२.७; ७६.२ - स० वि० सुखपूर्वक भावयितृतम, अत्यन्त सुख से रहने वाला 'शम्' √ भू > भव् 'इष्ठन्'।

शयान - ऋ.५.३२.२, ६, ८ - वि० पु० सोता हुआ, लेटा हुआ, पडा हुआ, धराशायी √ शीङ् 'शयने' ' शानच्' अ० ' Sleeping'।

शरद - ऋ.५.२.२ - स० स्त्री० वर्ष, जाड़े की ऋतु आ० फा० 'साल' अ० ' Cold, Chill, Calander' ।

शर्धस् - ऋ ५.२८. ३; ३३.५; ४२.१५; ४६.२; ५२.८; ५४.६; ८७.१ - स० न० दर्प, हिसा, दर्पमय बल, बल √ श्रृध् हिसा करना 'अस'।

शर्धन्त - ऋ ५.५६ १ - वि० पु० हिसा करता हुआ √ शृध् 'हिसायाम्' 'शतृ'।

शर्म - ऋ ५.१.१०, २ १२, ४.८; २७.२; ४४.७; ४६.५; ५५.६; ६२.६; ८३.५ - स० न० सुख, प्रसन्नता, आनन्द।

शर्मन् ऋ.५ ३८ ५ - स० न० आश्रय, शरण √ श्रि 'आश्रयणे' 'मन्' अ० ' Shelter' ।

शवस् - ऋ ५.७.३, ११.५, १५.५; २०.२; ३०.४, ३५.४; ४६.६; ५२.२; ५८ ७ - स० न० बल, शक्ति, वीर्य, शौर्य √ शु ' जाना' वीर होना ' अस् '।

शविष्ठ- ऋ ५.४४ १० - स० वि० सर्वाधिक बलशाली शव ' इष्ठन'।

शशमान- ऋ ५ २६ १२, ४२.१० - वि० पु० कहता हुआ, स्तुति करता हुआ, शस्त्रपाठ करता हुआ √ शस् 'स्तुतौ' ' शानच्'।

शश्वत् - ऋ. ५.१६ ४, ५२.२ - निपात प्रत्येक, अनेक, प्रभूत, सतत, सदैव।

शश्वन्त - ऋ ५ १४.३ - स० वि० बढता हुआ √ शू 'बढना' ' शतृ'।

शस्त ऋ ५ ४७.७ - स० वि० प्रशंसित, स्तुत √ शस् ' स्तुतौ' 'क्त'।

शा - ऋ.५ २.६; ६.५ - क्रि० तेज करना द्र० शिशीते अ० ' Sharpening' ।

शाकिन् ऋ ५.५२ १७ - स० वि० समर्थ, शक्तिशाली √ शक् 'समर्थ होना' 'इनि'।

शिक्वस् - ऋ.५.५२.१६; ५४.४ - वि० पु० समर्थ, शक्तिशाली।

शिप्रा- ऋ.५.३६.२, ५४.११ - स० स्त्री० गाल, ओष्ठ।

शिमीवान् - ऋ.५.५६.३ - स० वि० कर्मशील, समर्थवान अ० 'Sedulous'।

शिरस् - ऋ.५.३०.७, ८ - स० न० शीर्षन्, मूर्धन्, शिखर अवे० 'सिरह्'।

शिव - ऋ.५.४१.१७ - वि० पु० कल्याणकारी √ शिव 'कल्याणकर होना' अवे० 'स्पॅन्त'।

शक् ऋ.५.६१.२ - क्रि० समर्थ होना द्र० शेक।

शुक्र - ऋ.५.६.५; ४३.३; ४५.१० - वि० पु० कान्त, दीप्त, चमकदार अ० 'Shiny'।

शुच् - ऋ.५.१७.३ - क्रि० चमकना द्र० शोचन्ति अ० 'Shine'।

शुचि- ऋ ५.१.३; ४.३; ७.८; ११.१, ३ - वि० पु० कान्त, दीप्त, उज्जवल, √ शुच् 'दीप्तौ' 'इ'।

शुन्ध्यू - ऋ.५.५२.६ - स० वि० शोधक, निर्मल, √ शुन्ध् 'शोधने' अ० 'Serene'।

शुभ् - ऋ ५.१०.४; ४४.५ - क्रि० सुन्दर बनाना, दीप्त होना द्र० शुम्भन्ति, शोभसे।

शुभ्र - ऋ ५.५.६, ३४.८, ४१.१२ - स० वि० दीप्त, श्वेत, निर्मल, √ शुभ् 'दीप्तौ' 'र'।

शुष्म- ऋ ५.१०.४, १६.३, ३२.६ - स० पु० सामर्थ्य, शक्ति, बल।

शूर- ऋ ५.३३.७, ३५.२, ३६.२; ६३.५ - वि० पु० वीर, पराक्रमी, दृढ़, शक्तिमान √ शूर् 'विक्रान्तौ' 'Sinewy'।

शृङ्ग - ऋ ५.८.३; ५६.३ - स० न० सीग √ शृ 'हिंसायाम्' अ० 'Horn'।

शेव - ऋ ५.६४.२ - स० न० सुख, कल्याण √ शिव 'कल्याणकर होना'।

शेष- ऋ.५.१२.६; ७०.४ - स० वि० बचा हुआ √ शिष् 'बाकी छोड़ना' 'अच्'।

शोचि - ऋ.५.५.१ - स० न० ज्वाला, किरण, तेज, √ शुच् 'दीप्तौ' अ० 'Sheen'।

शोचिष्ठ - ऋ.५.२४.२ - स० वि० दीप्तितम √ शुच् 'दीप्तौ' > शोच् 'इष्ठन्'।

शोचिष्केश - ऋ.५.४१.१० - स० वि० चमकदार केशयुक्त, किरणरूपी केशो से युक्त।

श्याव - ऋ.५.६१.६ - वि० पु० कृष्णवर्ण, श्याम √ श्या 'काला होना' 'व'।

श्येन ऋ.५.४४.१०; ४५.६ - स० पु० बाजपक्षी अवे० 'सएन मॅरॅघ' > सीमुर्ग।

श्रथ् ऋ ५.५४.१०; ८५.४ - क्रि० ढीला करना द्र० श्रथयन्त।

श्रवस् - ऋ.५.७.६, १६.४; १८.५; ३५.८; ५२.१; ८६.६ - स० न० अन्न, कीर्ति।

श्रवस्यु ऋ ५ ६२, ५६ ८ - (क) वि० पु० यशस्कामिन्, कीर्ति की कामना करने वाला (ख) स० पु० ऋषि विशेष

√ श्रु श्रवणे' अस् > श्रवस् 'क्यच्' 'उ'।

श्रा - ऋ ५.६.६ - क्रि० उबलना, पकाना द्र० श्रीणीषे।

श्रि- ऋ ५ ८५.७ - क्रि० आश्रय लेना द्र० शिश्रृथः।

श्रित - ऋ ५.६३.४ - वि० पु० आश्रित, आधृत √ श्रि ' आश्रय लेना ' 'क्त'।

श्रुत - ऋ ५ ३६.३; ५२ १७; ७४.६; ७५.१, ७८.५.८५.५ - वि० पु० विख्यात, प्रसिद्ध √ श्रु श्रवणे ' क्त '।

श्रु - ऋ ५ २४.२; ३२.११; ४२.१; ४३.११; ४६.८; ७३.७ - क्रि० सुनना द्र० शृणोति, शृणोति, शृण्वन्ति, श्रोत, श्रुधि

श्रुष्टिमन्त - ऋ.५.५४.१४ - वि० पु० सुखप्रद, आज्ञाकारी √ श्रु ' श्रवणे' 'क्तिन् ' > श्रुष्टि ' मतुप् '।

श्रेणी - ऋ.५.५७.७ - स० स्त्री० पंक्ति √ श्रि 'गतौ '।

श्रेष्ठ - ऋ.५.६२.१, ८२.१ - वि० पुं० उत्तम, सर्वोत्तम, सुन्दरतम श्री 'इष्ठन् '।

श्रोतृ - ऋ.५.६१.१५; ८७.८, ६- स० पु० सुनने वाला, आह्लाहक √ श्रु 'श्रवणे' ' तृच् '।

श्लोक - ऋ ५.८२.६ - स० पु० यश, आह्वान, पद्य √ श्रु 'श्रवणे'।

श्वसत् - ऋ ५.२६ ४ - स० वि० श्वास लेता हुआ √ श्वस् 'श्वास लेना ' 'शतृ '।

सयती - ऋ ५ ३७.५ - स० वि० एकत्रित, निश्चित, 'सम्' √ यत् 'विस्तारे' 'ङीप् '।

सस्कृत - ऋ.५ ७६ २ - भू० क० कृ० (क) परिमार्जित, पवित्र 'सम्' √ कृ 'क्त' अ० ' Sacred': (ख) यज्ञ, धर्म

सक्थि - ऋ ५.६१ ३ - स० न० जाँघ, उरुप्रदेश।

सखिन् - ऋ ५.६.१, १२ ५; ३१.१०, ३२.१२; ५२.२ - स० पु० मित्र, दोस्त √ सच् ' समवाये' - सह √ ख्या

'कहना'.

सख्य- ऋ ५ १६.३, २६ ११; ४४.१४; ५०.१, ५५.६ - स० न० मित्रता, सखित्व, 'सखि' 'यत्'।

सच् - ऋ.५ १७.५. २८.२, ३१.२, ३४.५, ४४.३ - क्रि० मिलना, साथ देना द्र० सचते, सचथ्य, सचस्व, सचेत, सचेमहि,

सश्चिरे, सश्चे।

सचमान - ऋ ५ ४२ ८ - वि० पुं० साथ चलते हुये, साथ देते हुये √ सच् 'समवाये' 'शानच् '।

सचा - ऋ ५ १६.५६ १६.४, ४४.१२; ४८.४; ५६.८; ६५.३; ७४.२ - निपात साथ साथ √ सच्।

श्रवस्यु - ऋ ५ ६ २, ५६ ८ - (क) वि० पु० यशस्कामिन्; कीर्ति की कामना करने वाला (ख) स० पु० ऋषि विशेष

√ श्रु श्रवणे' अस् > श्रवस् 'क्यच् ' 'उ'।

श्रा - ऋ ५ ६ ६ - क्रि० उबलना, पकाना द्र० श्रीणीषे।

श्रि- ऋ ५ ८५ ७ - क्रि० आश्रय लेना द्र० शिश्रथः।

श्रित - ऋ ५ ६३ ४ - वि० पु० आश्रित, आधृत √ श्रि ' आश्रय लेना ' 'क्त'।

श्रुत - ऋ ५ ३६ ३, ५२ १७; ७४ ६; ७५ १; ७८ ५ ८५ ५ - वि० पु० विख्यात, प्रसिद्ध √ श्रु श्रवणे ' क्त'।

श्रु - ऋ ५ २४ २; ३२ ११, ४२ १; ४३ ११; ४६ ८; ७३ ७ - क्रि० सुनना द्र० शृणोति, शृणोति, शृण्वन्ति, श्रोत, श्रुधि।

श्रुष्टिमन्त - ऋ ५ ५४ १४ - वि० पु० सुखप्रद, आज्ञाकारी √ श्रु ' श्रवणे' 'क्तिन् ' > श्रुष्टि ' मतुप् '।

श्रेणी - ऋ ५ ५७ ७ - स० स्त्री० पंक्ति √ श्रि 'गतौ '।

श्रेष्ठ - ऋ ५ ६२ १; ८२ १ - वि० पु० उत्तम, सर्वोत्तम, सुन्दरतम श्री 'इष्ठन् '।

श्रोतृ - ऋ ५ ६१ १५, ८७ ८, ६- स० पु० सुनने वाला, आह्वाहक √ श्रु 'श्रवणे' ' तृच् '।

श्लोक - ऋ ५ ८२ ६ - स० पु० यश, आह्वान, पद्य √ श्रु 'श्रवणे'।

श्वसत् - ऋ ५ २६ ४ - स० वि० श्वास लेता हुआ √ श्वस् 'श्वास लेना ' 'शतृ '।

सयती - ऋ ५ ३७ ५ - स० वि० एकत्रित, निश्चित, 'सम्' √ यत् 'विस्तारे' 'ङीप् '।

सस्कृत - ऋ ५ ७६ २ - भू० क० कृ० (क) परिमार्जित, पवित्र 'सम्' √ कृ 'क्त' अ० ' Sacred'। (ख) यज्ञ, धर्म।

सक्थि - ऋ ५ ६१ ३ - स० न० जाँघ, उरुप्रदेश।

सखिन् - ऋ ५ ६ १; १२ ५; ३१ १०; ३२ १२; ५२ २ - स० पु० मित्र, दोस्त √ सच् ' समवाये' > सह √ ख्या

'कहना'।

सख्य- ऋ ५ १६ ३; २६ ११; ४४ १४; ५० १; ५५ ६ - स० न० मित्रता, सखित्व, 'सखि' 'यत्'।

सच् - ऋ ५ १७ ५, २८ २; ३१ २, ३४ ५; ४४ ३ - क्रि० मिलना, साथ देना द्र० सचते, सचथ्यै, सचस्व, सचेत, सचेमहि,

सश्चिरे, सश्चे।

सचमान - ऋ ५ ४२ ८ - वि० पु० साथ चलते हुये, साथ देते हुये √ सच् 'समवाये' 'शानच् '।

सचा - ऋ ५ १६ ५६ १६ ४, ४४ १२; ४८ ४; ५६ ८; ६५ ३; ७४ २ - निपात साथ साथ √ सच्।

सजोषस् - ऋ.५.८.४; २१.३; २३.३, ३१.५; ४१.१; ४३.६; ५४.६; ५७.१ - (क) वि० पु० प्रसन्न, समान प्रीति रखने वाला (ख) क्रि० वि० प्रसन्नतापूर्वक 'सह' √ जुष् 'प्रीतिसेवनयोः'।

सत् - ऋ.५.७.८, ४४.३ - स० वि० विद्यमान, अस्तित्वमय, √ अस् 'होना' 'शतृ' असत् > सत्।

सतश्वं- ऋ.५.५८.४ - स० वि० विद्यमानाश्व, प्रभूत अश्व-युक्त।

सत्पति - ऋ.५.२५.६, २७.१, ३२.११; ४४.१३; ८२.७ - वि० पु० अच्छा स्वामी, सज्जनो का स्वामी।

सत्य ऋ.५.४५.७; ६७.४; ७३.६; ८५.७ - (क) वि० पु० सच्चा 'सत्' 'यत्' अ० 'Soath'। (ख) क्रि० वि० सचमुच।

सत्यधर्मन् - ऋ.५.५१.२; ६३.१ - स० वि० सत्यधारक, सत्यधर्मा।

सत्यश्रुत - ऋ.५.५७.८; ५८.८ - स० वि० अमोघ श्रोता, सच्चा सुनने वाला।

सत्रा - ऋ.५.६०.४; ६५.५ - निपात एकत्र, एक जगह, निश्चयपूर्वक।

सत्त्वं - ऋ.५.३३.५, ३४.८ - स० न० धन, प्राणी।

सद् ऋ.५.१.५, ५.८, ११.२, २६.६; ६७.२ - क्रि० बैठना द्र० सत्सि सदथ, सेदिरे अ० 'Sit'।

सदन - ऋ.५.४३.१२, ४७.१, ७ - स० न० घर, बैठने का स्थान √ सद् 'ल्युट्'।

सदम् ऋ.५.७७.८, ८५.७ - निपात सदा।

सदस् - ऋ.५.४१.१, ८७.४ - स० न० बैठने का स्थान, घर √ सद् 'अस्' अ० 'Seat'।

सद्यस् - ऋ.५.४७.४, ५४.१०, ८७.७ - क्रि० वि० तुरन्त, शीघ्र, उसी समय।

सद्यऊति - ऋ.५.५४.१२ - स० वि० शीघ्र रक्षक, शीघ्र कृपा दिखाने वाला।

सधस्थं - ऋ.५.२६.६, ३१.६, ४५.८; ५२.७; ६४.५; ८७.३ - स० न० सह निवास स्थान, 'सह' √ स्था।

सनितृ ऋ.५.४२.७; ५०.४ - वि० पु० जयशील, प्रापक' √ सन् 'सम्भक्तौ' 'तृच्'।

सन् - ऋ.५.३१.११, ६२.७ - क्रि० प्राप्त करना द्र० सनेम, सनिष्यति।

सनुतृ - ऋ.५.४५.५ - (क) अव्यय अन्तर्हित प्रदेश मे (ख) उपसर्ग से[34] दूर, पञ्चमी के साथ"।

सप् - ऋ.५.३.४, १२.२६ ६८.४ - क्रि० सेवा करना द्र० सपन्त, सपामि।

सपन्त ऋ.५.६८.४ - वि० पु० सेवा करता हुआ, पूजा करता हुआ √ सप् 'शतृ'।

सपर्यन् - ऋ.५.२१.३, ४०.८ - वि० पु० सेवा करता हुआ, सम्मान करता हुआ √ सपर् 'शतृ'।

---

[34] वदिक व्याकरण - मैकडानल पृ० स० - ६८७।

सप्त - ऋ.५.१ ५; ४३.१, ५२.१७ - सख्य सात " ग्रीक[३५] हप्त (hepta) लैटिन सप्तम् (Septem) " अ० ' Seven' ।

सप्रथस् - ऋ.५.१३.४ - स० वि० सर्वव्यापक, विस्तीर्ण सर्वत: > स √ प्रथ् 'विस्तारे' 'अस्' ।

सबन्धु - ऋ ५ ५६ ५ - समान बन्धु वाले।

सम - ऋ ५ ६१.८ - स० वि० समान अ० ' Same' ।

समत् - ऋ.५.३३.४ - स० स्त्री० सङ्ग्राम, युद्ध।

समनस् - ऋ.५.३.२ - वि० पु० एकमत, समान विचार वाले।

समर्य - ऋ ५.३.६, ३३.१ - स० न० युद्ध, सङ्ग्राम।

समिद्ध - ऋ.५ १ २, ३.१, २१.४, २८.१; ५८.३ - वि० पु० प्रज्ज्वलित, प्रदीप्त सम्' √ इन्ध् 'दीप्तौ' 'क्त'।

समिध् - ऋ ५ १ १, ४.४ - स० स्त्री० समिधा, इन्धन 'सम्' √ इन्ध्।

समुद्र- ऋ.५ ४४.६, ४७.३, ५५ ५; ७८.८, ८५.६ - स० पु० सागर, सिन्धु, 'सम्' √ उन्द 'क्लेदने ' 'रक् ' अ० ' Sea ' ।

सम्यक् - ऋ ५.६.५; ६६.२, ७०.२ - अव्यय भली भाँति, साथ साथ।

सम्यञ्च - ऋ ५.७.१ - स० वि० एक साथ जाने वाला, 'सम्' √ अञ्च ' गतौ '।

सम्राज - ऋ.५.६३.५, ६८.२ - (क) स पु० सबका स्वामी, राजा, 'सम् ' √ राज् ' शासन करना '। (ख) वि० पु० भली भाँति आसीन सम् √ ऋज् ' जाना ' दिशानिर्देश करना '।

सरथ ऋ ५.११.२, २६.६; ४३.८ - स० वि० समान रथ वाला, एक रथ मे आसीन।

सरमा - ऋ.५.५३.६ - (क) स० स्त्री० देवशुनी (ख) वि० स्त्री० सरणशीला।

सरस्वती - ऋ.५.५.८, ४२.१२; ४३.११; ४६.२ - स० स्त्री० नदीविशेष, वाग्देवी।

सरस् ऋ ५ २७ ७, ८ - स० न० तालाब, सोमरस।

सर्वगण - ऋ ५ ५१ १२ - स० वि० समस्त देवगण युक्त, सभी गण, सभी अनुयायियो से युक्त।

सर्वत - ऋ ५ ७८.७ - क्रि० वि० सभी ओर से 'सर्व' ' तसिल् '।

सवन - ऋ ५.४० ४, ४४.६ - स० न० सोमाभिषव, सोमाभिषव कृत्यात्मक कर्म √ सु 'अभिषवे' ' ल्युट् '।

सव ऋ ५ २८ ६ - स० पु० अभिषावक √ सु ' अभिषवे ' 'अ'।

---

[३५] The Sanskrit Language - पृ० स० - १२५।

सवितृ - ऋ.५ ४२.३, ४६.३, ४६.१; ८१.२; ८३.३, ८ - स० पु० प्रेरक देवविशेष, प्रातःकालीन सूर्य का पूर्व रूप √ सु प्रेरणे > सवि 'तृच्'।

सव्य - ऋ ५ ३६ ४ - वि० पु० वाम, बाँया।

सस्नि - ऋ ५ ३५.१; ५३.२ - वि० पु० (क) शुद्ध √ स्ना 'स्नान करना' 'किन्'। (ख) जयकृत, जयिन् √ सन् 'प्रापणे' 'किन्'।

सहस् - ऋ ५.११.६, २३.४; ३१.३; ३२.७; ४४.६; ५७.६; ६२.१; ७५.६; ७८.८ - स० न० बल, सामर्थ्य √ सह् 'अभिभव करना' 'अस्'।

सहसान - ऋ.५.२५.६ - वि० पु० अभीभूत करता हुआ √ सह् 'शानच्'।

सहस्य- ऋ ५ २२.४; २६.६ - स० वि० बलवान √ सह् 'स्य' अ० 'Samson'।

सहस्रशृङ्ग - ऋ ५.१.८ - वि० पु० हजार सीगो वाला 'सहस्र' अवे० 'हजडर्' 'शृङ्ग'।

सहस्वत् - ऋ.५ ७ १ - वि० पु० सामर्थ्ययुक्त, शक्तिशाली, बलवान, अभिभावक 'सह' 'मतुप्'।

साति - ऋ ५.५.४, ६.७, ३६.३ - स० स्त्री० लाभ, दान, उपहार √ सन् 'प्राप्त करना' 'क्तिन्'।

साधन - ऋ ५ २०.२ - स० वि० साधक, (कार्य) निष्पन्न कराने वाला √ साध् 'पूरा करना' 'ल्युट्'।

साध् - ऋ ५ ४५ ३ - क्रि० सफल होना द्र० साधत।

साधिष्ठ - ऋ.५.३५.१ - स० वि० साधुतम, सर्वोत्तम, सफलतम √ साध् > साध 'इष्ठन्' यद्वा 'साधु 'इष्ठन्'।

साधुया - ऋ ५.११.४ - क्रि० वि० "सीधे[३६] उत्तम, रीति से"।

सानु - ऋ.५.५६.७; ६०.३ - स० न० शिखर, चोटी।

सामन् ऋ.५.४४.१४ - स० न० गान, वेद की एक शाखा।

सिच् - ऋ.५.५१.४ - क्रि० सीचना द्र० सिच्यते, सिञ्च।

सिध्र - ऋ.५ १३.२, ४४.६ - वि० पु० सिद्धिप्रद, शीघ्रता, से करने वाला √ सिध् 'सफल होना' 'र'।

सिन्धु ऋ ५ ४.६, ३७.२, ५३.६, ६२.४; ६६.२ - स० स्त्री० नदी, सरित् √ स्यन्द 'प्रस्रवणे' 'उ'।

सीम ऋ.५.३१.६, ४७.२.७५.७ - निपात निश्चयपूर्वक।

सुकीर्ति ऋ ५.१०.४ - (क) स० स्त्री० अच्छी प्रसिद्धि (ख) वि० पु० सुन्दर कीर्ति वाला, यशस्विन्।

---

[३६] वैदिक व्याकरण - मैकडानल पृ० स० - ६८८।

सुकृत - ऋ.५.४ ८, ११ २६ १५, ६२.६ - स० वि० सुकर्मा, 'सु' √ कृ ' क्त '।

सुक्रतु - ऋ ५.११.२, २०.४; २५.६; ४४.२, ६५.१ - वि० पु० अच्छी प्रज्ञा वाला, सुप्राज्ञ, सुकर्मा √ सु कृ 'तु' यद्वा 'सु' √ कित् 'सज्ञाने' 'तु'।

सुक्षत्र ऋ ५ ३२.५; ३८.१ - वि० पु० शोभन धन वाला, शोभन बलयुक्त।

सुक्षिति - ऋ ५ ६.८ - स० स्त्री० शोभन निवासस्थान 'सु' √ क्षि 'निवासे' ' क्तिन् '।

सुगभस्ति - ऋ.५.४३.४ - वि० पु० शोभन हाथो वाला।

सुग - ऋ.५.५४.६ ७ स० वि० सुष्ठु गमनीय, सुगम 'सु' √ गम् 'जाना '।

सुगोप - ऋ.५ ३८.५; ४४.२ - वि० पु० सुन्दर रक्षक, सुष्ठु पालक 'सु' √ गुप् 'रक्षणे'।

सुश्चन्द्र - ऋ.५.६ ५, ६ - वि० पु० सुष्ठु आहल्लादक 'सु' √ श्चद् ' आह्ल्लादने ' ' रक् '।

सुजात - ऋ.५.२१ ३२, ५३.१२, ५६.६ - सुजन्मा, सूत्पन्न, अच्छी तरह उद्भूत 'सु' √ जन् ' प्रादुर्भावे ' 'क्त '।

सुत ऋ.५ २६.७, ४०.२, ५१ १; ६४.७; ७१.३ - स० वि० अभिसुत, निचोडा गया √ सु 'अभिषवे' 'क्त'।

सुदक्ष ऋ ५ ११.१ - वि० पु० सुष्ठु निपुण 'सु' √ दक्ष् 'समर्थ होना' ' अ'।

सुदानु - ऋ.५.४१.१८ - वि० पु० सुदातृ; सुप्राज्ञ 'सु' √ दा 'दाने '।

सुदीति ऋ ५.८.४; २५.२; ४८.६ - स० वि० शोभन दीप्ति, सुदीप्ति 'सु' √ दी 'चमकना' 'क्तिन् '।

सुदुघा - ऋ ५.६०.५ - वि० स्त्री० सुष्ठु दोग्ध्री 'सु' √ दुह् ' दोहने '।

सुदृश - ऋ.५.३.४ - स० वि० सुदर्शन, शोभन दर्शनीय 'सु' √ दृश् 'देखना'।

सुदेव ऋ ५ ४ ६ - वि० पु० कल्याणकारी देव, मरुतो का विशेषण।

सुधन्वन् - ऋ.५.४२ ११, ५७ २ - वि० पु० उत्तम धनुष्य से युक्त 'सु' धनु 'अ'।

सुधित - ऋ ५ ३ २ - वि० पु० सुष्ठु स्थापित 'सु' √ धा 'धारणे' > धि 'क्त'।

सुनीथ - ऋ ५.६७.४ - (क) स० पु० व्यक्तिविशेष (ख) वि० पु० सुन्दर नेतृत्व वाला 'सु' √ नी 'ले जाना'।

सु ऋ ५ २६.४; ३०.६, ६०.७ - क्रि० निचोडना द्र० सुनोति, सुन्वतः सुन्वते, सुन्वन्ति अ० ' Secern'।

सुपर्ण - ऋ ५ ४७.३ - वि० पु० सुन्दर पखो वाला ' सु ' √ पत् 'उड़ना पर्ण अ० ' Feather'।

सुपेशस् - ऋ ५ ४७.३ - स० वि० शोभन रूपवाला, सुदर्शन 'सु' √ पिश् 'सजना'।

सुप्रायण - ऋ ५.५ ५ - वि० पु० सुष्ठु प्राप्तव्य, सुगम्य सु 'प्र' √ इण् 'गतौ'।

सुभग - ऋ.५.८.३, ३७.४ - (क) वि० पु० सुन्दर धन वाला (ख) स० न० सौभाग्य, शोभन धन।

सुभु - ऋ.५.४१.१३, ५५.३; ५६.३; ८७.३ - वि० पु० अच्छी तरह उत्पन्न, स्वाभाविक 'सु' √ भू 'सत्ताया' 'क्विप् '।

सुमति - ऋ ५.१.१०; २७.३; ३३.१; ४१.१८; ६५.४ ; ७०.१ - (क) स० स्त्री० सुन्दर बुद्धि, कृपा, सुस्तुति (ख) वि० पु० सुन्दर बुद्धि वाला 'सु' √ मन् 'विचार करना' 'क्तिन्' अ० ' Sagacious'।

सुमनस् - ऋ.५.१.२ - वि० पु० सुन्दर मन वाला, सुन्दर विचार वाला।

सुम्न - ऋ.५.३.१०, २८.२; ५३.६; ६७.२; ७३.६ - स० न० सुख, स्तोत्र, प्रसन्नता, दया।

सुयम - ऋ.५.२.८.३; ५५.१ - वि० पु० सुनियामक, सुष्ठु नियमन योग्य, सुशासक 'सु' √ यम् 'शासन करना'।

सुरण - ऋ.५.६८.८ (क) स० न० शोभन जल (ख) स० वि० अत्यन्त आनन्ददायक, 'सु' √ रन् 'आनन्द मनाना '।

सुरभि - ऋ ५.१.६ - स० वि० सुगन्धयुक्त अ० ' Scented'।

सुरुक् - ऋ.५ ३३.१० - (क) स० स्त्री० शोभन कान्ति (ख) वि० पु० शोभन कान्ति वाला।

सुवीर - ऋ ५ ५६ १; ४, ८०.३ - वि० पु० सुन्दर पुत्रयुक्त, सुन्दर वीरो से युक्त, सुष्ठुवीर 'सु' √ वी 'उपभोग करना' 'र'।

सुवीर्य - ऋ.५.६ ७१०; १३.५; १६.४; २६.५; २७.६ - स० न० उत्तम सामर्थ्य, उत्तम पराक्रम।

सुवृक्ति ऋ.५.२५.३, ४१.२.१० - स० स्त्री० सुन्दर स्तोत्र सु √ वच् 'बोलना' 'क्तिन् ' यद्वा 'सु' उक्ति > सुवृक्ति।

सुवृध - ऋ.५.३२.८, ५६.५ - वि० पु० प्रवृद्ध, अनुमोदक, पक्षपाती।

सुशरण - ऋ ५ ४२.१३ - वि० पु० शोभन रक्षक अ० ' Saviour'।

सुशस्ति - ऋ.५ ४६ ६, ५३.११ - स० वि० शोभन स्तुति 'सु' √ शस् 'स्तुति करना' 'क्तिन् '।

सुशिप्र ऋ ५.२२.४, ३६.५ - वि० पु० सुन्दर कपोलयुक्त।

सुशेव - ऋ ५.१५.१, ४१.५; ४२.२ - वि० पु० सुन्दर सुखयुक्त, सुष्ठु कल्याणकारी।

सुसंदृश् - ऋ.५.५७.४ - स० वि० समान रूपवाला, सुदर्शन।

सुसमिद्ध - ऋ.५.५०.१ - स० वि० भलीभाँति प्रज्ज्वलित, 'सु' 'सम्' √ इन्ध् 'दीप्तौ' 'क्त'।

सुस्तुत - ऋ १३.५, २७.२ - स० वि० अच्छी तरह स्तुत 'सु' √ स्तु 'स्तवने' ' क्त'।

सुस्वरु - ऋ ५ ४४ ५ - स० वि० शोभन स्तुति करने वाला, शोभन गमनशील 'सु' √ स्वर् ' शब्दे'।

सुहव - ऋ.५ ४२.१६ - वि० पु० सुष्ठु आह्वनीय 'सु' √ हु 'आह्वाहने' 'अच्'।

सू - ऋ.५.१.८, ८२.३; ८२.४ - क्रि० उत्पन्न करना, प्रेरित करना द्र० सुवाति, सुव।

सूक्तवाक् - ऋ.५ ८६.५ - वि० पु० मन्त्रो को बोलने वाला, सुष्ठु कथन को बोलने वाला।

सूनु - ऋ ५.८२ २. १५ - स० पु० पुत्र √ सू 'उत्पन्न करना' अ० 'Son'।

सूर - ऋ.५.३१.११, ७६.६ - स० पु० सूर्य √ सू 'प्रेरित करना'।

सूरि - ऋ.५.६.२; १०.३, ६, १६.५, १७.५; ३१.११, ४१.१५, ४२.४, ५२.१५, ७६.७ - स० पु० दानदाता, स्तोता

√ स्वृ 'शब्दे' > सूरि।

सूर्य - ऋ.५.४.४; २७.६; २६.५; ३७.१; ४०.८; ४४.७; ४५.२; ५४.३; ६३ ४; ८५.१ - स० पु० देव- विशेष, प्रकाशक

√ सू 'प्रेरणे' यद्वा √ स्वृ 'कान्तौ' " लैटिन[३७] सोल् (Sol) , ग्रीक एएलिआस् (Eelios) हेलिआस्

(Helios) " अ० 'Sun, Shine, Solar'।

सूर्या - ऋ.५.७३ ५ - स० स्त्री० सूर्यपुत्री, अश्विनौ की पत्नी।

सृ - ऋ.५ १ १, ५४ १० - क्रि० बहना द्र० सिस्रिते, सिस्रत·।

सृज् - ऋ ५.२ ५, ३०.१३; ५३.६; ६२.३ - क्रि० रचना करना, उत्पन्न करना, बाहर निकालना द्र० सृज, सृजतम्,

सृजन्ति, सृजन्तु।

सेना- ऋ ५ ३० ६ - स० स्त्री० सैन्य अवे० 'हएना', प्रा० फा 'हइना'।

सोम- ऋ ५ ३६.२, ४०.२; ४३.५, ४४.१४; ४६.४; ५१.४, ६०.८; ६६.३ - स० पु० देवविशेष, लता, क्षुप विशेष का

अधिदेव अवे० 'हओम'।

सोमपीति - ऋ.५.५१.१३, ७२.१- स० स्त्री० सोम का पान 'सोम' √ पिब् 'पीना' 'क्तिन्'।

सोम्या - ऋ ५.२६.८ - स० वि० सोमयुक्त 'सोम' 'यत्' 'टाप्'।

सौभग ऋ ५ २८.३, ५३.१३; ८२.४ - सं० न० सुन्दर भाग्य, समृद्धि सु √ भज् 'बाँटना' > सुभग 'अण्'।

सौमनस - ऋ ५ ८२.११ - स० न० आनन्द, सुन्दर चित्त, सन्तोष।

स्कन्द् ऋ ५ ५२ ३ - क्रि० कूदना द्र० स्कन्दन्ति अ० 'Saltation'।

स्कभ ऋ ५ २६.८ - क्रि० थामना द्र० स्कभायत्।

स्तन ऋ ५ ८२ १८, ८३.२, ७ - क्रि० गरजना द्र० स्तनयं, स्तनयन्, स्तनयन्तम्।

---

[३७] The Sanskrit Language - पृ० स० - ६८, २२३।

स्तनयन्तु - ऋ ५ ८३ ६ - गरजने वाला।

स्तीर्ण - ऋ.५ १८ ४ - स० वि० बिखरा हुआ √ स्तृ 'बिखेरना' अ० 'Scatter'।

स्तु ऋ.५.३३.६, ४२ ३७, ५८.१; ६३.१ - क्रि० स्तुति करना द्र० स्तवेत, स्तुवतः, स्तुषे, स्तुहि, स्तोषत्।

स्तेन ऋ ५ ३ ११ - स० पु० चोर, लुटेरा √ स्तेन् 'लूटना' 'चुराना'।

स्तोतृ - ऋ ५.६.१, १८ २, ६४.४, ७४.६, ७५.१; ७६.१० - वि० पु० स्तुतिकृत, स्तावक, स्तोता, देवप्रशसाकृत

√ स्तु 'स्तुतौ' 'तृच्'।

स्तोत्र - ऋ.५.६४.४ - स० न० स्तुति, स्तुतिगान, मन्त्र √ स्तु 'ष्ट्रन्'[३८]।

स्तोम - ऋ ५ ४२.१५; ५२.४; ६०.१; ६१.१७; ८१.५ - स० न० स्तोत्र, स्तुति √ स्तु 'मन्'।

स्त्री ऋ ५.३०.६, ६१.६ - स० स्त्री० गृहस्वामिनी, प्रसवकारिणी, महिला √ सु 'उत्पन्न करना'।

स्था ऋ ५.५६.३, ७३.१ - क्रि० खडा होना, स्थित होना द्र० स्थ, स्थन।

स्थातृ ऋ ५.८७.६ - वि० पु० स्थित रहने वाला, खडा रहने वाला √ स्था 'तृच्'।

स्थान - ऋ ५.७६.४ - स० न० प्रदेश √ स्था 'ल्युट्'।

स्थूणा - ५ ६२.७ - स० स्त्री० स्तम्भ, खमा।

स्ना ऋ ५ ८० ५ - क्रि० स्नान करना द्र० स्नाती।

स्नु ऋ.५.६०.७; ८७.४ - स० न० शिखर, चोटी, सानु।

स्पट् - ऋ.५ ५६.१ - स० पु० होता, स्पष्ट वक्ता।

स्पृ - ऋ ५ ४४.१० - क्रि० जीतना द्र० सपृणवाम।

स्पृध् - ऋ ५.५६ ४ - क्रि० स्पर्धा करना द्र० स्पृधि।

स्म ऋ ५.७ ४, ६.३, ३३.४; ४५.४; ५२ ८, ५३.५; ५४.६; ५६.७ - सार्वनामिक अश "एकाच्"[३९] बल धायक निपात

स्य ऋ ५ ३०.१, ५६ ७, ८५ ८ - सर्वनाम यह।

स्रुच ऋ ५ १४ ३ - स० स्त्री० कलछुल, बडा चम्मच, स्रुवा अ० 'Scoop'।

स्रिध ऋ ५ ५४ ७ - क्रि० क्षय होना, नष्ट होना, प्रमाद करना द्र० स्रेधति।

---

[३८] संस्कृत हिन्दी कोश - पृ० स० - ११३७।

[३९] वैदिक व्याकरण मेकडानल पृ० स० - ६६१।

स्वर् ऋ ५ ४४ २, ४५ १, ५४.१५; ६६.२, ८०.१ - स० न० प्रकाशपूर्ण लोक, स्वर्लोक, सूर्य का प्रकाश " अवे"[40] ह्वर,

आ० फा० ' खुर' तु० खुर्शीद ' ह्वर क्षएत '।

स्वपस - ऋ.५.४४.१३ - वि० पु० सुन्दर कर्म करने वाला, सुन्दर जल।

स्वदृश ऋ.५.२६.२; ६३.२ - वि० पु० तेजस्वी, सूर्य को देखने वाला।

स्वर्विद् - ऋ.५.४४.१ - वि० पु० सूर्य को जानने वाला, प्रकाशविद्।

स्वधा ऋ ५.३२ ४, ३४.१; ६०.४ - निपात धारक शक्ति, स्वय, स्वतन्त्रेच्छा, आत्मशक्ति, स्वादुता, पितरो को प्रदत्तान्न,

आहुति।

स्वन - ऋ.५. ६७.३; ८७.५ - स० वि० ध्वनियुक्त, शब्दयुक्त √ स्वन् 'शब्दे'।

स्वर् - ऋ.५.४४.२, १२ - क्रि० शब्द करना द्र० स्वरन्ति।

स्वस्ति ऋ ५.४.११; १६.५; १७.५; २८.२; ४२.१५; ५१.११; ५३.१४; ६४.६ - स० स्त्री० कल्याण, शोभन रीति से सु

√ अस् 'होना' ' क्तिन् '।

स्वादनम् - ऋ.५.७.६ - स० न० पीना, उपभोग करना, मधुर बनाना √ स्वद् 'मधुर बनाना' 'ल्युट् '।

स्वान - ऋ ५.२ १०, १०.५, २५.८ - स० पु० ध्वनि, कोलाहल, शब्द √ स्वन् 'शब्दे' ' घञ् '।

स्वाहा - ऋ ५ ५.११ - अव्यय हविर्पद वाची पद 'सु' ' आह '।

स्वेद ऋ ५ १.८; ३३.४, ४८ ३, ६४.५ - (क) स० वि० बहने वाला √ सृ 'बहना' (ख) स० न० पसीना √ स्विद् '

पसीना आना ' अ० 'Sweat'।

उ ऋ ५ ६.४, २६.६, ५.४१.७, ५६.४; ६४.४, ७४.३, १० - शोभार्थक निपात, सचमुच।

हन् ऋ.५ २.१०, ३१.४, ३४.२; ३६.२; ३७.४, ८३.२ - क्रि० मारना द्र० हसि, हन्ति, हन्तवे, हन्यते।

हन्त ऋ ५.५७ ८, ५८.८ - विस्मय सूचक निपात, सम्बोधार्थक निपात अ० ' Ha' ।

हरि - ऋ.५ २७.२; ३०.१; ३६.५; ४०.४, ४३.५; ५६.६ (क) स० पु० अश्व अ० ' Horse' । (ख) वि० पु० स्वर्णिम,

पीत, कान्त, हरित।

हर्म्य - ऋ.५.३२.५ - स० न० घर अ० ' Home' ।

हर् ऋ ५ ५७.१ - क्रि० प्रसन्न होना द्र० हर्यते अ० ' Hilarity ' ।

---

[40] ऋग्वेद द्वितीय मण्डल (प्रकाश्यमाण) - डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी।

हवे - ऋ ५ १४ ५, २४ २, ४३.११; ७४.१०, ७५.१; ७८ ५; ८७.८, ६ - स० पु० आह्वान √ हु 'आहवान करना' 'अ'।

हवन - ऋ.५ .५६ २ - स० न० निमन्त्रण यज्ञक्रिया √ हु 'ल्युट् '।

हविष् ऋ.५.३६; ५.११; ६.५; २८.१; ३७.२; ४४.३; ६०.६ - स० न० हवन पदार्थ, हव्य √ हु ' अग्निप्रक्षेपे ' ' इष् '

हविष्मन्त ऋ ५ ६ १ - वि० पु० हविष् का स्वामी, यजमान, हविर्युक्त 'हविष् ' 'मतुप् '।

हव्य ऋ ५ ४ ८, १६.२; १७.४, २६.३, ३३.५; ६६.६ - स० न० हविष्य, हवनपदार्थ अवे० ' जओय '।

हव्यवाट् - ऋ ५.६ ५, २८.५ - वि० पुं० हविष्य का वहन करने वाला, हविष्य पहुँचाने वाला।

हव्यवाहन - ऋ.५.८.६; २५.४, ५३.१६; ५६.१ - वि० पु० हविष्यान्न को पहुँचाने वाला, अग्नि का विशेषण।

ह्वा - ऋ.५.५३.१६; ५६.१ - क्रि० बुलाना, आह्वान करना द्र० ह्वय, ह्वये।

हस्त ऋ.५.६४ ७ - स० पु० हाथ अवे० 'जस्त', प्रा० फा० 'दस्त, दस्तकारी' अ० ' Hand' ।

हि - ऋ ५ १ ५; १६.१; १७.२; २८.५; ३४.८; ६७.३; ७७.१; ८७.६ - निपात क्योंकि, सचमुच।

हित ऋ ५ १.५, ११ ६, ४४.३; ५७.६ - वि० पु० स्थापित, निहित, रखा गया √ धा ' धारणे' ' क्त '।

हि ऋ ५.३६ २, ७७.२ - क्रि० प्रेरित करना, जाना द्र० हिनोत, हिन्वन्।

हिम ऋ ५ ५४.१५ - स० पु० हेमन्त ऋतु, सवत्सर।

हिरण्य- ऋ.५.६०.४, ६७ २, ८७.५ - स० न० स्वर्ण, सोना √ ह्वृ कान्तौ > हिर अवे० 'जरन्य'।

हु ऋ ५ ६ ५, ३५.३; ४१ ३, ४३.८, ४६.३; ५६.६; ७३.२ - क्रि० बुलाना द्र० हुवध्यै, हुवामहे, हुवे, हूमहे, हूयते।

हृद् ऋ ५ ४ १०, ११, ११ ५, ३१ ६, ५६ २, ८५.२ - स० न० हृदय अ० ' Heart' अवे० ' जॅरॅत् '।

होतृ ऋ ५.१ २, ३ ५, ४ ३, ५ ७, १०.७, १३.३; १६ २, २२ १, २३.३, २५ २; २६ ४, ४१.५, ४४.३, ४६.४- स० पु० आह्वानकृत्, पुरोहित √ हु ' तृच् '।

होत्रवाह् ऋ ५.२६ ७ - वि० पु० हव्य- वाहक √ हु > होत्र √ वह् 'वहन करना'।

होत्र ऋ.५.८१.१ - स० न० हविष्, हव्य, हविष्य √ हु ' ष्ट्रन' अवे० 'जओथ्र'।

ह्वार ऋ ५.८ ४ स० पु० कुटिलगति, सर्प √ ह्वृ 'कौटिल्ये' 'णिच् ' ' अच् '।

ग्रन्थ - सूची

अनुवाकानुक्रमणी - शौनककृता, सम्पादक डॉ० उमेश चन्द्र शर्मा, विवेक पब्लिकेशन्स, अलीगढ, १९७७।

अवेस्ता हओमयस्त - डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी, वेदपीठ प्रकाशन, प्रयाग, १९९१।

आश्वलायन श्रौतसूत्रम् - प्रधान सम्पादक डॉत्र मण्डन मिश्र, सम्पादकौ पट्टाभिरामशास्त्री, प० अ० म० रामनाथ दीक्षित , श्री लाल बहादुरशास्त्रिकेन्द्रीयसस्कृतविद्यापीठम्, नूतन दिल्ली १९८४ - १९८५।

आश्वलायन ग्रह्यसूत्रम् - नारायण टीका सहित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १८९४।

ऋग्वेद - विश्वबन्धुना सपादित· विश्वेश्वरानन्द - वैदिकशोध सस्थानम्, होशिआरपुर, १९६४।

ऋग्वेद सहित - श्रीमत्सायणाचार्य विरचित - माधवीयवेदार्थप्रकाशसहिता- सम्पादक एफ० मैक्समूलर, चौखम्बा सस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी १९७७।

वैदिक साहित्य का इतिहास - डॉ० पारसनाथ द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९८७।

ऋग्वेद का सुबोध भाष्य - भाष्यकार पद्मभूषण श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी (जि० बलसाड) १९८५।

ऋग्वेद भाष्यभूमिका - श्री सायणाचार्यविरचिता व्याख्याकार डॉ० वीरेन्द्र कुमार वर्मा चौखम्भा ओरन्टलिया, वाराणसी, १९८७।

ऐतरेय ब्राह्मणम् (दो भाग) - सम्पादक अनुवादकः डॉ० सुधाकर मालवीय. , तारा बुक एजेन्सी, वाराण्सी १९९६।

गौतम धर्मसूत्रम् - हरदत्त टीका सहित, आनन्दा श्रम सस्कृत सीरिज, बम्बई, १९४६।

ध्वनिपरिवर्तन - डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी, वेदपीठ प्रकाशन, प्रयाग १९९२।

पाणिनीय शिक्षा हिन्दी व्याख्याकार सम्पादकश्च गोस्वामी प्रहलादगिरि· चौखम्बा सस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९९७'

प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास - डॉ० जयशाकर मिश्र, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, चतुर्थ सस्करण, जून १९९६.

प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास (भाग १ खण्ड १) - एम० विन्टरनित्जकृत, विशिष्ट अनुवाद समिति द्वारा अनूदित, मोतीलाला बनारसीदास, दिल्ली - १९७५।

भाषाविज्ञान एव भाषा शास्त्र - डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी - १९९१।

भाषावैज्ञानिक निबन्ध सङ्ग्रह - डॉ० हरिङ्कर त्रिपाठी, वेदपीठ प्रकाशन, प्रयाग, १९९३।

मनुस्मृति अनुवादक प० ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी, रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन) हरिद्वार, १६८८।

महाभारत - नीलकंठ की टीका सहित, गीताप्रेस गोरखपुर, १६२६ - ३०।

लघुसिद्धान्तकौमुदी- व्याख्याकार, सम्पादक श्री धरानन्द शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १६८७।

वाजसनेयि संहिता- बेबर द्वारा सम्पादित, बर्लिन, पुन वासुदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १६२६।

वेदभाष्यभूमिका सग्रह (सायणविरचिताना स्ववेदभाष्यभूमिकाना सग्रह.) - आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा सस्कृत सस्थान, वाराणसी, १६८५।

वैदिक आख्यान डॉ० गङ्गासागर राय चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, १६६४।

वैदिक कोश सूर्यकान्त, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, १६६३।

वैदिक कोश हसराज एव भगवद्दत्त, विश्वभारती अनुसधान परिषद्, ज्ञानपुर (वाराणसी), १६६२।

वैदिक छन्दोर्मीमासा, युधिष्ठिर मीमासक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ (सोनीपत, हरियाणा), १६७६।

वैदिक धर्म एव दर्शन - ए० वी० कीथ, अनुवादक डॉ० सूर्यकान्त, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १६६५।

वैदिक ध्वनि विज्ञान - डॉ० विजयशंकर पाण्डेय, चौखम्बा सस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराण्सी, १६८७।

वैदिकी प्रक्रिया - विद्यासागर डॉ० दामोदर महतो, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १६६३।

वैदिक माइथौलोजी - ए० ए० मैकडानलकृत अनुवादक रामकुमार राय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १६८४।

वैदिक व्याकरण - मूल लेखक आर्थर एन्थोनी मैकडॉनल, अनुवादक - डॉ० सत्यव्रत शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १६६८।

वैदिक व्याकरण डॉ० उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, १६६३।

वैदिक साहित्य आर सस्कृति - वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा सस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, १६६८।

वैदिक साहित्य आर सस्कृति - आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा सस्थान, वाराणसी १६८६।

वैदिक साहित्य की रूपरेखा- डॉ० रसिक बिहारी जोशी एव डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, साहित्य निकेतन, कानपुर।

वैदिक साहित्य का समालोचनात्मक इतिहास - डॉ० रामविलास चौधरी, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, १६६६।

शाङ्खायनगृह्यसूत्रम् - सम्पादकोऽनुवादकश्च डॉ० गङ्गासागर रायः, रत्ना पब्लिकेशन्स, वाराणसी, १६६५।

शाङ्खायन ब्राह्मणम् - अनुवादक. सम्पादकश्च डॉ० गङ्गासागर रायः, रत्ना पब्लिकेशन्स, वाराणसी, १६८७।

शुक्लयजुर्वेद प्रातिशाख्यम् अथवा वाजसनेयि- प्रातिशख्यम् - डॉ० वीरेन्द्र कुमार वर्मा, चोखम्बा सस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली १६८७।

शौनकीय बृहद्देवता - सम्पादक और अनुवादक राम कुमार राय, चौखम्बा सस्कृत सस्थान वाराणसी, १६८०।

सस्कृत भाषा - टी० बरो०, अनुवादक डॉ० भोलाशकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १६६५।

सस्कृत साहित्य का इतिहास - प्रो० हसराज अग्रवाल, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १६८७।

सस्कृत - हिन्दी कोश - वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्रा०लि०, दिल्ली, १६८६।

सूक्तवाक् - प्रोफेसर डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी, वेदपीठ प्रकाशनम्, प्रयाग, १६६७।

A Concise Etymological Sanskrit Dictionary - Manfred Mayrhofer, Carlwinter Universitatsvertag, Heidelberg, 1957.

A Grammatical Dictionary of Sanskrit (Vedic)- Surya Kant Sastri, Moolchand Khatri Ram Trust, Delhi, 1953

A History of Ancient Sanskrit Literature - F Max Muller, The Chowkhamba Sanskrit Series office, Varanasi, 1968

A Manual of Sanskrit Phonetics - Dr C C Uhlenbeck, Luzac & Co London, 1898

Ancient India- R C Majumdar, Motilal Banarsidas Pvt Ltd , Delhi, 1995

A Sanskrit- English Dictionary- Sir Monier Williams, Motilal Banarsidas Publishers Pvt Ltd , Delhi, 10th Edition, 1990

Sanskrit English Dictionary- Theodare Benfey, Longmans Green and Co LONDON, 1966

A Sanskrit Reader- Charles Rockwell Lanman, Harbard University Press, Cambridge, 1959

India what can it teach us ? - F Maxmuller, London, 1883

Indo-Aryan Literature and Culture (Origins) - Nagendra Nath Ghose, The Chowkhamba Sanskrit Series office, Varanasi, 1965

Rigveda Samhita - A collection of Ancient Hidnu Hymns by H H Wilson, Chowkhamba Amarbharti Prakashan, Varanasi Office, Varanasi, 1965

Rigveda- Sarvanukramahi of Katyayana and Anuvakanukramani of Saunaka - Edited by Umesh Chandra Sharma, Vivek Publication, Aligarh, 1977

The Aswalayana Grhya Mantra Vyakha - Edited by K Sambasiva Sastri, Panini, New Delhi, 1982

The Avestan A Historical And Comparative Grammer (Lingustics) - S S Misra, Chowkhamba Oriental Research Institute, Varanasi, 1979

The History of Ancient Sanskrit Literature - A Webber, Translated by Johnman. Chowkhamba Sanskrit series Office, Varanasi, 1967

The Hymns of The Rgveda- ralph T H griffith, Motilal Banarsidas Publishers Pvt Ltd DELHI, 1991

The Wonder that India was - A L Basham, London, 1951

Sacred Book of The East - Editor F Max Muller, The Zend Ayesta (3 Vols) - James Darmestetor, and L H Mills, Vedic Hymns in (2 Vols) - F Max Muller and H Oldenberg, Motilal Banarasidas Pvt Ltd , Delhi, 1996-97

Studies in Vedic and Indo-Iranian Religion and Literature - K C Chattopadhyaya, Bhartiya Vidya Prakashan, Delhi, 1978

Vedic Index of Names and Subjects (2 Vols) - A A Macdonell and A B Keith, London, 1912

Vendidad- Avesta Text with Pahalavi Traslation and Commentary and Grossiarial Index - Edited by Dastoor Hoshang Jamsp, 1907

General of Bhandarkar Oriental Research Institute - 1982

General of American Oriental Society, Newyork, 1850

General of the Bombay Branch of Royal Asiatic society, 1946-75

The Modern Language Review, Cambridge, 1906

Language- General of Linguistic Society of America, Baltimore, 1925